श्रीकृष्ण

सचित्र पौराणिक उपाख्यान।

—लेखक—

नवजादिकलाल श्रीवास्तव।

—प्रकाशक—

रिखबदास बाहिती,

प्रोप्राईटर:—"दुर्गा प्रेस" और

आर० डी० बाहिती एण्ड को०,

नं० ४, चोरबगान कलकत्ता।

प्रथमवार
२०००

सन् १९२२

मू० सादी ४॥)
,, रङ्गीन ५)
,, रेशमी ५।)
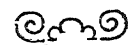
किसी जातिको उन्नतिकी ओर ले जानेवाले कतिपय साधनोंमें इतिहास एक प्रधान साधन है ; क्योंकि इतिहास-प्रदर्शित पूर्व्व पुरुषोंके पदाङ्कका अनुसरण करके ही हम अपनी उन्नति कर सकते हैं। भगवान श्रीकृष्णका जीवन चरित्र, उनका कार्य्य कलाप और उनकी दी हुई शिक्षा हमारे भारतीय इतिहासकी प्रधान सामग्री है। क्योंकि हमारे धर्म्म और समाजपर सर्वत्र ही उनके आदर्श कार्य्यों और अमूल्य उपदेशोंका प्रभाव परिलक्षित होता है। उन्हींकी दी हुई शिक्षा और उन्हींके बताये हुए उपदेशोंका अनुसरणकर आजतक संसारमें हिन्दू जाति जीवित है। फलतः श्रीकृष्णके जीवन-चरित्रके प्रचारकी कितनी आवश्यकता है, यह सभी समझ सकते हैं।

यों तो हिन्दू जाति बहुत दिनोंसे श्रीकृष्णको ईश्वरका अवतार मानकर उनके प्रति श्रद्धा भक्ति प्रदर्शित करती आ रही है। ऐतिहासिक कालके बहुत पहलेसे ही घर-घर उनकी पूजा होती आ रही है। रासलीला मण्डलियों द्वारा, नाटकों द्वारा, सुखसागर, प्रेमसागर, गीतगोबिन्द, व्रजविलास आदि विवध पुस्तकों

द्वारा प्रत्येक हिन्दू आज भी अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उनका गुणगान करता है। परन्तु इससे श्रीकृष्ण-जीवनके वास्तविक उद्देश्यकी पूर्त्ति नहीं होती। अपने आदर्श चरित्रों द्वारा पूर्ण मनुष्यत्व प्राप्त करनेका जो पथ उन्होंने दिखाया है, कालके प्रभावसे हिन्दू जाति उसे भूल गई है। इसीसे उनके बताये हुए मुक्तिमार्गका अनुसरण न कर कलिकपोल कल्पित लीलाओंके प्रचार, कीर्त्तन और दर्शनमें ही अपना समय और श्रम बरबाद कर रही है।

सौभाग्यवश कुछ दिनोंसे समयने पलटा खाया है। गत सन् १९०५ के स्वदेशी आन्दोलनके समय देशमें विशेष परिवर्त्तन दिखाई देने लगा। लार्ड कर्जनकी कृपासे देशवासियोंकी मोह-निद्रा भङ्ग हुई। सबसे पहले बङ्गाल, उसके बाद समग्र देशमें एक अद्भुत जागृति फैल गई। देशवासियोंको अपनी अधःपतित अवस्थाका ज्ञान हुआ और शत् शत् वर्षों की पड़ी हुई पराधीनताकी बेड़ी लोगोंको असह्य प्रतीत होने लगी। उसी समय अनन्य देशभक्त तपस्वी अरविन्द, निष्काम कर्म्मी युवक वारीन्द्र, उल्लासकर और कन्हाईलालकी कृपासे, भगवान श्रीकृष्ण के गीताका चिर मधुर गम्भीर निनाद समस्त भारतमें गूंज उठा। जो अबतक केवल धर्म्मपुस्तक समझी जाती थी, नहा धोकर एकवार पारायण जिसके लिये पर्य्याप्त समझा जाता था, उसमें अब धर्म्मतत्व, राजनीति, समाजनीति, योगतत्व, दर्शनविज्ञान, और निष्काम धर्म्मतत्व आदि कितने ही विषय दिखाई देने

लगे। यहांतक कि नौकरशाहीको उसमें राजद्रोहका भीषण भूत भी दिखाई देने लगा और बम तथा रिवालवरके साथ गीताकी गणना भी राज्य-नाशक वस्तुओंमें होने लगी। गीताके इस अद्भुत प्रचारके साथ साथ देशवासियोंका ध्यान श्रीकृष्णके चरित्रकी ओर भी आकृष्ट होने लगा। कर्मपथकी ओर अग्रसर होनेके लिये एक आदर्श पथ-प्रदर्शककी आवश्यकता आ पड़ी। हिन्दू जातिके इतिहासमें श्रीकृष्णके सिवा दूसरा कौन महा-पुरुष था, जिसके आदर्शका अनुसरणकर यह जाति अपने ध्येय-की ओर अग्रसर होती? फलतः श्रीकृष्णके सम्बन्धमें विद्वानोंने कितनी ही पुस्तकें लिख डालीं। धीरे धीरे उनकी शिक्षाओं और उपदेशोंका प्रचार बढ़ने लगा। परन्तु इतनेपर भी हिन्दीके विद्वानोंने इस आवश्यक कार्य्यकी ओर ध्यान न दिया। फलतः हिन्दीमें यह अभाव बना ही रह गया। प्रस्तुत पुस्तक उसी अभावकी पूर्त्तिका एक तुच्छ प्रयास मात्र है। इस कार्य्यमें मैंने सफलता प्राप्त की है या असफलता, यह जाननेकी मेरी इच्छा भी नहीं और आवश्यकता भी नहीं। क्योंकि—

कर्म्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

इस पुस्तकका-पूर्व्वार्द्ध मैंने प्रधानतः श्रीमद्भागवत और विष्णु-पुराणके आधारपर तथा उत्तरार्द्ध महाभारतके आधारपर लिखा है। इसके अतिरिक्त यत्र-तत्र हरिवंशपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, सुखसागर, पूज्य लाला लाजपतराय कृत 'महाराज श्रीकृष्ण' और उनकी शिक्षा' स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चटर्ज्जी कृत "श्रीकृष्ण चरित्र"

।

प्रोफेसर वसवानी कृत "श्रीकृष्ण" हजरत ख्वाजा हसन निजामी कृत "श्रीकृष्ण बीती" और श्रीयुत दुर्गादास लाहिड़ी कृत 'पृथिवीर इतिहास' आदि कतिपय पुस्तकोंकी सहायता प्राप्त की हैं। अतः इन पुस्तकोंके प्रणेताओंके प्रति अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति पूर्व्वक कृतज्ञता ज्ञापन करना अपना प्रधान कर्त्तव्य समझता हूं।

मैंने पुराणोंमें भगवान श्रीकृष्णके सम्बन्धमें लौकिक अलौकिक तथा संभव असम्भव जो कुछ पाया है, उसे संक्षेपमें संग्रह कर दिया है अर्थात् कोई कथा छोड़ी नहीं गई है। परन्तु जो अंश मुझे अश्लील प्रतीत हुए हैं, उन्हें सर्वत्र परित्याग कर दिया हैं और जिन कथाओंकी सत्यतामें विद्वानोंको सन्देह है, उनका उल्लेख पीछे टिप्पणियोंमें कर दिया गया है। पुस्तकके अन्तमें कुछ परिशिष्ट जोड़कर श्रीकृष्ण-चरित्रके सम्बन्धमें अपना विचार भी प्रकट कर दिया है। यह सब होनेपर भी मेरी अल्पज्ञता तथा प्रूफ़ संशोधकोंकी कृपासे भूलें रह गई हैं, आशा है उसके लिये विद्वज्जन मुझे क्षमा प्रदान करेंगे।

इस पुस्तकके प्रकाशक श्रीयुत रिखबदासजी बाहिती, बन्धुवर पण्डित चन्द्रशेखर पाठक और मनोरञ्जन सम्पादक मित्र ईश्वरी प्रसाद शर्म्माजीने इस पुस्तकके लिखनेमें मुझे यथेष्ट उत्साह प्रदान किया है, अतः मैं इन सज्जनोंका विशेष आभारी हूं। साथ ही पूज्य पण्डित रामगोविन्दजी त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री महोदयने भी इस पुस्तकका-परिशिष्ट लिखनेमें मुझे बड़ी सहायता प्रदानकी है। इसके लिये शास्त्रीजीको कोटि-कोटि धन्यवाद है।

चिलकहर—बलिया।
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी सं० १९७९

नवजादिक लाल श्रीवास्तव।

प्रकाशकका वक्तव्य

बहुत दिनोंसे मेरी यह इच्छा थी, कि परब्रह्म आनन्द-कन्द श्रीकृष्णचन्द्रका एक ऐसा जीवन-चरित्र प्रकाशित किया जाय, जिससे हिन्दी पाठकोंको संक्षेपमें उनकी समस्त अनुपम लीलायें, अलौकिक घटनायें, तथा जन-हितकारक उपदेश और नीतियाँ हृदयङ्गम हो सकें। परमात्मा-की दयासे श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके शुभ अवसरपर मेरा यह विचार कार्यमें परिणत हो, पाठकोंके सम्मुख उपस्थित होता है। आशा है, पाठक इसे साद्यन्त अवलोकन और मनन कर पूरा-पूरा लाभ उठायेंगे।

इस पुस्तकके लिखनेमें बाबू नवजादिक लालजी श्रीवास्तवने जैसा परिश्रम किया है, चित्र चित्रणमें प्रसिद्ध चित्रकार पं० मोतीलालजी शर्म्माने अपनी जैसी चित्रकला दिखलायी है, उससे आशा तो यही है, कि यह पाठकोंके लिये उपदेशप्रद होनेके साथही मनोरञ्जक और नेत्र-रञ्जक भी होगा। अतः आप दोनोंका ही मैं विशेष कृतज्ञ हूँ!

भवदीय—

रिखबदास बाहिती—
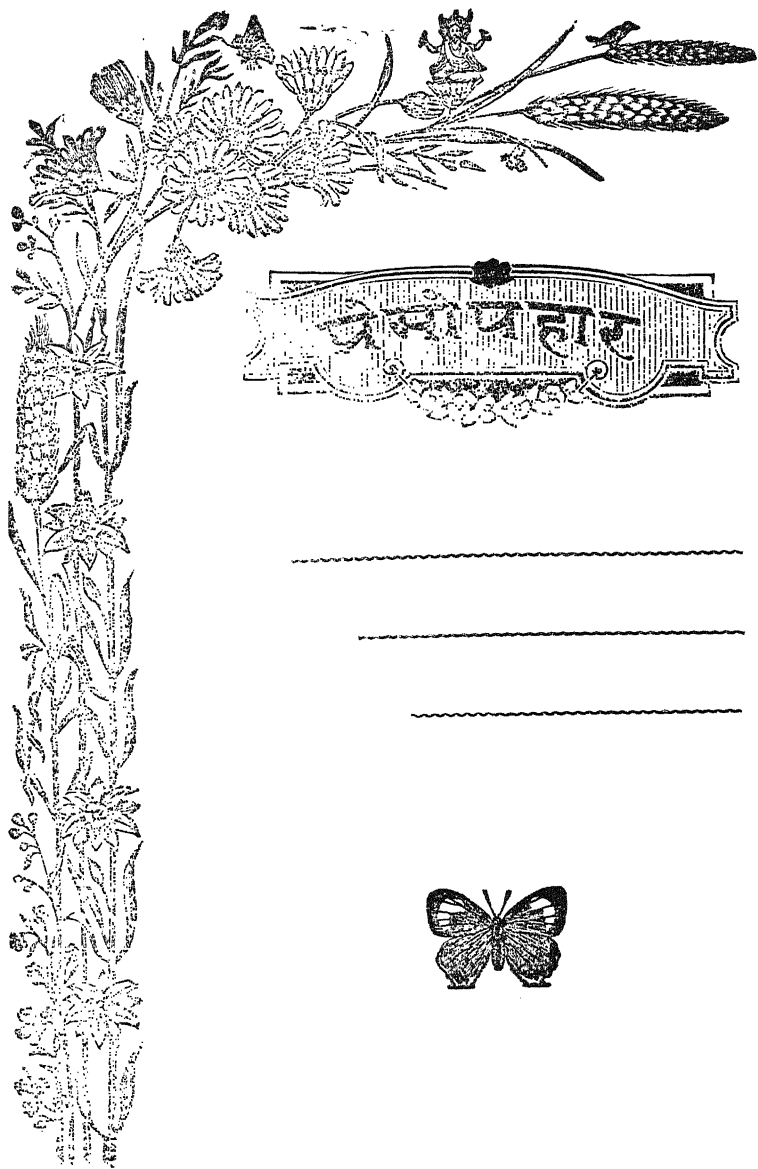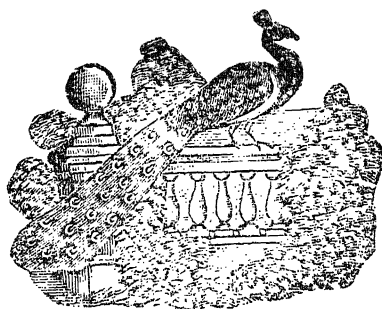
समर्पण

"त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पयेत्"

—लेखक

पूर्वार्द्ध ।

विषय— पृष्ठ

उत्तरार्द्ध ।

विषय— पृष्ठ

श्री कृष्ण
[पूर्वार्द्ध.]

यदा यदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्म्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने महाभारतके समय अपने परम प्रिय शिष्य और सखा अर्ज्जुनको गीताका उपदेश देते हुए कहा था, कि हे अर्ज्जुन! जब जब संसारमें धर्म्मका ह्रास और अधर्म्मकी वृद्धि होती है. तब तब मैं जन्म लेता हूँ। संसारमें पुनः धर्म्मकी संस्थापना तथा दुष्टोंका दमनकर शिष्टोंकी रक्षा करनेके लिये, प्रत्येक युगमें मेरा अवतार हुआ करता है।

आजसे प्रायः पाँच हज़ार वर्ष पहले, द्वापर युगके अन्तमें कंस, जरासन्ध, संवर, नरक, वाण और शिशुपाल आदि असुर-प्रकृति नृपतियोंने उत्पन्न होकर, इस आर्य्यावर्त्त देशमें घोर अधर्म्म फैला दिया था। अपनी आसुरी प्रकृति और अमित बाहुबलके घमण्डमें आकर इन दुष्टोंने धर्म्मपर घोर आघात पहुँचाना प्रारम्भकर दिया

था । इससे समस्त देशमें धर्म्मका ह्रास और अधर्म्मकी वृद्धि होने लगी थी । आस्तिकताका स्थान नास्तिकताने छीन लिया था । धार्म्मिक तथा सामाजिक बन्धनोंकी शिथिलताके कारण समाजमें विषम विशृङ्खलता उपस्थित हो गई थी । विलासिता, कायरता और पारस्परिक हिंसा-द्वेषादि दुर्गुणोंके फैल जानेसे आर्य्य-जातिका ध्वंस आरम्भ हो गया था । इस भीषण विप्लवके कारण, मानव-समाजमें नाना प्रकारकी विपत्तियोंका आविर्भाव होने लगा था । धार्म्मिकोंका धर्म-निर्वाह कठिन हो गया था । असुर-प्रकृति दुष्टोंके घोर अत्याचारोंसे द्विज-देवता घबरा उठे थे । उस समय पाप-भाराक्रान्त पृथिवी त्राहि त्राहि पुकार उठी थी । उसकी करुण पुकार सुन तथा मानव-समाजकी दुर्दशा देखकर भगवानका आसन डोल गया । उन्होंने द्वापर और कलियुगकी सन्धिके समय, अपने मानवीय चरित्रों द्वारा, संसारके सामने धर्म्म-नीति, राज-नीति और समाज-नीतिके साथ साथ निष्काम कर्मका आदर्श रखनेके लिये, अन्याय और अविचारका मूलोच्छेदकर, सुदूर भविष्यत्में सत्ययुगके आविर्भावका पथ प्रशस्त करनेके लिये, अपने अपूर्व्व क्षात्र-बल और नीति-बल द्वारा दुष्ट आततायियोंका विनाशकर साधु पुरुषोंके परित्राणके लिये, मथुराके वसुदेव नामक यदुवंशी क्षत्रियके यहाँ श्रीकृष्णके रूपमें अवतार धारण किया था । उसी पवित्र चरित्रका संग्रह पाठकोंके सामने उपस्थित करनेकी अभिलाषासे यह पुस्तक लिखी गई है ।

———०———

२
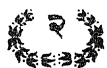
श्रीकृष्णका जन्मस्थान.

भारतकी वर्त्तमान राजधानी दिल्लीसे प्रायः चालीस कोसकी दूरीपर, यमुना किनारे, भगवान श्रीकृष्णका जन्म-स्थान मथुरा नगर अवस्थित है। इसके आसपास गोकुल, बरसाना, नन्द-गाँव, बृन्दाबन और महाबन आदि स्थान हैं, जो कृष्णचन्द्रके क्रीड़ा-स्थल होनेके कारण हिन्दुओंके तीर्थ-स्थान हैं। मथुराके आस पास चौरासी कोसका घेरा ब्रज-मण्डलके नामसे विख्यात है। भादोंके महीनेमें हिन्दू-यात्री इस ब्रजमण्डलकी परिक्रमाकर अपनेको धन-धन्य समझते हैं।

बाल्मीकीय रामायणमें लिखा है, कि त्रेता युगमें, रामावतारके समय, मथुरा प्रान्त घने बनके रूपमें था। उसे मधुबन कहते थे। वहां मधु नामका एक असुर राजा वास करता था, इसीसे उस बनका नाम मधुबन पड़ा था। मधुके मर जानेपर उसका पुत्र लवण राजा हुआ। लवण बड़ा बलशाली और दुर्द्धर्ष था। मर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रके भाई शत्रुघ्नने उसे युद्धमें परास्तकर भगाया था और उन्होंने ही इस विजयके उपलक्षमें वहां मधुरा नगर बसाया, जो काल पाकर मथुराके नामसे विख्यात

हुआ। यह तो मथुराकी पौराणिक इतिवृत्ति हुई। अब उसका ऐतिहासिक विवरण सुनिये। पार्सियोंके धर्म-ग्रन्थ ज़ेन्द-वस्तामें "मथुरा" शब्दका प्रयोग गोचर-भूमिके लिये किया गया है। इसके सिवा गोकुल, बृन्दावन आदि नामोंसे भी यह अनुमान किया जा सकता है, कि उस कालमें यह स्थान बनके रूपमें ही रहा होगा। गायों और भैसोंके लिये ब्रज आज भी मशहूर है। यहाँकी गायें और भैसें भारतके अन्यान्य प्रान्तोंकी अपेक्षा अधिक दूध देनेवाली होती हैं। इसीसे यहाँ दूध दही भी अधिक मिलता है। मथुराकी दूधकी बनी मिठाई, विशेषतः पेड़ा सारे देशमें मशहूर है। मक्खन और घी निकालनेके लिये दूध या दहीको मथानी द्वारा मथनेकी आवश्यकता पड़ती है। इसलिये कुछ ऐतिहासिकोंका अनुमान है, कि शायद "मथ" शब्दसेही 'मथुरा' शब्दकी सृष्टि हुई है।

बौद्धोंके धर्म्मग्रन्थोंमें मथुराका जिक्र पाया जाता है। भगवान गौतम बुद्धने मथुरामें आकर अपने धर्मका प्रचार किया था। इस लिये वह कई शताब्दियों तक बौद्धधर्मका केन्द्रस्थल बना हुआ था। विख्यात चीनी यात्री फाहियानने अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें मथुराका उल्लेख किया है। फाहियान यहाँ ईसाकी पाँचवीं शताब्दिमें आया था। उसने लिखा है, कि मथुरामें उस समय बौद्धमतका विशेष प्रचार था। वहाँ बौद्धोंके दो सौ विहार थे, जिनमें तीन सहस्र भिक्षु रहा करते थे। बौद्धोंके सात स्तूप भी वहाँ मौजूद थे। फाहि-यानकी यात्राके प्रायः दो सौ वर्ष बाद, हुएन्तसांग नामक

एक दूसरा चीनी परिव्राजक यहाँ आया था। उसने भी अपनी यात्रा-पुस्तकमें मथुराका जिक्र किया है। उसके समयमें मथुरा नगरकी बस्ती चार कोसोंमें थी। बौद्धोंके विहारोंकी संख्या पूर्व्ववत दो सौ ही थी; परन्तु भिक्षुओंकी संख्या तीन सहस्रसे घटकर दो सहस्र रह गई थी। इसके सिवा उस समय वहाँ पाँच मन्दिर ब्राह्मणोंके भी बन गये थे। साथ ही बौद्धोंके स्तूपोंकी संख्या पहलेकी अपेक्षा अधिक बढ़ गई थी। जिस समय हुएन्तसांग यहाँ आया था, उस समय हिन्दूधर्मके उद्धारकर्त्ता भगवान शङ्कराचार्य और कुमारिल भट्टका आविर्भाव हो चुका था। वर्त्तमान समयके इतिहासवेत्ता इसी समयको पौराणिक युग कहते हैं।

फलतः उपर्युक्त विवरणसे प्रमाणित होता है, कि मथुरा नगर ऐतिहासिक युगके पहलेसे ही मौजूद था।

सन् १०१७ ईस्वीमें ईरानका मशहूर लुटेरा महमूद ग़जनवीने मथुरापर आक्रमण किया था और बीस दिनोंतक इस नगरमें लूट-खसोट मचाता रहा। अन्तमें सैकड़ों देवालयोंको चकनाचूरकर प्राय: तीन करोड़की सम्पत्ति लूटकर ले गया था। इसी समयसे मथुराकी सौन्दर्य्य-शोभा विनष्ट हो गई और बहुत दिनोंतक फिर दीप्तिमान न हो सकी। महमूदके सिवा और भी बहुतसे मुसलमान राजा मथुराकी छातीपर बार बार कोदो दलते रहे, इससे महमूदके रौंदे हुए पौधेको फिर पूर्णरूपसे पनपनेका अवसर बहुत दिनोंतक नहीं मिल सका।

इसके बाद मथुरा प्रान्त जाटोंके अधिकारमें आया और

हिन्दुओंको अपने पूज्य और पवित्र मन्दिरोंका पुनरोद्धार करनेका अवसर मिला। इतिहासज्ञोंका कहना है, कि मथुराकी वर्त्तमान इमारतें और प्रधान प्रधान मन्दिर उसी समयके बने हैं।

केशवदेवके मन्दिरके निकट एक तालाब है, उसे 'पोतड़ा कुण्ड' कहते हैं। मथुराके पण्डोंका कहना है, कि इस तालाबमें भगवान् बालकृष्णके 'पोतड़े' धोए जाते थे, इसीसे इसका नाम पोतड़ा कुण्ड पड़ गया। इसी तालाबके निकट कारा-गृह नामक स्थान है, जहाँ कंसने बसुदेव और देवकीको कैदकर रखा था। यमुनाके तटपर विश्राम घाट है। कहते हैं, कि कंसको मारनेपर श्रीकृष्णने यहीं बैठकर विश्राम किया था, इसीसे इस स्थानको विश्राम घाट कहते हैं। इसके पास ही कंस-नाला है। कंसको मारकर श्रीकृष्ण उसकी लाशको घसीट लाये थे, इसीसे इस नालेका नाम कंसनाला पड़ गया। योग घाट उस स्थानको कहते हैं, जहाँ कंसने यशोदाकी कन्या योग-मायाको जमीनपर दे मारा था। इसके सिवा कुब्जा कुआँ और रणभूमि आदि और भी कतिपय स्थान हैं, जिनसे श्रीकृष्णके किसी न किसी कार्य्यका सम्बन्ध बतलाया जाता है।

मथुरासे तीन कोसपर यमुना किनारे बृन्दावन नामका कस्बा है। पुराणोंमें लिखा है, कि कृष्णावतारके समय, यहाँ वृन्दा (तुलसी) के वृक्षोंका वन था, इसीसे इसका नाम वृन्दावन पड़ा। वृन्दावन भगवान बालकृष्णका लीला—निकेतन है। यह स्थान बड़ाही सुहावना है।

वृन्दाबनके प्रायः तीन ओर यमुना लहराती है। यह नगर भी ऐतिहासिक कालके पहलेका है। यमुनाके दूसरे किनारे गोकुल, बरसाना, नन्दगाँव और महाबन आदि स्थान हैं। इन सभी स्थानों से कृष्णचन्द्रजीकी बाल-लीलाओंसे विशेष सम्बन्ध है। इसीसे आज भी कोटि-कोटि हिन्दू यात्री इन स्थानोंका बड़े भक्ति-भावसे दर्शन करते हैं। कृष्णका जन्मस्थान होनेके कारण मथुरा तथा बृन्दाबन आदि स्थान हिन्दुओंके प्रधान तीर्थ-स्थान हैं।

३

संक्षिप्त वंश-परिचय

ऊपर लिखा जा चुका है, कि कृष्णचन्द्रजी* यदुवंशी क्षत्रिय वसुदेवके पुत्र थे। क्षत्रियोंमें दो विख्यात वंश हैं। एक सूर्य्यवंश और दूसरा चन्द्रवंश। सूर्य्यवंशियोंके आदि पुरुष मरीचि और चन्द्रवंशियोंके आदि पुरुष अत्रि माने जाते हैं। कई पीढ़ियोंके बाद मरीचिके पिताके वंशमें वैवस्वत मनु और अत्रिके वंशमें बुधका जन्म हुआ। बुधके पिताका नाम चन्द्रमा था, इसी लिये उनके वंशज चन्द्रवंशी कहलाये। बुधने वैवस्वत मनुकी कन्या इलाका पाणि ग्रहण किया था। उससे पुरूरवा नामक एक पुत्र पैदा हुआ। पुरूरवाकी चौथी पीढ़ीमें सुविख्यात राजा ययाति पैदा हुए। ययातिकी पहली स्त्री देवयानी शुक्राचार्य्यकी कन्या थी। उसीके गर्भसे यदुवंशियोंके आदि पुरुष यदुकी उत्पत्ति हुई। तभीसे ये लोग यदुवंशी कहलाने लगे। यदुकी अमित पीढ़ियोंके बाद सात्वत पैदा हुए। इनके अन्धक और कुकुर नामके दो पुत्र थे। अन्धककी सातवीं पीढ़ीमें देवमीढ़का जन्म हुआ। देवमीढ़की दो स्त्रियाँ

---

*पूज्य लाला लाजपतरायने श्रीकृष्णको सूर्य्यवंशी लिखा है।

थीं। एक किसी क्षत्रियकी कन्या थी और दूसरी वैश्यकी। ❋ देवमीढ़की क्षत्राणी स्त्रीसे शूरसेन पैदा हुए, जो भगवान श्रीकृष्णके पितामह अथवा वसुदेवके पिता थे। देवमीढ़की वैश्या पत्नीके गर्भसे पर्य्यन्य नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह गोपराज नन्दका पितामह था। फलतः वसुदेव और नन्द एकही पितामह की सन्तान थे। इसीसे दोनोंमें प्रगाढ़ प्रेम था।

सात्वतके द्वितीय पुत्र कुकुरके वंशमें कई पीढ़ियोंके बाद आहुक नामक एक राजा हुए। जिनके पुत्र उग्रसेन और देवक थे। देवककी कन्या देवकी थीं, जो वसुदेवको व्याही गईं। उन्हींकी पवित्र कोखसे भगवान् श्रीकृष्णने अवतार धारण किया था और वसुदेवकी दूसरी स्त्री रोहिणीके गर्भसे बलरामका जन्म हुआ था।

❋ प्राचीन कालमें हिन्दुओंको अपनेसे नीच वर्णकी कन्यासे विवाह करनेका अधिकार था। इस तरहके विवाहसे जो सन्तान पैदा होती थी, उसका वर्ण माताके वर्णके अनुसार माना जाता था।—लेखक।

पुराणोंके मतानुसार राजा उग्रसेनके पुत्र कंसकी उत्पत्ति किसी असुरके अंशसे हुई थी, इसीसे उसकी प्रकृति भी आसुरी थी। कंस बड़ा दुराचारी और पापी था। उसने अपने ससुर मगधराज जरासन्ध तथा अन्यान्य असुरोंकी सलाह और सहायतासे अपने पिता उग्रसेनको राजगद्दीसे उतार दिया और पिताके वर्त्तमान रहते ही बल पूर्व्वक स्वयं राजा बन बैठा था। कंसके अत्याचारों और उत्पीड़नोंसे मथुराकी प्रजा परेशान थी। वह धर्म-कर्म, यज्ञ-याज्ञ और दान-पुण्य आदि सत्कर्म्मोंका प्रवल विरोधी था। उसके घोर अत्याचारोंसे अपने-पराये सभी तंग थे। सभी परमात्मासे यही मनाया करते थे, कि कब इस पापीका नाश होगा।

पापियोंका हृदय बड़ा दुर्ब्बल होता है। वे अपने किये हुए पापाचारोंके समर्थनमें और भी कितने ही घोर पाप किया करते हैं। कंसकी भी यही दशा थी। उसे सदैव इस बातकी आशङ्का रहा करती थी, कि कहीं राजच्युत उग्रसेन और उनके

साथ सहानुभूति रखनेवाले वसुदेव आदि अन्यान्य यादव साजिशकर उसे मार न डालें। इसीलिये वह अपने सजातियों और कुटुम्बवालोंको भी तंग किया करता था। विशेषतः उसे वसुदेवसे बड़ी आशंका थी। क्योंकि जिस राजसिंहासन पर कंस बैठा था, वह वसुदेवके पिता शूरसेनका था। न्यायानुसार वेही उसके उत्तराधिकारी थे। ऐसी दशामें वसुदेवसे सदैव सतर्क रहना ही कंसने उचित समझा और इसीलिये वह अपने पिता उग्रसेनको, उनके अनुचरोंसे साथ, कैदकर लेनेपर वसुदेवको भी कैद करनेका अवसर ढूँढ़ रहा था।

कुछ दिनोंके बाद उसे एक अवसर मिल गया। उग्रसेनके भाई देवकने अपनी कन्या देवकीसे वसुदेवका विवाह कर दिया। दुलहनको रथपर बिठाकर वसुदेव अपने घर जाने लगे। कंस सारथी बनकर अपनी बहनका रथ हाँक कर ले चला। कुछ दूर जानेपर रास्तेमें उसे यह आकाशवाणी सुन पड़ी, कि रे मूढ़! तू बड़ी खुशीसे जिसका सारथी बना है, उसी देवकीकी आठवीं सन्तान तेरा संहार करेगी *। कंस तो सशंकित था ही, आकाशवाणी सुनकर और भी बेचैन हो गया। उसने विचार किया, कि पिताके वंशमें तो ऐसा कोई नहीं है, जो उसका स्वत्व छीन सके। यदि कुछ आशंका है, तो केवल इसी लड़कीकी सन्तानसे। इस विचारके मनमें उत्पन्न होते ही

* किसी किसी पुराणमें लिखा है, कि नारदजीने आकर कंससे यह बात कही थी।

मृत्युकी भीषण विभीषिकासे उसकी पापिष्ठ आत्मा बेचैन हो गई। वह देवकीको मारकर अपने पाप-पथका काँटा दूर कर डालनेके विचारसे उसकी चोटी पकड़, रथपरसे नीचे खींच लाया और तलवार खींच कर उसे वध कर डालनेपर उतारू होगया।

क्रोधान्ध कंसको अचानक निर्दोष बालिकाकी हत्याके लिये उद्यत देखकर जनतामें हाहाकार मच गया। चारों ओरसे लोग उसे इस अपकर्मसे विरत करनेके लिये चिल्ला उठे। जन-समूहके अत्यन्त कोलाहलके कारण कंस सहम गया। उसकी रक्तकी प्यासी तलवार ऊपर उठकर थोड़ी देरके बाद रुक गई। इधर वसुदेव भी उसके निकट आकर कातर स्वरसे प्रार्थना करने लगे—"राजन्! आप वीर पुरुष हैं। एक निर्दोष अबलाका प्राण लेना आपके लिये बड़े कलंककी बात है। आकाशवाणी सुनकर आप नाहक विचलित हुए हैं। इस संसारके सभी पदार्थ नश्वर हैं। जो पैदा हुआ है, वह एक न एक दिन अवश्य ही कालकवलित होगा। इसलिये इस अबलाको मार कर भी आप अमर नहीं हो सकेंगे, यह निश्चय है। ऐसी दशामें जानबूझकर ऐसा घोर अधर्म्म न कीजिये। दया कीजिये। नाहक इस निरपराधिनीका प्राण न लीजिये। देखिये, बेचारी मृत्युके भयसे भीत हो रही है। यह आपकी छोटी बहन है। इसपर अनुग्रहकर जीने दीजिये।"

इस तरह बसुदेवने बहुत कुछ समझाया; बड़ी अनुनय विनय

की। परन्तु कंसके कठोर हृदयमें दयाकी गुँजायश कहाँ थी ! उसने एक न सुनी और भयभीत भगिनीको झटका देकर उसकी गर्दन पर छुरी चलाना ही चाहता था, कि वसुदेवने उसका हाथ थाम लिया और बोले—"ठहरो, मेरी एक और बात सुनलो। देववाणीके अनुसार देवकीसे तुम्हें कोई भय नहीं है ! भय उसकी सन्तानसे है। इस लिये मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि इसके गर्भसे जो लड़का पैदा होगा, उसे मैं तुरन्त तुम्हारे हवाले कर दूँगा। मेरी बात पर विश्वास कर इस बेचारीको जीवन दान दो।"

अबकी कंस वसुदेवकी बात मान गया। देवकी तथा वसुदेवको घर जानेकी आज्ञा देकर वह चला गया। वसुदेव भी किसी तरह अपनी नवोढ़ा वधूको कसाई कंसके हाथोंसे बचाकर अपने घर गये।

कुछ कालोपरान्त देवकीके गर्भसे एक बालक पैदा हुआ। वसुदेव उसे लेकर कंसको देने चले ! प्रसूती देवकी बिलखने लगी। अधखिली कोमल कलीसे नन्हें बालकको वधिकके हवाले करते हुए वसुदेवका हृदय भी विचलित हो उठा। पवित्र वात्सल्य स्नेहसे हृदय उमड़ आया। पति-पत्नीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। अत्यन्त शोक और सन्तापसे उनका चित्त विह्वल हो गया। हाय, इस जड़ लेखनीमें इतनी शक्ति कहाँ जो वसुदेव और देवकीके सन्तापका चित्र खींच सके ! सत्य प्रतिज्ञ वसुदेवने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। बिलखती माताकी गोदसे बच्चेको लाकर कंसके सामने रख दिया।

वसुदेवकी सत्यता और प्रतिज्ञा देख कर कंस दंग रह गया। उसने सोचा कि आकाशवाणीके अनुसार मुझे देवकीकी आठवीं सन्तानसे भय है। यह प्रथम पुत्र मेरा क्या कर सकता है। यह सोचकर उसने वसुदेवसे कहा, कि तुम इसे लेजा सकते हो। मुझे देवकीके आठवें बालककी आवश्यकता है। जब आठवीं सन्तान पैदा हो तो मेरे पास लाना। "बहुत अच्छा" कहकर वसुदेव बच्चेको लेकर प्रसन्नता पूर्वक घर लौट आये।

परन्तु हाय, हतभाग वसुदेवकी प्रसन्नता स्थायिनी न. हुई। देवताओंने सोचा, कि जब तक कंसका पापका घड़ा पापवारिसे परिपूर्ण न हो जायगा, तबतक इसका विनाश न होगा। अतएव कोई ऐसा उपाय होना चाहिये, जिसमें इसके पापोंकी मात्रा शीघ्रही पराकाष्ठा तक पहुँच जाय। इसलिये उन लोगोंने नारद-जीको भेजकर कंससे कहलवा दिया, कि तेरा नाश करनेके लिये सब देवता ब्रजवासी और यदुवंशी बनकर उत्पन्न हुए हैं। तू इनसे सावधान रहना।

कंसका मत पलट गया। उसने उसी समय वसुदेव, देवकी तथा अन्यान्य कई यदुवंशियोंको कैदकर लिया और जिस शिशुको उसने देवकीका प्रथम पुत्र होनेके कारण लौटा दिया था, उसे स्वयं जाकर देवकीकी गोदसे छीन लाया। देवकी रोकर उसके पैरोंपर गिर पड़ी। परन्तु कंसका कठोर हृदय कब पसीजने वाला था उसने उस दुधमुँह शिशुकी कोमल टाँग पकड़कर

जमीनपर दे मारा। देखते देखते प्रेमका प्यारा पुतला चूर चूर हो गया। सफेद भूमिका कुछ अंश शिशुके लाल लहूसे रंग गया। भूमिपर गिरते समय शिशुके मुँहसे एक आवाज़ निकल पड़ी। आवाजमें कोई स्पष्ट शब्द तो नहीं था, परन्तु अर्थ था। यदुवंशी कुलके चाँदको उगते उगते ही कंस-रूपी राहुने ग्रस लिया।

इस तरह क्रूरकर्मा कंसने एक एक कर देवकीके छः पुत्रोंको जन्मतेही मार डाला। इसके सिवा, वसुदेवके दूसरे पुत्रोंको, जो उनकी दूसरी स्त्रियोंसे उत्पन्न हुए थे, उन्हें भी मार डाला।
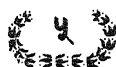
५ बलरामका जन्म।

देवकी सातवीं वार गर्भवती हुई। उसके साथ ही संयोगवश वसुदेवकी दूसरी पत्नी रोहिणीने भी गर्भ धारण किया। पापी कंसके हाथोंसे एक एककर कई बच्चोंको विनष्ट होते देखकर वसुदेवका धैर्य्य जाता रहा था। वे भविष्यमें पदा होनेवाले बच्चोंको कंसके क्रूर हाथोंसे बचानेके लिये विशेष चिन्तित थे। वात्सल्य स्नेहके सामने, दबावमें पड़कर, अनिच्छा पूर्व्वक की हुई प्रतिज्ञाका पालन उन्हें आवश्यक नहीं प्रतीत हुआ। हाय, जिस मातापिताके बच्चे जन्मतेही इस तरह निर्दयता पूर्व्वक मार डाले जाते हों, उनके मनकी क्या अवस्था होगी? ऐसी दशामें कौन पिता ऐसा होगा, जो अपनी भावी सन्तानकी रक्षाके लिये चिन्तित न होगा। बच्चोंकी स्वाभाविक मृत्यु मातापिताको विचलित कर देती है। कितनेही पुत्र-शोकमें पागल होजाते हैं, कितने ही इस शोकसे सन्तप्त होकर जीवन गवाँ देते हैं और कितने ही पिता माता पुत्र-शोकसे कातर हो, संसारसे विरक्त होजाते हैं। ऐसी दशामें वसुदेव क्योंकर चुप रह सकते थे! उन्होंने मन-ही-मन निश्चय

कर लिया, कि अब भरसक अपने बच्चोंको कसाई कंसके हाथोंसे बचानेकी चेष्टा करूँगा। उन्होंने गर्भवती रोहिणीको कंसके डरसे छिपाकर गोकुलमें गोपराज नन्दके घर भेज दिया। परन्तु बहुत सोचनेपर भी देवकीकी सन्तानकी रक्षाके लिये कोई उपाय न कर सके। अन्तमें उन्होंने तीनों लोकोंके रक्षक भगवान नारायणकी शरण ली। उन्होंने मन-ही-मन कहा—हे भगवान! अब तुम्हीं मेरे वंशके रक्षक हो। तुम्हारे सिवा इस दुखिया दम्पतिकी पुकार सुननेवाला कोई नहीं है। वसुदेवकी पुकार खाली नहीं गई। भगवान नारायणके आदेशानुसार योगमायाने देवकीका गर्भ रोहिणीके गर्भमें रख दिया। इधर मथुरा निवासियोंने सुना, कि कंसके भयसे देवकीका गर्भ असमय ही गिर गया।

इस घटनाके उपरान्त यथा-समय रोहिणीके गर्भसे शेषावतार बलराम वा बलदेवका जन्म हुआ।

जो लोग इस तरहकी अलौकिक बातोंपर विश्वास नहीं करते, वे उपर्युक्त वर्णनसे यह परिणाम निकालते हैं, कि शायद् वसुदेव आदिने सन्तानकी रक्षाके लिये देवकीके गर्भवती होनेकी बात छिपा रखी होगी और यह प्रसिद्ध कर दिया होगा, कि रोहिणी गर्भवती है, देवकी नहीं। फिर बच्चा पैदा होनेपर छिपाकर रोहिणीको दे आये होंगे अथवा भय, शोक और चिन्ताके कारण, सचमुचही देवकीका गर्भ गिर गया होगा तथा रोहिणीके गर्भसे ही बलरामकी उत्पत्ति

हुई होगी। अस्तु, पौराणिक बातोंपर विश्वास न करने वालोंके मतानुसार वसुदेवने किसी न किसी तरह अपनी सातवीं सन्तान की रक्षा कर ली और वही बालक बलरामके नामसे प्रसिद्ध हुआ।
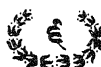
कृष्णचन्द्रका जन्म।
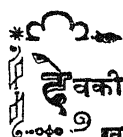
देवकी आठवीं वार गर्भवती हुई। कंसको इस बातकी खबर लगतेही उसका पापी हृदय भयसे थर्रा उठा। वह पहले ही सुन चुका था, कि देवकीकी आठवीं सन्तान उसका संहार करेगी। इस बातपर उसका अटल विश्वास था। दूसरे भगवान कृष्णने जबसे देवकीके गर्भमें आकर अवस्थान किया, तबसे उसका चेहरा एक विशेष प्रकारकी प्रभासे चमकने लगा था। इससे पहले वसुदेव और देवकीने स्वप्नमें भगवानका दर्शन भी पाया था। इसके सिवा भविष्यवक्ता ज्योतिषियोंने भी बतलाया था, कि अबकी बार देवकीके गर्भसे जो बालक पैदा होगा, वह बड़ाही प्रतिभावान, विश्व-विख्यात और यशस्वी होगा। इन्हीं सब कारणोंसे कंस और भी सशंकित होगया। पापीका पापकार्य्य असीम हो चुका था। पापका घड़ा भर चुका था। इसीसे वह सोते-जागते अपने मानस-पटलपर देवकीकी आठवीं सन्तानकी

भीषण मूर्ति देखकर भयभीत और स्तम्भित हुआ करता था। कंसने देवकी और वसुदेवको जिस स्थानपर कैद किया था, वहाँ पहरे-चौकीका खूब बन्दोबस्त था। इतनेपर भी बहुतसे भीषणकाय, निष्ठुर प्रकृति पहरेदार कैदखानेकी रक्षाके लिये नियुक्त किये गये। पापी कंस बड़े सशंकित भावसे कृष्णके जन्मकी प्रतीक्षा करने लगा। ज्यों ज्यों दिन बीतने लगे, त्यों त्यों उसकी चिन्ता और भी बढ़ने लगी। सोते-जागते, चलते-फिरते, दिन-रात, कंसके मनमें वही एक चिन्ता जागने लगी।

इस गर्भाधानके पहले ही, एक वार यमुना किनारे, गोपराज नन्दकी स्त्री यशोदा देवीसे देवकीकी भेंट हुई थी। देवकीने यशोदासे अपनी बिपद्-कहानी सुनाई थी। उसकी करुण-कथा सुनकर यशोदाने प्रतिज्ञा की थी, कि मैं अपना बालक देकर तुम्हारे बालकका प्राण बचाऊँगी। अस्तु

धीरे धीरे नौ महीने बीत गये। कृष्णचन्द्रके जन्मका समय उपस्थित हुआ। भादों बदी अष्टमीको आधी रातके समय रोहिणी नक्षत्रका उदय हुआ। इसी समय देवकीको प्रसव-पीड़ा होने लगी। परन्तु उसे उसकी चिन्ता न थी। आसन्न-प्रसवा वन्दिनी प्रसव-वेदना भूलकर भावी सन्तानकी प्राण-रक्षाके लिये व्याकुल हो रही थी। निकट ही बैठे हुए देवकीके पति वसुदेव भी उसी चिन्तामें निमग्न थे। हाय! इस बालककी रक्षा कैसे होगी? कौन इसे क्रूर कंसके हाथोंसे बचा सकेगा? कुटिल कंस एक एककर छः बच्चोंका प्राण-संहार कर चुका है। इस बालकको

साक्षात् नारायणको बालक-रूपमें देखकर वसुदेव और देवकीने परमानन्द प्राप्त किया।

दुर्गाप्रेस कलकत्ता]

[देखिये-पृष्ठ संख्या ३१
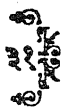
भी वह पापी अवश्य ही मार डालेगा। भगवन्! दीनबन्धु! तुम्हीं इस वंशकी रक्षा करो! इस दुखियाके धनकी रक्षा तुम्हारे सिवा और कौन कर सकता है? तुम्हीं दीनोंके आश्रय हो। हे करुणामय! इस डूबती हुई वंशकी नौकाको अपने वरद हाथोंको बढ़ाकर बचालो। इस तरह विनय करते करते देवकी और वसुदेव तन्मय हो गये। उनका वाह्य-ज्ञान बिलुप्त हो गया। उन्होंने देखा, कि देवकीके गर्भसे एक अद्भुत वालक पैदा हुआ है। वह चतुर्भुज है, चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये है। उसके नेत्र विशाल हैं। वक्ष-स्थलपर श्रीवत्स चिन्ह शोभा दे रहा है। गलेमें कौस्तुभ मणि चमक रहा है। कानोंमें कुण्डल और किरीट शोभा दे रहा है। अङ्गका रङ्ग निविड़ मेघकी भाँति सुहावना है। उस चतुर्भुजी बालकके शरीरकी अपूर्व्व ज्योतिसे सूतिकागार उद्भा-सित हो रहा है। साक्षात् नारायण को, बालक-रूपमें देखकर, बसुदेव और देवकीने परमानन्द प्राप्त किया और बड़ी देर तक हाथ जोड़े हुए उनकी स्तुति करते रहे।

वसुदेव देवकीकी स्तुति समाप्त होनेपर चतुर्भुजी बालकने कहा,—"कोई चिन्ता न करो! मुझे अभी गोकुल ले जाकर नन्दकी पत्नी यशोदा देवीके पास रख दो और उनके गर्भसे योग-माया उत्पन्न हुई है, उसे लाकर यहाँ रख दो।"

इतना कहकर वह चतुर्भुजी बालक-मूर्त्ति अन्तर्द्धान हो गई। वसुदेव और देवकी चकित दृष्टिसे चारों ओर देखने लगे। इतनेमें

देखा, कि एक श्याम वर्ण शिशु देवकीकी गोदमें हाथ पाँव फेंकता हुआ खेल रहा है। अभी क्षण भर पहले जो चतुर्भुजी बालक-मूर्ति उनके सामने खड़ी थी, वह भी इसी सद्यजात शिशुके रङ्गकी थी। परन्तु वह चतुर्भुजी थी और इस बालकके दोही भुजायें हैं। उस मूर्त्तिके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म था। परन्तु इसकी मुट्ठियाँ बँधी हैं!

देवकीने बालकको उठाकर वसुदेवकी गोदमें दे दिया। वसुदेव उस प्राण-प्रतिमाको बड़े यत्नसे वस्त्रोंमें लपेट कर तुरन्त बाहरकी ओर बढ़े। किसीने सच कहा है, कि मारनेवाला यदि बलवान है, तो बचाने वाला कहीं उससे भी बढ़कर बलवान है। कैदखानेके दरवाजेपर पहुँचकर वसुदेवने देखा, कि लोहेके मजबूत किवाड़ खुले पड़े हैं। पहरेदार घोर निद्रामें जहाँ तहाँ पड़े खर्राटे भर रहे हैं। चारों ओर घोर अन्धकारके साथ सन्नाटा छाया हुआ है। वसुदेव अपने प्यारे बालकको लेकर बाहर निकल आये। उस समय आधी रात बीत चुकी थी। आकाश मेघाच्छन्न था और मूसलाधार वृष्टि हो रही थी। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। वृष्टिकी हर-हराहट और मेघ-गर्जनके सिवा और कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था। यह भयानक शब्द मानो पापियोंके दिलोंको दहला रहा था। आँधीके तुन्द झोंके मानों मथुराकी ऊँची अट्टालिकायें ढहा देनेका प्रयत्न कर रहे थे। मूसलाधार वृष्टिके कारण मथुराकी सड़कें और गलियाँ छोटी छोटी नदियोंकी भाँति मालूम पड़ती थीं।

समय बड़ाही भीषण था। परन्तु वसुदेवको इसकी कोई परवाह न थी। वे आज जानपर खेलनेको तैयार थे। कोई विघ्न-बाधा आज उन्हें नहीं रोक सकती थी। वे समस्त बाधाओंको अतिक्रम कर, बड़ी तेजीसे क़दम बढ़ाते हुए चले जा रहे थे।

कितने ही राज-पथों तथा संकीर्ण गलियोंसे होते हुए, वसुदेव नगरसे बाहर निकल कर, यमुना किनारे आ पहुँचे। उस समय यमुनाने भी भीषण आकार धारण किया था। मानो असीम जलराशि शीघ्र ही दोनों किनारोंकी सीमा अतिक्रम करना चाहती थी। जलके बहावसे भीषण शब्द निकल रहा था। विपुल तरंगें एक साथ ही उठतीं और विलीन होती थीं। मानो एक साथ ही सहस्र काली नागिनें फण फैलाये रोष पूर्व्वक फुफकार छोड़ती जा रही थीं।

इस भीषण रातमें बिना नाव-बेड़ाके यमुनाको पार करना बड़ा कठिन काम था। परन्तु वसुदेवने इसकी भी कुछ परवाह न की। भवसागर पार लगानेवाले भगवान् नारायणको स्मरण कर, वे तुरन्त यमुनामें उतर पड़े। यमुनाका जल मानो और भी बढ़ने लगा। वसुदेवने बालकको दोनों हाथोंके सहारे ऊपर उठा लिया। भीषण जल-तरङ्ग एकबार उनके उठे हुए हाथोंतक पहुँचकर हठात् घटने लगी। अथाह यमुना थाह हो गई। वसुदेव बड़ी आसानीसे पार उतर गये। दूसरी आश्चर्य्यकी बात यह हुई, कि मूसलाधार पानी बरस रहा था, परन्तु वसुदेव तथा बालकके शरीरपर एक बूँद भी नहीं पड़ा।

बालक कृष्णको वारिधारासे बचानेके लिये स्वयं शेषनाग वसुदेवके सिरपर फण फैलाये जा रहे थे।

वसुदेव बड़ी आसानीसे कृष्णको लेकर गोपराज नन्दके घर पहुँच गये। जिस समय कंसके कैदखानेमें कृष्णने जन्म लिया, उसी समय नन्दरानी यशोदाने भी एक कन्या प्रसव की थी। परन्तु योगमायाके प्रभावसे गोकुलमें किसीको इस बातकी खबर न थी। वसुदेवने नन्दके घर पहुँचकर देखा, कि सभी घोर निद्रामें बेसुध पड़े हैं। वे धीरे-धीरे यशोदा देवीके कमरेमें पहुँचे। अन्यान्य गोप ग्वालिनोंकी भाँति यशोदा भी बेसुध पड़ी सो रही थीं और बगलमें पड़ी सद्यजात कन्या हाथ पैर फेंक रही है। वसुदेवने बालिकाको उठा लिया और कृष्णको उसके स्थानपर सुलाकर उलटे पाँव लौट पड़े।

जिस तरह गये थे, उसी तरह निरापद मथुरा पहुँचकर उन्होंने बालिकाको देवकीके हवाले किया। वसुदेवके वापस आते ही पहरेदारोंकी नींद खुल गई। उन लोगोंने उठकर झटपट दरवाजा बन्द कर दिया। देवकी और वसुदेव पूर्ववत् कैद हो गये।

जो लोग उपर्युक्त अलौकिक वर्णन और दैवी घटनाओंपर विश्वास नहीं करते, वे उपर्युक्त बातोंको कवियोंकी कपोल कल्पना समझते हैं और अनुमान करते हैं, कि वसुदेव तथा उनके सहायकोंने कृष्णको बचानेका प्रबन्ध पहलेसेही कर रखा होगा। उनके इशारेसे ही पहरेवालोंने कैदखानेका दरवाजा

जान-बूझकर खुला छोड़ दिया होगा और जिस नागके फण फैलाकर कृष्णकी रक्षा करनेकी बात पुराण-कारोंने लिखी है, वह कोई नागवंशीय क्षत्री होगा। इत्यादि।
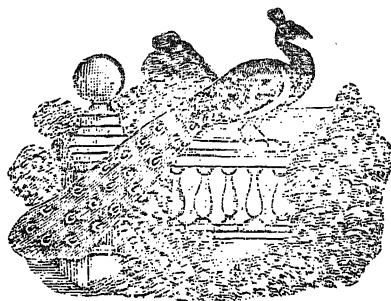
यथासमय कंसने सुना, कि देवकीकी आठवीं सन्तान उत्पन्न हो गई। यह सुनकर पापीका दुर्बल हृदय एक बार फिर कांप उठा। क्षण भरके लिये शरीर अवसन्न हो गया। मृत्युकी छाया मूर्त्ति, अपनी भीषणता दिखाकर, मानो उसे विशेष भयभीत कर गई। अभिमानी कंस अपनी दुर्बलतापर लज्जित हुआ और तुरन्त उठकर घबराया हुआ कैदखानेकी ओर दौड़ पड़ा।

प्रहरियोंने राजाको सामने उपस्थित देखकर दरवाजा खोल दिया। कंसने कमरेमें प्रवेश किया। भयभीत देवकी बालिकाको छातीसे लगाकर थर-थर काँपती हुई बोली,—"भाई, यह लड़का नहीं लड़की है। इसपर रहम करो। मैं तुमसे हाथ जोड़कर भिक्षा मागती हूँ। इस अभागिनीकी अन्तिम सन्तानको मत मारो।" परन्तु सुनता कौन है? कंसने झपटकर बालिकाको देवकीसे छीन लिया। बेचारी देवकी भीषण चीख मारकर ज़मीनपर गिर पड़ी। वसुदेव उसके शिरपर हाथ रख कर बैठ गये।

कंस नवजात शिशुको लेकर बड़ी फुर्तीसे कमरेके बाहर निकला और उसकी टाँग पकड़कर उसने बल पूर्व्वक उसे जमीन-

कंस और योगमाया ।

दुर्म्मति ! तेरा संहार-कर्त्ता जन्म ग्रहण कर चुका है ।

Durga Press, Calcutta.

देखिये—पृष्ठ

पर पटक दिया ! परन्तु यह क्या ? बालिका जमीनपर गिरनेके बदले हवामें उड़ गई। आश्चर्य्य चकित दृष्टिसे कंस ऊपरकी ओर देखने लगा ! बालिका कहाँ उड़ गई !! कुछ देर बादही बालिकाके स्थानपर एक दूसरी छाया मूर्त्ति कंस देखने लगा। देखते देखते वह छाया मूर्त्ति स्पष्ट दीख पड़ी। बालिका कहाँ ? यह तो साक्षात् भगवती अष्टभुजा आकाशमें खड़ी हैं। उनके शरीरसे मधुर स्निग्ध ज्योति निकल रही है। हाथोंमें धनुष-बाण, शूल, ढाल, तलवार और गदा आदि शोभा दे रहे हैं। भगवती कंसकी ओर देखती हुई मन्द-मन्द मुसका रही हैं। उनकी अद्भुत मूर्त्ति देखकर कंस काँपने लगा। उसके मुँहसे आवाज नहीं निकली। आश्चर्य्य, भय और आशंकाके कारण वह काठके पुतलेकी भाँति चुप-चाप खड़ा रह गया। उसे मालूम हुआ, कि देवी कुछ कह रही हैं। ध्यान देनेपर साफ सुनाई पड़ा। देवी कह रही हैं—"दुर्म्मते ! तेरा संहार-कर्त्ता जन्म ग्रहण कर चुका है। सुतरां अब अन्यान्य निर्दोष शिशुओंकी हत्या करना छोड़ दे।"

इतना कहकर वह देवी-मूर्त्ति अन्तरीक्षमें विलीन होगई। उस समय कंसके मनकी अवस्था बड़ी विचित्र हो रही थी। उसके मनमें बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। वह उसी समय फिर कैदखानेमें गया और वसुदेव तथा देवकीको छोड़कर अपने कृत्यपर बहुत कुछ पश्चात्ताप करने लगा। उसने कहा, मैंने देववाणीपर विश्वास कर बिना विचारे यह पाप-कर्म कर डाला। मुझे अब मालूम हो

गया, कि मनुष्योंकी भाँति देवता भी झूठ बोलते हैं। मैंने तुम लोगोंको बड़ा दुःख दिया है। वास्तवमें तुम दोनों साधु और बन्धुवत्सल हो। कृपाकर मेरा अपराध क्षमा करो। सरल हृदय वसुदेव और देवकीने सब कुछ भूलकर उस पापीको क्षमाकर दिया। इसके बाद कंस अपने राज-भवनमें चला गया। परन्तु उसकी चिन्ता दूर न हुई। घबराहट उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। कभी वह देव-वाणीको सत्य समझता, कभी देवताओंपर नाराज़ होता और कभी अपने दुष्कर्मोंके लिये अनुताप करता।

परन्तु बहुत कुछ सोचने विचारनेपर भी कंस स्थिर न कर सका, कि उसे क्या करना चाहिये। इसलिये उसने अपने मन्त्रियों और सहचरोंको बुलाकर एक मन्त्रणा-सभा की। समस्त असुरोंने एकत्र होकर बड़े तर्क वितर्कके बाद निश्चय किया, कि देवीके कथनानुसार अवश्य ही विष्णुने कहीं अवतार लिया है! इसलिये आजकी तिथिमें मथुरा-मण्डलमें जितने लड़के पैदा हुए हैं, वे सब ढूँढ़-ढूँढ़कर मार डाले जायँ। देवताओंका सरदार विष्णु ही सारे फसादकी जड़ है, इसलिये जैसे बने वैसे उसे भी कुछ दण्ड दिया जाय। वह धर्म-प्रेमी है और धर्मके मूल हैं वेद, गो-ब्राह्मण और यज्ञादि कर्म। इसलिये वेदवादी, तपस्वी, यज्ञ-शील ब्राह्मणों तथा गौओंको मार डालना चाहिये। ऐसा करनेसे या तो विष्णु मर जायेगा या घबरा कर भाग जायगा।

यह समीचीन प्रस्ताव कंसको खूब पसन्द आया। उसने हत्यारोंको बुलाकर इसे शीघ्र कार्य्यमें परिणत कर डालनेकी
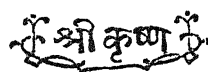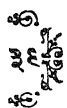
आज्ञा दे दी। फिर क्या था, समस्त ब्रजमण्डलमें कुहराम मच गया। नवजात शिशुओंके रक्तसे ब्रज-भूमि रँग गई। धार्मिकों तथा साधुओंके जानके लाले पड़ गये। प्रजा त्राहि-त्राहि पुकार उठी। भयभीत जनताने घरबार छोड़कर जंगलोंका रास्ता लिया। यज्ञादि सत्कर्म बन्द हो गये। जानके लोभमें कितने ही आस्तिक नास्तिक बन गये। इस तरह बहुत दिनों तक कंसके राज्यमें यह 'कत्लेआम' जारी रहा।

पाप मनुष्यको अन्धा बना देता है। अत्यन्त पापके कारण पापीकी मति भ्रष्ट हो जाती है। वह अपने पापोंको छिपानेके लिये और भी सैकड़ों घोर पाप करने लगता है, परन्तु तो भी उसके चित्तको शान्ति नहीं प्राप्त होती। आशंका और भयसे पापीका हृदय सदैव डाँवाडोल रहता है। सीधे-सादे, निष्कपट मनुष्य उसकी दृष्टिमें बड़े भीषण प्रतीत होते हैं। मति भ्रष्ट हो जानेके कारण, वह रस्सीको भी सांप समझने लगता है। यदि ऐसा न होता, तो दुरात्मा कंस अज्ञान बालकोंसे इतना भयभीत क्यों होता? देशभक्त, जाति-भक्त और धर्म्म-भक्त उसे इतने खौफनाक क्यों दिखाई देते! पापिनी राज्य-लालसा! तुझे धिक्कार है,—हजार बार धिक्कार है!! तेरे प्रलोभनमें पड़कर मनुष्य क्या क्या नहीं कर डालते! राज्यलोलुप व्यक्ति आत्म-मर्य्यादा, मानव-मर्य्यादा और सभ्यता भूलकर, अपनी पाप-वासना चरितार्थ करनेके लिये क्या क्या अधर्म्म नहीं कर बैठते। झूठ, फरेब, दगाबाजी और हत्या आदि कौनसे ऐसे

गर्हित कर्म हैं, जो राज्य-रक्षाकी आड़में नहीं किये जाते ! राज्य-लोलुप व्यक्ति यह नहीं विचारता, कि जिस राज्यको निरापद रखनेके लिये वह मनुष्यत्वसे गिरकर पूरा पशु बन गया है, वह चिरस्थायी नहीं है। भगवान भर्तृहरिके* कथनानुसार यह भूमि पानीसे घिरी हुई मट्टीका ढेला मात्र है, जिसे प्राप्त करनेके लिये इतना घोर अन्याय और अधर्म्म किया जाता है !

पापी कंस ! पापने तेरी आँखें बन्द करदी हैं । राज-भोगकी लालसाने तुझे निर्बुद्धि बना दिया है। तुझे खबर नहीं, कि जिस सुखके लिये तू इस घोर अपकर्ममें प्रवृत्त हुआ है, वह क्षणिक है। हाय, न जाने किस मोहमें पड़कर इस क्षणिक सुखके लिये तू इतना अधर्म्मकर अपनी आत्माकी अधोगति कर रहा है !

---

* "मृत्पिण्डो जलरेखया कथलितः—"

—भर्तृहरि ।

८
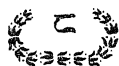
सूर्योदय होते होते समस्त गोकुल ग्राममें यहखबर फैल गई, कि नन्दरानी यशोदाने एक अद्भुत कान्तिवान, श्यामवर्ण पुत्र प्रसव किया है। यह खबर पाकर दलके दल गोप-गोपी और ग्वाल-बाल नन्दभवनकी ओर दौड़ पड़े। अपनी उदारता, सरलता और धार्मिकता आदि गुणोंके कारण, नन्दराज गोकुलवासियोंके अत्यन्त प्रियपात्र थे। छोटे-बड़े सभी उनसे प्रेम करते थे; उनका सम्मान करते थे। इसोलिये यह आनन्द-समाचार सुनकर सभी नन्दजीको बधाई देने चले। व्रजबालायें आनन्दसे अधीर हो, अपने बच्चोंको छोड़कर यशोदानन्दनको देखने चलीं। छोटे-छोटे बालक और बालिकायें खेलना भूलकर दौड़ते-हाँफते नन्दके घर उपस्थित हुईं। देखते देखते नन्दजीका घर प्रतिवेशियोंसे परिपूर्ण हो गया। भीतर-बाहर अद्भुत आनन्द-कोलाहल मच गया। नन्दराजने हँसते हुए सबको यथायोग्य सम्मान पूर्व्वक बिठाकर आदर सत्कार किया।

नन्दरानीने जो बालक प्रसव किया था, उसे जो देखता वही विमुग्ध हो जाता था। उस बालकमें न जाने कैसी एक विलक्षण मोहिनी शक्ति थी, जो देखनेवालेके मनको अपनी ओर खींच लेती थी। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें ऐसी शोभा भरी थी, जो देखते ही बनती थी।

बालकको देख, आनन्द-विह्वल हो, तरह-तरहके बाजे बजा कर गोपगण नाचने लगे। झुण्डकी झुण्ड गोपियाँ मंगल गान करने लगीं। छोटे छोटे ग्वाल-बाल इधर-उधर दौड़-धूप मचाने लगे। दही और हल्दी मिलाकर एक दूसरेके ऊपर छिड़ककर अपने हृदयका आनन्द प्रकाश करने लगे। नन्दजीका गृह दधिकर्दम मय हो गया। कितने ही देवता और देवांगनायें गोप-गोपियोंका वेषधारण कर इस आनन्दोत्सवमें सम्मिलित हुई थीं।

गोपराज नन्दजीके आनन्दका क्या पूछना है। महा आनन्दित होकर उन्होंने अपना धनागार खोल दिया है और प्रसन्नता पूर्वक धनराशि लुटा रहे हैं। आज नन्दजीके घरसे कोई विफल मनोरथ होकर नहीं लौटने पाता। ब्राह्मण भूरि भूरि दक्षिणा पा रहे हैं। बन्दी, मागध और भाट भी आशातीत पुरस्कार प्राप्तकर आनन्दित हो रहे हैं। दरिद्रोंने भोजन और वस्त्र पाया है। समागत प्रतिवेशियोंको नन्दजीने प्रसाद-स्वरूप वस्त्र, अलंकार और गायें दी हैं।

इस तरह नन्द-भवनमें कई दिनोंतक खूब चहल-पहल रही।

पुत्रका मनोहर मुख देखकर यशोदा प्रसव-पीड़ा भूल गई। उसकी सखियोंने आनन्द बधाई दी। बलदेवकी माता रोहिणीने भी इस महोत्सवमें यथोचित भाग लिया और अपनी आश्रयदात्री सखीको बधाई दी।

मनुष्योंके साथ साथ मानों प्रकृति भी इस आनन्दोत्सवमें सम्मिलित हुई। श्रीकृष्णके जन्मके समय गोकुलके आसपासके वनोंमें खूब हरियाली छा गई। कितने ही बरसाती फूल खिल गये। व्रजके सरोवरों तथा नदियोंके नीर निर्म्मल होगये। पक्षीगण भी अपनी स्वाभाविक मधुर ध्वनिमें मंगल गान करने लगे। यमुना परम प्रसन्नता पूर्व्वक कल-निनाद करती हुई प्रवाहित होने लगी। खेत धानोंसे लहराने लगे। उस समय व्रजभूमिने जो मनोरम शोभा धारण की थी, उसका वर्णन करना बड़ा ही कठिन काम है।
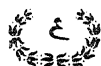
आनन्दोत्सव समाप्त होनेपर नन्दजीको मालूम हुआ, कि राजाको वार्षिक कर देनेका समय आ गया है। कंस बड़ा ही क्रूर राजा है। यदि ठीक समय पर उसके खजानेमें मालगुजारीके रूपये न भेजे जायेंगे, तो उसके अनुचर चपरासी यहाँ आकर नाना प्रकारके अत्याचार आरम्भ कर देंगे। इन प्रजा-पीड़क चपरासियोंको प्रजाके दुःख-सुख और मान-मर्य्यादाका कुछ भी ख्याल नहीं रहता। कर वसूल करनेके बहाने वे गरीब किसानोंको बहुत तंग किया करते हैं और कंस जैसे निठुर प्रकृति नृपतिके राजमें इसकी कोई सुनाई भी नहीं होती। नन्दजी सम्माननीय व्यक्ति थे। उन्हें अपनी मान-मर्य्यादाका पूरा ख्याल था। वे कंसके अनुचरोंको व्रजकी प्रजा पर जुल्म करनेका मौका नहीं मिलने देते थे और समयसे पहले ही राजकर चुका दिया करते थे।

फलतः वार्षिक राजकर चुकानेका समय उपस्थित देख, विश्वासी गोपोंको गृह-रक्षाका भार सौंपकर, बैल-गाड़ी पर सवार हो, नन्दजी मथुरा गये और नियमानुसार कर चुका कर विश्रामागारमें आकर विश्राम करने लगे। इतनेमें वसु-

देवजीको नन्दमहरके आनेकी खबर मिली। वे बड़ी खुसीसे उनसे मिलने आये। कुशल प्रश्न आदिके बाद तरह-तरहकी बातें होने लगीं। इस वृद्धावस्थामें पुत्र होनेके लिये वसुदेवजीने नन्दजीको बधाई दी। इसके बाद रोहिणी और बलरामका कुशल आदि पूछा। नन्दजीने वसुदेवके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए उनके छः पुत्रोंके लिये बहुत कुछ दुःख प्रकाश किया। अन्तमें एक कन्या हुई, परन्तु वह ईश्वरकी मायासे उड़ गई! न जाने नारायणकी क्या इच्छा है! मालूम होता है, इसमें भगवानका कोई गूढ़ रहस्य छिपा है।
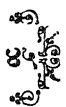
इस प्रकार बड़ी देरतक वार्तालाप होनेके बाद वसुदेवने कहा,—"तुमने राज कर तो चुका दिया। अब अधिक देर तक यहाँ विलम्ब न करो। शीघ्र ही गोकुल चले जाओ। आजकल समय बड़ा खराब है। जानते ही तो हो, कि मथुराकी राजगद्दीपर कंस महाराज अवस्थित हैं। कब क्या अनर्थ कर डालेंगे इसका कुछ ठिकाना नहीं। अतएव तुम शीघ्रही अपने घर चले जाओ।

इसके बाद वसुदेवसे विदा लेकर नन्दने तुरन्त ही गोकुलके लिये प्रस्थान किया। कुछ दूर जानेपर सोचने लगे, कि वसुदेव बड़े धार्मिक, सत्यवादी और साधु पुरुष हैं। गोकुलमें किसी प्रकारके उत्पातकी सम्भावना देख कर ही उन्होंने शीघ्र चले जानेकी सलाह दी है। सुनते हैं, कंसकी आज्ञा पाकर राक्षसी पूतना सारे व्रजमण्डलमें घूम घूमकर नव-जात शिशु-

ओंका बध कर रही है। कहीं ऐसा न हो, कि वह चुड़ल गोकुल पहुँचकर भी कुछ उत्पात मचावे। यही सोचकर उन्होंने गाड़ीवानको शीघ्र गाड़ी हाँकनेकी आज्ञा दी।

नन्दजीकी आशङ्का निर्मूल न थी। सत्य-सत्य ही राक्षसी पूतना गोकुलमें पहुँच गई थी। वह राक्षसी बड़ी मायाविनी थी। तरह-तरहका वेष बनाना जानती थी। कंसके आदेशानुसार पूतना परम रूपवती रमणी-मूर्त्ति धारण कर नन्दके घर पहुँची। उसका रङ्गरूप और पहनावा आदि देखकर कोई पहचान न सका, कि यह शिशुघातिनी राक्षसी है। इसलिये लोगोंने किसी प्रकारकी उसे बाधा न दी। पूतना निशङ्क चित्तसे कृष्णके निकट पहुँच गई। यशोदा और रोहिणी वहाँ मौजूद थीं। परन्तु उन बेचारियोंकी इसकी क्या खबर थी, कि यह 'विषकुम्भ पयोमुखम्', क्रूर हृदया राक्षसी है। उन्होंने समझा, कि किसी भले घरकी बहू कृष्णको देखने आई है। इस तरह और भी तो कितनी ही अपरचिता स्त्रियाँ प्रतिदिन आकर इस अद्भुत बालकको देख जाती हैं।

पूतनाने बड़े प्यारसे बालकको गोदमें उठा लिया और उसके रङ्गरूपकी प्रशंसा कर खेलाने लगी। यशोदा और रोहिणी प्रसन्नता पूर्व्वक उस रूपसी राक्षसीसे तरह-तरहकी बातें करने लगीं।

पूतना पहलेसे ही अपने स्तनोंमें तीव्र हलाहल पोत लाई थी। बालकको गोदमें लेकर उसने तुरन्त ही स्तन उसके मुँहमें डाल दिया। बालक प्रसन्नता पूर्व्वक स्तनपान करने

पूतना-वध ।

उसका शरीर अवसन्न हो गया, और धीरे धीरे प्राण पखेरू देह-पिञ्जर छोड़कर उड़ गया ।

लगा और उसके साथ साथ पूतनाकी जीवनी शक्ति भी शोषण करने लगा। थोड़ी देर बाद ही पूतना समझ गई, कि यह बालक साधारण बालक नहीं है। इसका रङ्ग-रूप जैसा विचित्र है, इसकी शक्ति भी वैसी ही विचित्र है। पूतना बेतरह फंसी। बालकके स्तनपानके कारण उत्तरोत्तर उसकी शक्ति क्षीण होने लगी। असहनीय यातनासे उसका मन और शरीर व्याकुल हो गया। अन्तमें घबराकर वह बालकके मुँहसे अपना स्तन निकालनेकी बार-बार चेष्टा करने लगी और बालक अपने दोनों हाथोंसे स्तनको पकड़कर और भी तेजीसे चूसने लगा। मर्मान्तिक पीड़ासे पूतना व्याकुल हो उठी। उसके शरीरसे पसीना निकलने लगा, आखें लाल हो गईं और सारा शरीर अवसन्न होने लगा। असह्य यन्त्रणासे राक्षसी चिल्लाकर कहने लगी,—"छोड़–छोड़! बहुत हुआ! अब नहीं सहा जाता!!"

अन्तमें जब पीड़ा अत्यन्त असह्य हो गई, तब वह उठकर भागने लगी। उस समय यातनाके कारण उसे होश नहीं रहा। सारी माया भूलकर उसने अपना असली रूप प्रकट कर दिया और चिल्लाकर भूमिपर गिर पड़ी। परन्तु इतनेपर भी, बालकने उसका पिण्ड न छोड़ा। भूमिपर गिरी हुई राक्षसी कष्टके कारण हाथ-पैर पटकने लगी। कुछ देरतक छटपटानेके बाद उसका शरीर अवसन्न होगया और धीरे-धीरे प्राणपखेरू देह-पिञ्जर छोड़ कर उड़ गया।

पूतनाकी चिल्लाहट सुनकर, सैकड़ों गोपगोपियोंने उसके पास पहुंच कर देखा, कि एक पर्वताकार राक्षसी मरी पड़ी है और कृष्ण उसकी छातीपर लेटे हुए खेल रहे हैं। यह देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य्य हुआ।

यशोदाने दौड़कर बालकको गोदमें उठा लिया और बार-बार उसका मुँह चूमने लगी। इसके बाद कृष्ण घर लाये गये और जो घटना संघटित हो गई थी, उसे उपदेवता*का प्रकोप समझकर बालककी रक्षाके लिये टोटका आदि होने लगा। प्रचलित प्रथानुसार गायके पूँछसे बालकका शरीर झाड़ा गया। उसके शरीरमें गोबर, गो-मूत्र और गो-दूध लपेटकर स्नान कराया गया और उसके द्वादश अङ्गोंपर द्वादश देवताओंके नाम लिखकर शान्ति-विधान किया गया।

नन्दने मथुरासे लौटनेपर सब हाल सुना। उन्हें मालूम हो गया, कि वसुदेव की आशङ्का निर्मूल न थी। इसलिये उन्होंने मनही मन उन्हें अनेकानेक साधुवाद दिया।

इसके बाद लकड़ी लाकर चिता बनाई गई और नन्दजीके आदेशानुसार पूतनाका अग्निसंस्कार कर दिया गया। भगवान् कृष्णकी कृपासे पूतनाकी आत्मा इस नश्वर जगत्को छोड़कर गोलोकमें वास करने गई।

श्री मद्भागवत्के उपर्युक्त पौराणिक वृत्तान्तको औपन्यासिक वर्णन मानने वाले विद्वानोंका कथन है, कि शायद श्रीकृष्ण

---

*भूत-प्रेत।

जीको "पूतना" नामक रोग हो गया था और दवादारू करनेसे अन्तमें अच्छा हो गया। शायद इसी आधारपर पौराणिकोंने पूतना राक्षसीकी कल्पना कर ली होगी। सुविख्यात चिकित्सा-ग्रन्थ "सुश्रुत"में पूतना रोगका जिक्र भी आया है और यह भी लिखा है, कि यह रोग बच्चोंको होता है और अक्सर उनका प्राण लेकर ही छोड़ता है।

पूतना नामका एक पक्षी भी होता है, जो गृद्धकी तरह बड़ा होता है। सम्भवतः इसी पक्षीने कृष्णपर आक्रमण किया होगा और कृष्णने उसे पकड़कर मार डाला होगा। क्योंकि एक बलवान बालकका गृद्ध जैसे पक्षीको मार डालना कोई बड़े आश्चर्य्यकी बात नहीं। महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञके समय राजा शिशुपालने कृष्णको कटुवाक्य कहते हुए, कहा भी था, कि लड़कपनमें इसने एक गृद्धको मार डाला था, क्या इसीसे श्रेष्ठ हो गया! *इसके सिवा हरिवंश पुराणमें भी पूतना नाम एक पक्षीका ही लिखा है।

*महाभारत, सभापर्व। अध्याय ४०।

१०
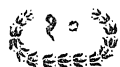
शकट-भञ्जन और तृणावर्त्त-वध।

धीरे धीरे श्रीकृष्ण तीन मासके हुए। जिस तरह चन्द्रमाकी ज्योति दिन दिन बढ़ती है, उसी तरह उनकी रूप-छटा भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। साथ ही साथ उनके प्रति गोप-गोपियोंका स्नेह भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। बालक कृष्णमें एक अलौकिक आकर्षण-शक्ति थी। उसके कारण गोकुल ग्राममें कोई भी ऐसा मनुष्य न था, जो एकबार नन्दजीके घर आकर प्यारे बालकको देख न जाता हो। इसलिये यह छोटासा बालक गोप-गोपियोंका खिलौना बन गया। बालक अद्भुत था। खिले हुए सुन्दर फूलमें लिपटी हुई स्निग्ध चाँदनीकी भाँति उसके होठोंमें सदैव हँसी लगी ही रहती थी। जो कोई हाथ बढ़ाता, बालक उछलकर उसीकी गोदमें चला जाता। मानों उससे पुरानी जान पहचान है।

तीसरे मास कृष्णके जन्म-दिनके उपलक्षमें नन्दजीने कुछ धर्म्मानुष्ठान करनेका विचार किया। बालकके कल्याणार्थ

विशेष प्रकारसे देव-पूजनका आयोजन होने लगा । उसीके साथ साथ ब्राह्मण-भोजन, बिरादरी-भोजन और कुछ आमोद्-प्रमोद्की भी तैयारी हुई। देखते देखते जन्म-तिथि उपस्थित हुई। वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर बालकके कल्याणके लिये विविध प्रकारसे देवताओंकी पूजा कराई गई । इसके बाद ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया। फिर गोप गोपवालोंकी पाँति बैठी। पुरुषोंके भोजन कर लेनेपर स्त्रियोंकी बारी आई। यशोदाने श्रीकृष्णको पालनेमें सुलाकर, उसे एक छकड़ेके नीचे लटका दिया और स्वयं वह रोहिणी सहित गोपियोंको खिलाने पिलानेमें लगीं थीं।

इधर कृष्णको मारडालनेके लिये दुरात्मा कंसका भेजा हुआ, एक राक्षस, अलक्ष्य भावसे आकर छकड़ेके ऊपर चढ़ बैठ गया। इतनेमें बालककी नींद खुल गई। वह हाथ-पैर फेंक फेंककर रोने लगा । इधर यशोदा और रोहिणी गोपियोंको भोजन करानेमें इतना व्यस्त थीं, कि उन्हें बालककी बिल्कुल सुधि न रही। बालकने रोते रोते अपने कोमल पैरोंसे छकड़ेमें धक्का मारा। छकड़ा उलट गया। आस पासमें रखी हुई दूध-दहीकी मटुकियाँ टूटकर चूर-चूर हो गईं। ग्वाल-बालोंने दौड़कर यशोदाको खबर दी, कि कृष्णने लात मारकर छकड़ेको उलट दिया है। यशोदाने जाकर देखा कि, सचमुच छकड़ा उलट गया है और गोरस गिरकर तमाम घरमें फैल गया है। यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। नन्द आदिने भी यह अद्भुत

काण्ड देखा, परन्तु किसीको इस बातपर विश्वास न हुआ, कि एक तीन महीनेके बालकके पैरकी ठोकरसे इतना बड़ा छकड़ा उलट गया होगा। निश्चयही यह किसी भूत-प्रेतका काम है। उसी समय ब्राह्मणोंको बुलाकर उपदेवताकी शान्ति कराई गई।

इस घटनाके कुछ दिन बाद यशोदा आँगनमें बैठी हुई कृष्णको दूध पिला रही थीं। हठात् उन्हें कृष्ण बड़े भारी मालूम होने लगे। यहाँ तक कि उनका बोझ सँभालना उनके लिये कठिन हो गया। इसलिये उन्होंने कृष्णको गोदसे उतारकर भूमि पर बैठा दिया और स्वयं किसी कार्य्यवश अन्यत्र चली गईं।

इतनेमें कंसका भेजा हुआ तृणावर्त्त नामक एक असुर कृष्णको मारनेकी इच्छासे वहाँ आ पहुँचा। तृणावर्त्त बड़ाही मायावी राक्षस था। वह मायासे आँधी बनकर कृष्णको उड़ा ले गया। यशोदा कृष्णको जिस जगह बैठा गईं थीं, वहाँ उन्हें न पाकर अत्यन्त व्याकुल हुईं। परन्तु आँधी बड़े जोरसे चल रही थी। धूलसे सारा गोकुल आच्छादित हो रहा था। आँखें खोलना मुशकिल था। यशोदाने बालकको इधर-उधर टटोला परन्तु जब कहीं पता न लगा तो मृतवत्सा गायकी भांति व्याकुल होकर रोने लगीं।

कुछ देरके बाद आँधी बन्द हुई। लोगोंने देखा, कि एक विशालकाय राक्षस मरा पड़ा है और कृष्ण उसकी छातीपर खेल रहे हैं। बात यह थी, कि तृणावर्त्त नामक एक राक्षस आँधी बनकर कृष्णको उड़ा ले चला था। परन्तु ऊपर जानेपर

उनका भार सहन न कर सका। इससे छोड़कर भागने लगा। परन्तु कृष्ण उसे कब छोड़ने वाले थे ? उन्होंने उसे पकड़कर इस जोरसे पटका, कि फिर उसमें उठनेकी ताकत न रही। वही गिरना उसका अन्तिम गिरना हुआ। नन्द, उपनन्द तथा अन्यान्य गोपोंने इस घटनापर बड़ा आश्चर्य्य प्रगट किया और कृष्णको उठाकर यशोदाके पास ले गये।

बार-बार एक न एक उत्पात होते देखकर नन्दजी बड़े चिन्ताकुल हुए। उन्होंने बालककी रक्षाके लिये बहुत कुछ पूजा-पाठ कराया।

११
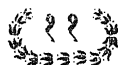
नामकरण संस्कार.

माता, पिता तथा पुर-परिजनोंको नित्य नया आनन्द प्रदान करते हुए कृष्णने अपनी आयुके छठे मासमें प्रवेश किया। उपयुक्त समय उपस्थित देखकर नन्दजी बालकोंके नामकरण संस्कारका आयोजन करने लगे। धीरे धीरे प्राय: सब तैयारी हो गई। इतनेमें एकदिन वसुदेवजीने अपने कुल-पुरोहित गर्गजीको नन्दजीके घर भेजा। गर्गजी विख्यात विद्वान और यदुवंशियोंके पुरोहित थे। कर्मकाण्डके अच्छे पण्डित समझे जाते थे। हठात् उन्हें उपस्थित देख, नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उठकर उनका स्वागत किया और सम्मान-सहित उचित आसन देकर बिठाया। कुशल प्रश्नादि समाप्त होनेपर नन्दजीने कहा,—"आपने दर्शन देकर बड़ी कृपाकी। आज हमारा गृह पवित्र हो गया। हमने अपने बालकोंका नाम-करण संस्कारके लिये सब आयोजन कर लिया है। हमारे सौभाग्यसे ही इस अवसरपर आप आगये हैं। मैं चाहता हूँ, कि यह शुभकार्य्य आपही द्वारा सम्पन्न हो। सब सामान ठीक है, केवल आपकी अनुमति की देर है।

गर्गजीने कहा--"लड़कोंका नामकरण तो अवश्य होना चाहिये। परन्तु मेरे द्वारा यह कार्य्य कराना अच्छा नहीं। क्योंकि मैं यदुवंशियोंका आचार्य्य हूँ। मेरे द्वारा संस्कार-कार्य्य होनेसे लोग तुम्हारे लड़केको देवकीका लड़का समझेंगे। राजा कंस इस बातको अच्छी तरह जानता है, कि वसुदेवसे तुम्हारी गाढ़ो मित्रता है। देवकी की कन्या योगमायाकी बात कंसको याद है। उसका निधनकर्त्ता पैदा हो गया है, इस बातपर उसे दृढ़ विश्वास है। इसोसे वह अपने अनुचरों द्वारा बच्चोंकी हत्या करा रहा है। गोकुलमें भी उसके अनुचर घूमते रहते हैं और नवजात शिशुओंकी जान मारनेका अवसर ढूँढ़ते फिरते हैं। यदि कंसको मालूम हो जाय, कि मैं यहाँ तुम्हारे लड़कोंका नाम-करण संस्कार कराने आया था तो उसे अवश्य ही सन्देह होगा और निश्चयही उसके सन्देहका परिणाम तुम्हारे लिये विशेष चिन्ताजनक होगा।

नन्दजीने कहा—"आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है। परन्तु गोकुल अति गुप्त स्थान है। इस समय यहाँ कंसका कोई अनुचर भी मौजूद नहीं। यदि आप आज्ञा देंगे, तो मैं अपने आदमियों को भी इस बातकी खबर न होने दूँगा। आप निर्जन स्थानमें बैठकर केवल स्वस्तिवाचन करा दीजिये। मेरी बड़ी इच्छा है, कि इन बच्चोंका द्विजाति-संस्कार आपही द्वारा हो।"

नन्दजीकी विनम्रता और आग्रह देखकर गर्गजीने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। वास्तवमें वसुदेवजीने इसी कार्य्यके

लिये उनको गोकुल भेजा भी था और वे गुप्त भावसे ही यह कार्य्य करना चाहते थे। इसीसे इतनी बात चीत करनेकी आवश्यकता पड़ी।

गर्गजीके आदेशानुसार नन्दने अत्यन्त गुप्तरूपसे सब सामान ठीक कराकर, गोशालाके भीतर निर्जन स्थानमें अनुष्ठान आरम्भ कराया। यशोदा और रोहिणी अपने अपने बालकोंको लेकर उपस्थित हुईं। यशोदाकी गोदमें श्याम रङ्गके अद्भुत बालकको देखकर गर्गजीको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। ऐसा विचित्र शोभामय शिशु उन्होंने कभी देखा न था। बालकके चेहरेपर एक अद्भुत प्रतिभा झलक रही थी। गर्गजी कुतूहल-पूर्ण दृष्टिसे बालकको देखने लगे। उन्होंने शास्त्रोंमें भगवान नारायणके अङ्गोंका जो वर्णन पढ़ा था, वही उस बच्चेके अङ्गोंमें देखकर अत्यन्त आश्चर्य्यमें पड़े। उन्हें विश्वास हो गया, कि निश्चय भगवान विष्णुने ही इस बालकके रूपमें अवतार लिया है। इस लिये वे मनही मन अत्यन्त आनन्दित हुए। उनकी इच्छा होती थी, कि बालकके छोटे छोटे चरणोंको पकड़कर चूमलें। अथवा उसे गोदमें उठाकर प्यार करें। परन्तु ऐसा करनेसे शायद नन्द आदि उन्हें पागल कहें, इसीसे वे चुपचाप यशोदा-नन्दनको देखने लगे। बालककी ओर देखते देखते गर्गजीका धैर्य्य विलुप्त होने लगा। सारे शरीरमें बार बार रोमाञ्च होने लगा। उन्होंने मनही मन अपना जीवन-जन्म सार्थक समझा।

अनन्तर बड़ी चेष्टासे धैर्य्य धारणकर गर्गजीने कार्य-आरम्भ

कराया। नामकरण-संस्कारकी आवश्यक विधियोंका पूर्णरूपसे पालन करा, रोहिणीके पुत्रका नाम "बलराम" और यशोदा-नन्दनका नाम "श्रीकृष्ण" रखा।

इसके बाद वे नन्दजीसे कहने लगे,—"तुम्हारे बालकके अङ्गोंमें जो शुभ लक्षण पड़े हैं, उनसे मालूम होता है, कि यह विष्णुका अवतार है। जब जब पृथ्वीपर अधर्म्म फैलता हैं, तब तब भगवान् अवतार धारण कर भूभार उतारा करते हैं। इस तरह प्रत्येक युग-परिवर्तनके समय उनका अविर्भाव हुआ करता है। इस बालक द्वारा संसारमें विशेष परिवर्तन होने वाले हैं। तुम इसे ईश्वरका अवतार समझकर खूब सावधानीसे इसका पालन-पोषण करना। वास्तवमें तुम बड़े सौभाग्यशाली हो। तुम्हारा पुत्र अनेक महत् कर्म्मों द्वारा तुम्हारा मुखोज्ज्वल करेगा।"

यह कहकर गर्गजीने अपने घर जानेकी इच्छा प्रगट की। नन्दराजने यथोचित दान-दक्षिणा देकर उन्हें बिदा किया।

नाम-करण संस्कार हो जानेपर एक दिन नन्दजीने लड़कोंका अन्नप्राशन भी बड़ी धूमधामसे करा डाला।

१२

बाल-लीला

ज्यों ज्यों दिन बीतने लगे त्यों त्यों बलराम और कृष्णकी शक्ति और सुन्दरता भी बढ़ने लगी। दोनों मनोहर बालक अब घुटनेके बल चलने लगे। उनकी बाल-सुलभ चपलता, मधुर हँसी और चञ्चल अङ्ग-भङ्गी देखकर नन्द-यशोदा तथा अन्यान्य गोप-गोपिकायें मुग्ध होने लगीं। कभी कभी दोनों भाई खिसकते खिसकते घरसे बाहर निकल जाते। यशोदा या रोहिणी 'मत जाओ, हौआ पकड़ लेगा' कहती हुई पीछे दौड़तीं। बालक मुड़कर उनकी ओर देखते और खिल-खिलाकर हँसते हुए किञ्चित् और तेजीसे भागनेकी चेष्टा करते। कभी कभी राह-चलते मनुष्योंके पीछे पीछे चले जाते और निकट जाकर उसे पहचानकर संकुचित भावसे लौट पड़ते। कभी कभी गोष्ठ में जाकर छोटे छोटे बछड़ोंकी पूँछ पकड़ लेते और बछड़े उन्हें खींचते हुए इधर उधर दौड़ जाते। पूंछ हाथसे छूट जाती, बालक रो पड़ते। उस समय उन्हें जो देखता आनन्दित हो जाता। बालकोंकी चपलता किसे अच्छी नहीं लगती?

इसी तरह क्रीड़ा-कौतुक करते कुछ दिन और बीते। बलराम
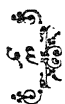
और कृष्णने खड़े होकर पैरोंके बल चलना सीखा। साथही साथ अपनी तोतली बोलीमें कुछ कुछ बोलने भी लगे। अब ये एक क्षण भी घरमें नहीं ठहरते थे। कृष्ण बड़े चञ्चल और चतुर थे। माताकी आँखें बचाकर, धीरेसे निकल भागते और पड़ोसियोंके घरोंमें जाकर नाना प्रकारके उत्पात मचाया करते। कभी बछड़ोंके पगहे खोल देते, कभी दुधारी गायोंके स्तनोंमें मुँह लगाकर दूध पीते और कभी तमाम शरीरमें धूल-मट्टी लपेटकर नाना-प्रकारके क्रीड़ा-कौतुक किया करते। माता यशोदा उनके खेल-तमाशे देखकर परम आनन्द पातीं और कभी कभी कृत्रिम कोप प्रकाशित कर उन्हें डाँटतीं। उस समय कृष्ण बड़े गम्भीर भावसे खड़े हो जाते। मानों बड़े सीधे-साधे हैं। बेचारे कुछ जानते ही नहीं। जब माता डाँट-डपटकर चुप हो जातीं तो खिल-खिलाकर हँस पड़ते और अपनी कमल-नाल सदृश बाँहें माताके गलेमें डालकर उसकी छातीसे लग जाते। यशोदा अत्यन्त स्नेहसे उनका मुँह चूम लेतीं।

कृष्ण जैसे चपल थे, वैसेही निडर और निर्भीक भी थे। भय और आशङ्का किसे कहते हैं, यह वे जानते ही न थे। कभी कभी वे अकेले या अपने हमजोलियोंके साथ गोपियोंके घरोंमें घुस कर दूध, दही और मक्खन खाने लगते, कभी मक्खन और दहीकी मटकियाँ लाकर बन्दरोंके आगे रख देते और कभी दूध दहीके बासन तोड़-फोड़कर तहस-नहस कर देते। गोपियाँ उनके उत्पा-तोंसे आजिज़ आकर यशोदाके पास उलहना लेकर आतीं। उस

समय कृष्ण अत्यन्त भोले-भाले बन जाते और गोपियाँ उनपर जो अपराध लगातीं, उससे साफ इन्कार कर जाते। कभी ये किसी पड़ोसिनके घरमें घुस जाते और उसके छोटे बच्चेको जगाकर रुला देते।

श्रीकृष्णके उत्पातोंसे गोकुलकी गोपियाँ हैरान थीं। दूध-दहीके बरतन जमीनपर रखना मुशकिल था। इसलिये उन्होंने ऊँचे सीकोंपर बरतन रखना आरम्भ किया। परन्तु उसका भी कोई फल न हुआ। जब वे किसी कामके लिये घरसे बाहर निकल जातीं तो कृष्ण उनके घरोंमें घुस जाते और ऊखल तथा पीढ़ी आदिके सहारे सींके तक हाथ पहुँचाकर दही-दूध बरबाद कर देते। यदि इस तरह सफलता न होती तो किसी चीजकी नोक द्वारा सींकेपर टँगे हुए बासनोंमें छेद कर देते अथवा लाठी मारकर उन्हें तोड़-फोड़कर चल देते। इसी तरह उमरके साथ साथ कृष्णकी शोखी और शरारत भी बढ़ने लगी।

कुछ बड़े होनेपर वे अपने समवयस्क बालकोंका एक दल बनाकर स्वयं उसके दलपति बन गये। कभी कभी वे अपने दलके साथ घने जंगलोंमें निकल जाते और हिंसक जन्तुओंका शिकार किया करते। कभी यमुनाकी लहरोंमें तैरते और कभी मरकही गायों तथा साढ़ोंके साथ छेड़-छाड़ करते।

इनके साथी ग्वालबाल इनसे बड़े प्रसन्न रहते थे। इनकी कोई बात नहीं टालते थे। श्रीकृष्ण हँसोड़ ऐसे थे, कि रोतोंको भी हँसा देते थे। बाँसरी बजाने, गाने और नाचनेमें भी वे बड़े
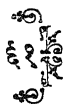
प्रवीण थे। वनके ऊँचे वृक्षोंपर बैठकर जब वे वंशीकी तान छेड़ने लगते तब गोकुलवासी विमुग्ध हो जाते। कभी कभी गोपियाँ उन्हें पकड़ लेतीं और जब नाच दिखाते तब छोड़तीं। कृष्णके इन्हीं सब गुणोंपर गोकुलवासी विमुग्ध थे। यद्यपि कृष्ण उनका दही-दूध बरबाद कर उन्हें विशेष क्षतिग्रस्त कर देते थे तथापि कोई उनसे असन्तुष्ट नहीं होता था। उनके होंठोंकी मधुर मुस्कान हजारों असन्तोषोंको हवामें उड़ा देती थी। उनकी प्यारी चितवन, अनोखी चाल और मोहिनी मूरत ब्रजवासियोंके लिये बड़े आनन्द की वस्तु थी। कृष्ण ब्रजबासियोंके जीवन-प्राण थे। उनकी नित्य नई लीलायें देख गोप-गोपियोंको नित्य नये आनन्द प्राप्त होते थे।
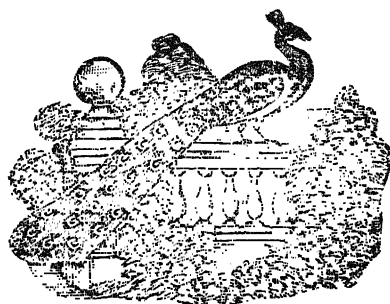
ऊपर लिख आयें हैं कि, लड़कपनमें कृष्ण गोकुल वासियोंके घरोंमें चोरीसे घुसकर उनका दही और मक्खन आदि खा जाते और अन्तमें बरतन आदि भी तोड़-फोड़-कर चल देते। गोपियाँ उन्हें पकड़नेकी चेष्टा करतीं, परन्तु वे हाथ न आते! इसके अतिरिक्त कभी कभी वे अलौकिक लीलायें दिखाकर भी लोगोंको विस्मित किया करते थे।

एक दिन वे इधर उधर ताककर चुपके चुपके एक ग्वालनके घरमें घुस पड़े। घर सूना था। घरकी मालकिन किसी कार्य्यावश कहीं चली गई थी। ऐसे सुअवरसे कृष्ण कब चूकने वाले थे। झट घरमें घुसकर दहीकी मटकी ढूँढ़ निकाली और स्वच्छन्दता पूर्व्वक भोजन करने लगे। इतनेमें ग्वालन आ पहुँची। उसे देखते ही आप भागनेकी तैयारी करने लगे, परन्तु सफल नहीं हुए। ग्वालनने दौड़कर उनका हाथ पकड़ लिया और हँसती हुई यशोदाके पास ले जाकर कहने लगी,—बहन! जरा अपने भोले-भाले कन्हैयाकी करतूत देखो। मैं किसी कार्य्यावश बाहर गई थी, तबतक आप
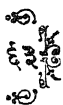
चुपकेसे घरमें घुसकर दही उड़ा रहे थे। देखो, इस समय कैसे साधु बने हैं।"

यशोदाने बालककी ओर देखकर कहा,—"वाह बहन, अच्छा उलहना लेकर आई हो! जरा गौरसे देखो तो, कि किसे पकड़ लाई हो?"

गोपीने बालककी ओर देखा, तो कृष्णकी जगह अपने लड़केको पाया। बेचारी लजाकर बालकका हाथ धरे घरकी ओर लौटी। परन्तु यह क्या? रास्तेमें उसने देखा, कि कृष्णको ही धरे लिये जा रही है। यह अद्भुत तमाशा देखकर उसे बड़ा आश्चर्य्य हुआ। परम खिलाड़ी कृष्णने उसे आश्चर्य्यमें पड़ी देख कर हँसते-हँसते कहा,—"ताकतो क्या है। यदि फिर कभी मुझे पकड़ेगी तो ऐसा छकाऊँगा कि याद करेगी। अबकी तेरे पतिको पकड़ा दूँगा। सावधान! यह हाल किसीसे न कहना।"

एक दिन घूमते-फिरते कण्वमुनि नन्दजीके घर आ पहुँचे। मुनिराज परम वैष्णव और बालकृष्णके उपासक थे। उन्हें अपने योग-बल द्वारा यह बात मालूम थी, कि भगवानका युगावतार हो गया है। परन्तु यह नहीं जान सके थे, कि कहाँ।

नन्दजीने मुनिवरकी बड़ी ख़ातिर की। उनके आज्ञानुसार भोजनकी सामग्री मंगाई गई। मुनिने अपने हाथसे भोजन बनाया और थालमें परोसकर अपने इष्ट देवताको अर्पण करने लगे। बालक कृष्ण बलराम सहित निकट ही खेल रहे थे। मुनिराज मन्त्र पढ़कर थोड़ी देरके लिये ध्यान मग्न हो गये। आँखें
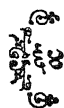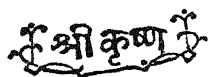
खोलनेपर देखा, कि बालक कृष्ण उनकी परसी थालीमेंसे एक ग्रास भोजन उठाकर चख रहे हैं। भोजन नष्ट हो गया समझ कर मुनिराज विना खाये ही उठ गये। यशोदाने बिगड़कर कृष्णको मारना चाहा, परन्तु मुनिने छुड़ा दिया।

इसके बाद नन्दजीके बहुत प्रार्थना करनेपर मुनिने फिर भोजन बनाया। यशोदा कृष्णको लेकर एक पड़ोसिनके घर चली गई। इधर मुनिने भोजन तैयारकर फिर इष्ट-देवताको निवेदनकर देखा, कि कृष्णजी बैठे हुए भोजन कर रहे हैं। अबकी बार नन्दजी भी लड़केकी करतूत देखकर उसपर नाराज हुए। मुनिने कहा—'मालूम होता है आज मेरे भाग्यमें भोजन बदा नहीं है। घरमें यदि फल आदि हों तो लावो आज वही भगवानको भोग लगाऊँगा, परन्तु नन्दजी फिर भोजन बनानेके लिये आग्रह करने लगे। उनके विशेष प्रार्थना करनेपर मुनिने फिर भोजन बनाया। इधर यशोदाने कृष्णको एक घरमें सुलाकर उसका द्वार बन्द कर दिया और कई आदमियोंको पहरा देनेके लिये नियुक्त कर दिया। मुनिराजने भोजन तैयार कर पूर्ववत् भगवानको अर्पण किया और आँखें खोल कर देखा, तो कृष्ण भी पूर्ववत् उनकी थालीमें बैठे खा रहे हैं।

यह देख मुनिको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। वे भोजन छोड़कर चलने लगे तो कृष्णने कहा—"महाराज, आप तो बार बार मन्त्र पढ़कर मुझे भोजनके लिये आह्वान करते हैं और जब मैं आकर भोजन करने लगता हूँ, तो आप नाराज़ होते हैं। क्या आप

कृष्णने अपनी सचाई दिखानेके लिये माताके निकट आकर मुंह खोल दिया।
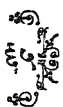
जानते नहीं, कि जो मुझे प्रेम-पूर्व्वक बुलाता है, उसके पास अवश्य जाता हूँ।" यह कहकर उन्होंने मुनिको अपने चतुर्भुजी रूपका दर्शन दिया। अपने इष्ट-देवताका साक्षात् दर्शन पाकर कण्व मुनि कृतार्थ हो गये और बड़े प्रेमसे वालकृष्णका जूठा प्रसाद पाकर सन्तुष्ट हुए। नन्द और यशोदा आदिको इस बातकी जरा भी खबर न हुई। मुनिवरके भोजन करनेपर देखा गया, कि कृष्ण अपने स्थानपर बेखबर सो रहे हैं।

एक दिन कृष्णके साथियोंने यशोदाके पास जाकर कहा, कि इसने मिट्टी खाई है। यशोदा कृष्णको पकड़ लाई और मिट्टी खानेके लिये उनका तिरस्कार करने लगी। कृष्णने रोते रोते, अत्यन्त करुण स्वरसे कहा—"मैंने कदापि मिट्टी नहीं खाई है। ये व्यर्थ ही मुझपर कलङ्क लगा रहे हैं।" बलरामने कहा—"इसने जरूर मिट्टी खाई है; मैंने खुद देखा है।" बलरामकी बातपर विश्वास कर यशोदाने कहा,—"तूने जरूर मिट्टी खाई है। अपना मुँह खोल, देखूँ कि तू सच बोलता या झूठ।" कृष्णने अपनी सचाई दिखानेके लिये माताके निकट आकर मुँह खोल दिया।

यशोदाको कृष्णके मुँहमें समस्त विश्वसंसार दिखाई देने लगा। यहाँतक कि गोकुल, गोपियाँ और नन्द यशोदा भी उसे दीख पड़े। यशोदा आश्चर्य्यमें पड़ गई और निश्चय न कर सकी, कि जो कुछ देख रही है, वह सत्य है या स्वप्न! कुछ देरके बाद उसे विश्वास हो गया, कि कृष्ण निश्चय ही परमात्माके अवतार हैं। मैं भ्रमवश इन्हें अपना पुत्र समझ रही हूँ।

इस तरह जननीके मनमें तत्वज्ञान उत्पन्न कर कृष्णने अपनी माया संवरण कर ली। यशोदा सब कुछ भूलकर कृष्णको अपना पुत्र समझने लगी।

कृष्ण जिस तरह अपने पड़ोसियोंका दही मक्खन चुपकेसे उड़ा जाते थे, उसी तरह अपने घरमें भी किया करते थे। यद्यपि नन्दराजके घर दही दूधका अभाव न था, परन्तु लड़कपनकी स्वाभाविक चपलताके कारण बिना चोरी किये मानों उनका जी ही नहीं मानता था।

एक दिन यशोदा दही मथ रही थी। कृष्ण खेल कूद कर आये और माताकी गर्दनमें हाथ डालकर कहने लगे, मुझे भूख लगी है। यशोदा बड़े स्नेहसे पुचकार कर पुत्रको स्तन पान कराने लगी। इतनेमें ख्याल आया, कि चूल्हेपर दूधकी कड़ाही रख आई हूँ। कहीं अधिक गर्मी पाकर दूध उबलकर गिर न पड़े। यही सोचकर उसने कृष्णको गोदसे उतार दिया और दौड़ी हुई चूल्हेके पास गई। माताके चली जानेके कारण कृष्ण रुष्ट हो गये और रोते रोते लोढ़ा उठाकर दहीके बर्त्तनपर पटक दिया। वर्त्तन फूट गया और दही तमाम घरमें फैल गया।

दहीका सत्यानाश कर लेनेपर आपकी नजर सींकेपर रखी हुई मक्खनकी मटुकीपर जा पड़ी। उसे देखते ही मानों मुँहमें पानी भर आया। परन्तु सींका ऊँचा था; इसलिये हाथोंका मटुकीतक पहुँचना मुशकिल था। परन्तु कृष्ण हताश होनेवाले

बालक न थे। उन्होंने किसी न किसी तरह मक्खन खानेका विचार पक्का कर लिया। इधर उधर ताककर देखा, कि पास ही ऊखल पड़ी है। फिर क्या था, उसे ठेलठाल कर सींकेके पास लाये और चढ़कर मक्खन उतारने लगे।

यशोदाने लौटकर देखा, कि बर्त्तन टूटा पड़ा है और दही भूमिपर गिर गया है। वह समझ गई, कि यह काण्ड कृष्णका ही है। अतः हाथमें एक छोटीसी लकुटिया लेकर कृष्णको ढूँढ़ती ढूँढ़ती उसी घरमें जा पहुँची, जहाँ वे ऊखल-पर चढ़कर मक्खनकी मटुकी उतार रहे थे।

यद्यपि कृष्ण ईश्वरके अवतार थे, परन्तु चोरी कर रहे थे। इसलिये भयभीत दृष्टिसे इधर उधर देख रहे थे। हठात् जन-नीको आते देख कर उनके होश पैंतरा कर गये। झट ऊखलसे उतर कर भाग चले। यशोदाने पीछा किया। आगे आगे कृष्ण और पीछे पीछे यशोदा। इस तरह बड़ी देर तक कृष्ण इधरसे उधर भागते रहे। बेचारी यशोदा उनके पीछे दौड़ती दौड़ती थक गई। परन्तु वे नहीं थके। बड़ी दौड़ धूपके बाद अन्तमें यशोदाने पुत्रको पकड़ पाया। उस समय कृष्ण सारी चालाकी भूल कर सिसकने लगे। यशोदाने उनकी कमरमें एक रस्सी बाँध कर उसे ऊखलमें बाँध दिया।

माताके चले जानेपर कृष्ण ऊखलको धीरे धीरे आँगनमें घसीट लाये। वहां अर्ज्जुनके दो वृक्ष लगे थे। दोनों आस पास जमज भाईकी तरह खड़े थे। कृष्णने कौशलसे ऊखलको दोनों

वृक्षोंकी जड़ोंमें फँसा कर बारबार झटका देना आरम्भ किया। बहुतसे ग्वाल-बाल उनकी यह लीला देख कर हँस रहे थे। इतनेमें हठात् दोनों पेड़ जड़-मूलसे उखड़ कर भूमि पर गिर पड़े और उन दोनों वृक्षोंकी जड़ोंमेंसे दो सुरूपवान पुरुष निकल कर कृष्णके सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। यह अद्भुत काण्ड देखकर ग्वाल बालोंको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने दौड़ कर नन्द आदिको इसकी खबर दी।

उन दोनों पुरुषोंने कृष्णकी विविध प्रकारसे स्तुतिकी और कहने लगे—"हे नाथ, हम दोनों कुवेरके पुत्र हैं। हमारा नाम नलकूबर और मणिग्रीव है। एक बार हमारे किसी आचरणसे असन्तुष्ट होकर नारदजीने शाप दिया था, कि तुम दोनों जड़ हो जाव। उसी शापके कारण हम दोनों वृक्ष रूप होकर बहुत दिनोंसे यहाँ अवस्थित थे। परम कृपालु नारदजीने यह भी कहा था, कि द्वापरमें कृष्णावतारके समय तुम्हारी मुक्ति होजायेगी।"*

---

* कृष्ण चरित्रकी आलोचना करनेवाले आधुनिक विद्वानोंका मत है, कि उपर्युक्त घटना निरी कपोल कल्पना है। इसमें सचाईका लेशमात्र भी नहीं हैं। वंगदेशके सुविख्यात विद्वान स्वर्गीय बङ्किमचन्द्र चटर्जीने लिखा है, कि विष्णुका एक नाम है दामोदर। वाह्येन्द्रियोंको वशमें करनेको "दम" कहते है। उत--उद् =ऊपर और ऋ =जाना। दोनोंके संयोगसे (उदर) शब्द बना। जिसका अर्थ है,—उत्कृष्ट गति। दम द्वारा जिसने उच्च स्थान प्राप्त किया है, उसका नाम दामोदर होता है। वेदोंमें लिखा हैं, कि विष्णुने तपस्या द्वारा विष्णुत्व प्राप्त किया था, अन्यथा वे इन्द्रकी श्रेणीके
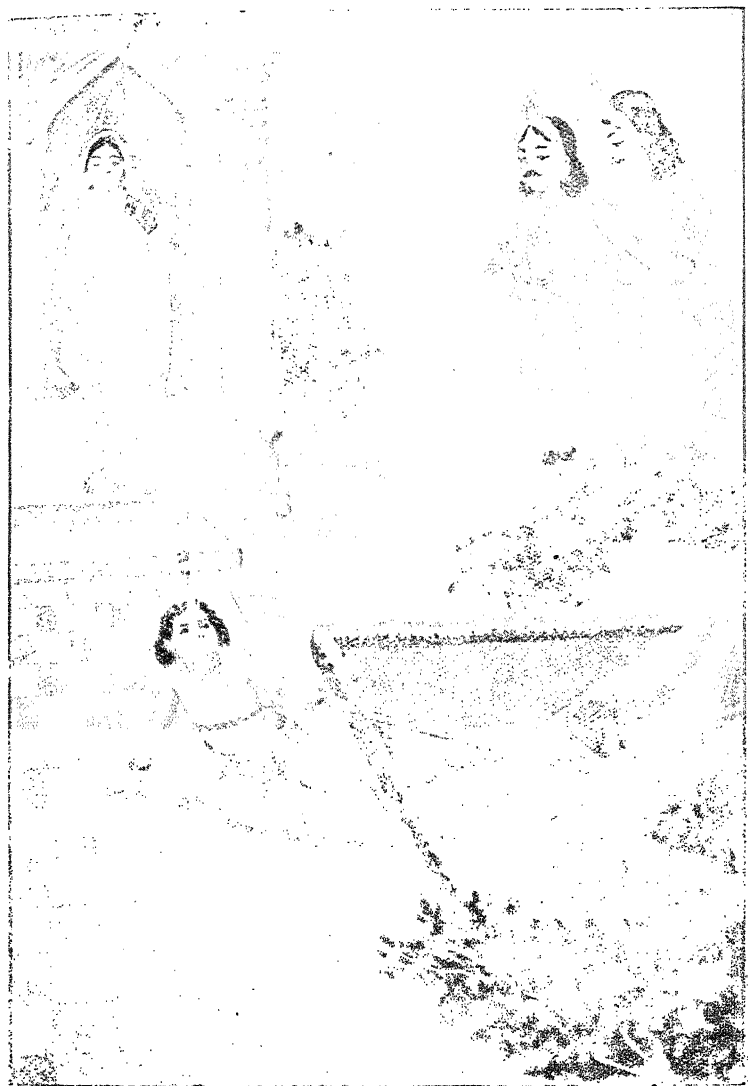
उन दोनों वृक्षोंकी जड़ोंमेंसे सुरूपवान पुरुष निकलकर कृष्णके सामने
हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

यह कह कर वे दोनों पुरुष उत्तरकी ओर चले गये और कुछ दूर जाकर अदृश्य हो गये।

नन्द आदिने आकर देखा, कि उनका पुत्र ओखलीसे बँधा निर्भय खड़ा है और उसकी दोनों ओर दो विशाल वृक्ष समूल उखड़े पड़े हैं। इस घटनाको उन लोगोंने दैवी उत्पात समझा। यद्यपि लड़कोंने जो कुछ देखा था, उसे बड़ी दृढ़तासे कहा परन्तु उनकी बातोंपर किसीने विश्वास न किया।

इसके बाद नन्दजीने अपने हाथसे कृष्णका बन्धन खोल दिया और गोदमें लेकर यशोदाके पास ले गये।

इस घटनाके कई दिनोंके बाद मथुराकी एक कुँजड़िन फल बेंचने गोकुल आई। ग्वाल-बालोंने उससे फल खरीदा। उनकी देखा देखी कृष्णने भी अपनी माताके पास आकर कहा, कि मुझे फल ले दो। माताने उनकी अञ्जलीमें अनाज भर कर कहा, कि इसे कुँजड़िनको देकर बदलेमें फल ले लो। कृष्ण अनाज लेकर चले। परन्तु कुँजड़िनके पास पहुँचते पहुँचते

देवता मात्र थे। शङ्कराचार्य्यने दामोदर शब्दका अर्थ किया है:—"दमादि-साधनेन उदरा उत्कृष्टा गतिर्या तथा गम्यत् इति दामोदरः।" महाभारतमें भी लिखा है :—"दमाद्दमोदरं विदुः।"

परन्तु (दामन्) पगहाको भी कहते हैं। जिसका उदर अर्थात पेट पगहासे बाँधा गया हो, उसे भी दामोदर कहते हैं। भागवतसे पहले भी 'दामोदर' शब्द प्रचलित था। सम्भवतः इस नामको पाकर ही भागवतकारने यह कथा रची है।

बहुतसा अनाज हाथोंसे गिर गया। जो कुछ बच गया था, उसे कुंजड़िनकी टोकरीमें डाल कर वह फल माँगने लगे। कुँजड़िन कृष्णका सुन्दर मुख और उनका भोलापन देखकर मोहित हो गई। उसने बड़ी प्रसन्नतासे उनके दोनों हाथ फलोंसे भर दिये। कृष्ण प्रसन्नता पूर्व्वक फल लेकर अपने साथियोंसे जा मिले। उनके चले जाने पर कुँजड़िनने देखा, कि उसकी टोकरीमें अनाजके बदले महामूल्यवान जवाहरात पड़े हैं।

१४

वृन्दावन।

गोकुलके जिस स्थानमें नन्दराज अपने सजातियोंके साथ वास करते थे, वह महावन कहलाता है। जबसे कृष्णका जन्म हुआ, तबसे महावनमें नित्य नये नये उत्पात होने लगे थे। इससे गोप जाति अत्यन्त चिन्तित थी। एक दिन समस्त गोप एकत्र होकर विचार करने लगे, कि गोकुल तथा गोप जातिकी रक्षाके लिये क्या करना चाहिये।

इस जातिमें उपनन्द नामक एक गोप बड़े बुद्धिमान, ज्ञानी और वयोवृद्ध थे। उन्होंने कहा, कि यदि आप लोग अपनी भलाई चाहते हैं, तो इस स्थानको छोड़ कर किसी दूसरी जगह निवास कीजिये। क्योंकि आजकल यहाँ बड़े उत्पात होने लगे हैं। अभी उस दिन बाल-घातिनी पूतनाके हाथोंसे किसी तरह नन्दके लड़केकी जान बची। उसके बाद ही हठात् छकड़ा उलट गया। फिर आँधीसे किसी तरह बच्चेने परित्राण पाया। इसके बाद हठात् नन्दके आँगनके दोनों अर्ज्जुनके पेड़ गिर गये। बड़ी खैरियत हुई, कि बच्चेको चोट नहीं लगी। यह सब देख

सुनकर मुझे तो यही उचित मालूम होता है, कि जहाँतक शीघ्र हो सके हमलोग इस स्थानको परित्याग कर दें। यहाँसे कुछ दूर पर वृन्दावन है। वह स्थान बड़ा ही मनोहर है। उसके निकटही यमुना लहराती है और एक छोटासा पहाड़ भी है। पशुओंके चरनेके लिये वहाँ प्रचुर घास भी है। सच पूछिये तो वृन्दावनकी तरह सुन्दर स्थान मथुरा मण्डलमें दूसरा नहीं है। यदि आप लोगोंकी राय हो तो शीघ्र ही वृन्दाबन चल कर निवास कीजिये।

महात्मा उपनन्दके प्रस्तावका सबने अनुमोदन किया और तुरन्त ही अपना अपना डेरादण्डा उठा कर वृन्दावन जानेकी तैयारी करने लगे।* देखते देखते सैकड़ों गाड़ियाँ और छकड़े तैयार हो गये। गोपगण अपना अपना असबाब गाड़ियोंपर लादने लगे। गाय, बैल और बछड़े पहले ही भेज दिये गये। गोपियाँ भी वस्त्राभूषणोंसे सज्जित हो, अपनी अपनी गाड़ियों-पर चढ़ कर चलीं। नवयुवक गोप तीर-कमान लेकर अपने दलकी रक्षा करते चले। यशोदा और रोहिणी कृष्ण और बलरामके साथ एक सुन्दर रथपर चढ़कर चलीं।

---

* देश पूज्य लाला लाजपतराय आदि विद्वानोंका मत है, कि नन्द आदि गोप 'खाना बदोश' थे; उनका कोई स्थायी आवासस्थल न था। ये सदैव एक स्थानसे दूसरे स्थान पर आकर बसा करते थे। आज कल भी इस देशमें कई ऐसी जातियाँ हैं, जो अपना बोरिया-बँधना लिये सदैव इधरसे उधर घूमा करती हैं। ये जातियाँ किसी खास जगह घर बनाकर

इस तरह वह वृहत्‌दल यथा समय वृन्दावन आ पहुँचा। वृन्दावनकी शोभा और रमणीकता देखकर गोपगण बड़े प्रसन्न हुए। यमुना-पुलिनकी शोभा, पहाड़ी दृश्य और घने जंगल आदि देख कर कृष्ण और बलराम भी बड़े प्रसन्न हुए।

वृन्दावन आनेपर एक दिन शुभ मुहूर्त्तमें, नन्दजीने कृष्ण और बलरामके हाथोंसे 'गो-दोहन' कार्य्य आरम्भ कराया। दिन निर्द्धारितकर महीनों पहलेसे इस उत्सवकी तैयारी होने लगी। वृन्दावनके समस्त गोप-गोपी, ब्राह्मण-पण्डित और मुनि-ऋषि इस महोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये निमंत्रित किये गये। पुष्प, पल्लव और कलश आदि मांगलिक द्रव्यों द्वारा गोशाला सजाई गई। पुरोहितोंके आदेशानुसार गो-पूजनकी समस्त सामग्री एकत्र की गई।

सब सामान ठीक होजानेपर माता यशोदाने अपने हाथोंसे कृष्ण और बलरामको स्नान करा, उनके मस्तकोंपर चन्दन और रोरीका तिलक लगाया। इसके बाद मणि-मुक्ता जड़ित विविध आभूण पहनाये।

गो-पूजन समाप्त हो जानेपर पुरोहितजीने दोनों बालकोंको गो-दोहन पात्र प्रदान करनेकी अनुमति दी। दो दुग्धवती गायें उपयुक्त वस्त्रालङ्कारों द्वारा सजाकर पहलेसे ही लाकर रखी गई

नहीं रहतीं। भागवत्‌के प्रथम स्कन्धके चौबीसवें अध्यायमें कृष्णने नन्दसे कहा—"हमारे पास नगर नहीं, ग्राम नहीं, घर नहीं; हम तो वनवासी हैं।" इस कथनसे भी सिद्ध होता है, कि नन्द आदि खानाबदोश ही थे।

थीं। नन्दजीने कृष्ण और बलरामके हाथोंमें गो-दोहन पात्र देकर गायोंको दूहनेकी आज्ञा दी। पिताकी आज्ञा पाकर दोनों भाइयोंने बड़ी दक्षतासे गो-दोहन कार्य्य समाप्त किया।

इसके बाद आमन्त्रित व्यक्तियोंको भोजन आदि कराकर बड़े समारोहसे यह महोत्सव समाप्त किया गया।

गो-दोहन महोत्सव समाप्त हुआ। उसी दिनसे कृष्ण और बलराम प्रति दिन शाम-सवेरे गायें दूहने लगे। परन्तु कृष्णको इतनेसे ही सन्तोष न हुआ। उन्होंने सुदाम, सुबल और मधु-मङ्गल आदि गोप-बालकोंकी भाँति बनोंमें जाकर गायें चराने की अनुमति चाही। स्नेहमयी माताओंने बहुत समझाया, कि अभी बच्चे हो; कुछ और बड़े हो जानेपर गायें चराना। अभी घने वनमें भूल जावगे, कोमल पैरोंमें काँटे चुभ जायंगे, कोई मर-कही गाय या साँढ़ मार देगा। अभी मैं तुम लोगोंको गायें चराने नहीं जाने दूँगी। परन्तु परम हठीले कृष्ण कब माननेवाले थे। उन्होंने जिद्द पकड़ ली, कि मैं अवश्य गोप-बालकोंके साथ गायें चराने जाऊँगा। पुत्रका यह आग्रह और उत्साह देखकर नन्द बड़े प्रसन्न हुए। वे कृष्ण और बलरामको अपने निकट बुलाकर बड़े स्नेहसे उनके माथेपर हाथ फेरते हुए कहने लगे:—"गो चराना, गो-पालन, गो-सेवा और गो-पूजन वैश्य जाति-परम धर्म्म है और यही उनकी जीवन-वृत्ति है। तुमलोग प्रसन्नता पूर्व्वक गोप-बालकोंके साथ गायें चराने जा सकते हो।"

पिताकी आज्ञा पाकर कृष्ण और बलराम बड़े प्रसन्न हुए।

मानों किसी दरिद्रको कुवेरकी सम्पत्ति मिल गई। दोनों आनन्द पूर्व्वक गायें चराने जानेके लिये प्रस्तुत हो गये।

यद्यपि नन्दजीने आज्ञा दे दी, परन्तु जननी यशोदाको सन्तोष न हुआ। उसने कहा—तुम लोग अभी नितान्त बच्चे हो। बछड़ोंको घरके पास ही चराना, दूर न जाना और वंशी बजाते रहना, जिसमें मैं सुनती रहूँ। बलराम! तुम बड़े हो, कृष्णको खूब सावधानीसे रखना। कभी अकेला न छोड़ना। इस तरह समझा-बुझाकर, माताने बच्चोंको बछड़े चराने जाने दिया।

मातापिताके आदेशानुसार, गोप-बालकोंके साथ कृष्ण और बलराम बछड़े चराने जाने लगे। आजसे इनके बाल्यजीवनमें एक विशेष परिवर्त्तन आरम्भ हुआ। पहले केवल गोकुलकी गलियाँ और पड़ौसियोंके घर ही इनके क्रीड़ा-स्थल थे, परन्तु अब वृन्दावनकी विस्तृत वनस्थली, यमुनाकी तरल तरंगें और गोवर्द्धनगिरि-शिखर इनके विहार-स्थल बने।

कभी ये छोटीसी लकुटिया लिये शान्ति पूर्व्वक खड़े होकर बछड़े चराते, कभी मधुर ध्वनिमें बंशी बजाकर ग्वालबालोंके साथ नाचते, कभी वनफलोंकी गेंद बनाकर उछालते और पेड़ोंपर चढ़कर 'ओल्हापाती' खेलते। कभी कोयल और पपीहा आदि पक्षियोंकी बोलियाँ बोलकर उनकी होड़ करते और कभी बछड़ोंको छेड़कर उनसे द्वन्द युद्ध किया करते। कभी कभी किसी वृक्षकी डालीपर बैठकर बाँसुरी बजाते। उस समय बाँसुरीकी मनोहर ध्वनिसे सारा वृन्दावन गूँज उठता। यशोदा

और रोहिणी घरके काम-धन्धे करती हुईं कन्हैयाकी बंशी-ध्वनि सुनकर प्रसन्न होतीं।

दिनभर नाना प्रकारके आमोद-प्रमोद और तरह तरहके खेल-कूदमें बिताकर, सन्ध्या समय बंशी बजाते ये लोग घर लौटते। स्नेहमयी मातायें द्वारपर खड़ी होकर उनकी बाट जोहा करतीं और कृष्ण बलरामको गोपाल वेषमें देखकर अत्यन्त आनन्दित होतीं।

कृष्णकी मोहिनी मूर्त्ति और बंशीकी मनोहर तान आवाल-वृद्ध-बनिता गोप-ग्वालोंके बड़े प्यारकी वस्तु हो गई थी। अतः बनसे लौटनेपर भोजन आदि करके कृष्ण बाँसुरी बजाने बैठते और गोपग्वालोंका दल आकर चारों ओरसे उन्हें घेर लेता। घण्टोंतक बंशी बजाकर वे अपने घर आते। माता यशोदा बड़े आदरसे उन्हें अपने निकट बैठाती, कभी उनके शरीरपर हाथ फेरती, कभी उनका सिर चूम लेती और कभी उनके थके हुए अंगोको दबाती। माताके साथ तरह तरहकी बातें करते कृष्ण उसकी गोदमें सो जाते।

रात बीत गई। सवेरा हुआ। बाल-सूर्य्यकी सुनहरी किरणोंसे सारा वृन्दावन उद्भासित हो गया। मानों कृष्णके आनेका समय सन्निकट देख प्रकृति मुस्कराने लगी। गोवर्द्धन भी मानो सिर उठाकर उत्सुकता पूर्व्वक अपने प्यारे गोपालकी बाट जोहने लगा। पक्षीगण मधुर स्वरसे स्वागत गान करने लगे। कल-निनादिनी यमुना मानों कृष्णकी वंशी ध्वनिकी

नकल करनेकी चेष्टामें प्रवृत्त हुई! माता यशोदा ने बड़े प्यारसे कन्हैयाको जगाकर मुँह हाथ धुलाया और बिखरी हुई अलकें सँवारकर भोजन कराया। इतनेमें श्रीदाम आदि ग्वालवाल सदलबल द्वारपर आकर कृष्ण, गोपाल और कन्हैया आदि विविध नामोंसे पुकारने लगे। प्यारे बाल-बन्धुओंका आह्वान सुनकर कौन बालक रुक सकता है? श्रीदामकी आवाज सुनते ही, झटपट लकुटी और बाँसुरी लेकर कृष्ण घरसे निकल पड़े और हँसते-खेलते, नाचते-कूदते वनकी ओर चले।

आगे आगे गायोंका दल और पीछे पीछे श्रीकृष्ण, अपनी छोटी राखाल-वाहिनी लिये बाँसुरी बजाते, अटखेलियाँ करते वनमें जा पहुँचे। हरी हरी घासोंसे लहलहाते हुए मैदानोंमें गायें चरने लगीं और कृष्णने अपने साथियों सहित किसी वृक्षकी छायामें खेल-कूद आरम्भ कर दिया। उस समय मानों प्रकृतिकी शोभा और भी बढ़ जाती।

दिन भर गायें चराकर, सन्ध्याको घर लौटनेके समय, एक बार फिर बंशी-ध्वनिसे आकाश गूँज उठता। गोपालकी पुकार सुनकर, हंबा रव करती हुई गायें, उनके पास आकर खड़ी हो जातीं, बछड़े उनके शरीरमें मस्तक रगड़कर अपना प्रेम प्रगट करने लगते और श्रीकृष्ण उनके शरीरपर हाथ फेरकर मानों उनके प्रेमका प्रतिदान देते।

प्यारे कन्हैयाके आगमनका समय जान स्नेहशीला यशोदा आकर द्वारपर खड़ी हो जाती। माताको खड़ी देख कृष्ण दौड़-

कर उनके गलेसे लग जाते। माता उन्हें छातीसे लगाकर प्यारसे मुँह चूम लेती।

इस प्रकार प्रतिदिन नाना प्रकारके आमोद-प्रमोद, खेल कूदमें कृष्ण और बलरामका बाल्य-जीवन व्यतीत होने लगा।

१५

कंसकी सतर्कता

जिस दिनसे कंसने पूतना और तृणावर्तके मरनेका हाल सुना, उसी दिनसे कृष्णके प्रति उसके मनमें विशेष आशङ्का होने लगी थी। धीरे धीरे यह आशङ्का भयके रूपमें परिणत हो गई। ज्यों ज्यों वह अपने अनुचरों द्वारा उनकी कीर्त्ति-कथा सुनने लगा, त्यों त्यों उसका भय भी बढ़ने लगा। यहाँ तक, कि उठते-बैठते, सोते-जागते, दिन रात उसकी नजरोंमें कृष्णकी भयङ्कर काल्पनिक मूर्ति घूमने लगी। धीरे धीरे उसे विश्वास होने लगा, कि जिस बालकके उत्पन्न होनेकी बात योगमायाने कही थी, वह कृष्णही है। अतएव जिस तरहसे हो इस अनर्थकारी पौधेको आरम्भमें ही उखाड़ फेंकनेकी चेष्टा करनी चाहिये; नहीं तो प्रौढ़ हो जानेपर उसका विनाश कठिन हो जायेगा।

यही सोचकर दुरात्मा कंसने अपने विश्वासी अनुचर वत्सासुरको बुलाकर कृष्णको मार डानेकी आज्ञा दी। वत्सासुर बड़ाही बलवान, निष्ठुर और मायावी था। वह बड़ी आसानीसे वत्सका रूप धारण कर लिया करता था।

एक दिन दोपहरका समय था। कड़ाके दार धूप हो रही थी। वनके पशु-पक्षी प्याससे व्याकुल हो, यमुनाकी ओर दौड़ रहे थे। गायों तथा बछड़ोंको प्यासा देख राम कृष्ण भी अपना वृहत् गो-दल लेकर यमुनाकी ओर चले और पशुओंको पानी पिलाकर एक छायादार वृक्षके नीचे बैठकर विश्राम करने लगे। गायें और बछड़ोंका दल भी वृक्षोंकी सघन छायामें खड़ा होकर पागुर करने लगा। इतनेमें मायावी वत्सासुर छोटे बछड़ेका रूप धारणकर गायोंके दलमें आकर मिल गया।

श्रीकृष्ण ताड़ गये। उन्होंने धीरेसे बलरामके कानमें कुछ कहा और स्वयं उठकर धीरे धीरे वत्सवेषधारी असुरके पास जाकर खड़े हो गये। परन्तु असुरको इस बातकी जरा भी खबर न हुई, कि उसका काल उसके पीछे आकर खड़ा है। वह बछड़ोंके दलमें मिल कर निश्चिन्तता पूर्व्वक उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। इतनेमें श्रीकृष्णने उसकी पिछली टाँगें और पूँछ पकड़कर जोरसे घुमाना आरम्भ कर दिया। असुरके अङ्ग प्रत्यङ्ग ढीले हो गये। जिससे वह मृतप्राय: हो गया। इसके बाद कृष्णने उसे पासके कपित्थके पेड़पर दे मारा। असुरके देह-भारसे वृक्षकी कितनी ही डालियाँ टूट गईं। गोपबालक यह अद्भुत तमाशा देखकर विस्मित हो गये! देवताओंने प्रसन्न होकर कृष्णपर फूलोंकी वर्षा की।

वत्सासुरके मरनेकी खबर पाकर कंसको अफसोसके साथ ही आश्चर्य्य भी हुआ। इतने बलवान असुरको एक छोटेसे
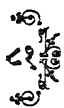
बालकने गेंदकी तरह उछालकर कपित्थके पेड़पर पटक दिया। यह क्या कम आश्चर्य्यकी बात है! निश्चय ही यह बालक विष्णुका अवतार है और यही मेरा संहार करेगा। सम्भव है, कि देवताओंने धोखा देनेके लिये ही कहा हो, कि तेरा संहारक देवकीके गर्भसे उत्पन्न होगा। जो हो, इस दुष्ट बालकसे सावधान रहना ही उचित है। जब लड़कपनमें ही इसका ऐसा हाल है, तब बड़े होनेपर न जाने क्या करेगा! जिस तरहसे हो इस बालकका नाश करना ही उचित है।

बहुत कुछ सोच-विचारकर कंसने एक दिन एक दूसरे असुरको बुलाया और समझा-बुझाकर उसे कृष्णका प्राण हरण करनेके लिये वृन्दावन भेजा।

इधर कृष्ण और बलराम ग्वालबालोंकी मण्डली सहित, यमुना किनारे गायें चरा रहे थे। इतनेमें उन्होंने देखा, कि कुछ दूर एक विशालकाय बक बैठा हुआ है। उसे देखनेसे मालूम होता था, कि एक छोटासा सजीव पहाड़ बैठा है। इस विशाल पक्षीको देखकर, कृष्णके साथी बड़े भयभीत हुए। ऐसा भयङ्कर और बड़ा बगला उन लोगोंने कभी देखा न था। देखते-देखते बकने अपनी बड़ी चोंच खोली और बड़ी तेजीसे ग्वालबालोंकी ओर दौड़ा। असुरको आते देखकर, बेचारे ग्वालबालोंके प्राण सूख गये। वे काठके पुतलेकी तरह चुपचाप खड़े रह गये। असुरने निकट आकर कृष्णको अपने मुँहमें रख लिया। ग्वालबाल भयभीत होकर हाहाकार करने

लगे। परन्तु कृष्णकी रक्षाके लिये कुछ करनेका साहस न कर सके।

पक्षीरूपी असुरने अपनी वृहत् चोंचमें कृष्णको रख तो लिया, परन्तु निगल न सका ; क्योंकि उनकी देहकी विषम ज्वालासे उसका कण्ठ और तालू जलने लगा। इसलिये राक्षसने घबराकर उन्हें तुरन्त उगल दिया और चोंच द्वारा उनके शरीरपर आघात करने लगा। ग्वालबाल पूर्व्ववत् खड़े रहकर यह तमाशा देखने लगे।

कृष्णने दोनों हाथोंसे उसकी चोंच पकड़ ली। बगला विवश होकर छटपटाने लगा। कृष्णने कौशलसे उसकी चोंचका निचला हिस्सा पैरों तले दबाकर, उसे तृणकी भाँति चीर डाला। बकासुरके कराल कौलसे कृष्णको निर्विघ्न आते देखकर, ग्वालबालोंकी जानमें जान आई। उनलोगोंने दौड़कर उन्हें गलेसे लगा लिया और उसी समय गायोंको हँकाकर घर चले आये।

बकासुरके निधनकी बात सुनकर गोपगोपियोंको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। उनलोगोंने निश्चय किया, कि कृष्णके शरीरमें किसी देवताने आविर्भूत होकर, उनसे यह आश्चर्य्यजनक कार्य्य कराया है। नहीं तो इस छोटेसे बालकमें इतनी शक्ति कहाँ, जो ऐसे भयङ्कर जन्तुको मार सके।

बलरामके मुँहसे बकासुरका काण्ड सुनकर यशोदाकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने कृष्णको अपने निकट बुलाकर प्यार किया और कहने लगी, कि तुम अब बछड़े चराने न जाया
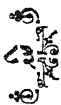
करो ! अभी तुम बच्चे हो, जब बड़े होना तब जाना। परन्तु ग्वालबालोंके साथ वनोंमें जाकर खेलना-कूदना और दौड़-धूप करना छोड़कर, घरमें बैठना श्रीकृष्ण कब स्वीकार करनेवाले थे। माताने देवी-देवताओंकी मन्नत मानकर, एक रक्षा कवच कृष्णके गलेमें पहना दिया।

बकासुरके मरनेका संवाद सुनकर, कंस विशेष चिन्तित हुआ, परन्तु हताश नहीं हुआ। उसने अपने एक मायावी अनुचर 'अघ'* नामक असुरको कृष्णकी हत्या करनेके लिये भेजा। उसे विश्वास था, कि महापराक्रमी अघ अवश्य ही कृष्णको मार सकेगा।

कृष्णको मारकर उनका शिर कंसके सामने लानेकी प्रतिज्ञा कर, अभिमानी अघ प्रसन्नता पूर्व्वक वृन्दावन पहुँचा।

---

* इन घटनाओंको पौराणिकोंकी कल्पनायें समझनेवाले विद्वानोंकी कल्पना है, कि वत्स, बक और अघ कंसके भेजे हुए कोई असुर न थे, वरन् कोई हिंसक जन्तु होंगे और वृन्दावनके चरवाहों द्वारा मारे गये होंगे। इसीके आधारपर पुराणकारने यह उपन्यास रच डाला होगा। क्योंकि बलवान बालकों द्वारा बगुला, बछड़ा और सर्पका मारा जाना कोई आश्च-र्य्यकी बात नहीं। देशपूज्य लाला लाजपतरायजीने लिखा है, कि जंगलमें जब कभी कोई बनैला पशु मिल जाता, तब गोप लोग उसे मार डालते या भगा देते थे। कुछ लोगोंका कथन है, कि विष्णुपुराण, महा-भारत और हरिवंशपुराणमें इन घटनाओंका कोई जिक्र नहीं है, इसलिये इनसे कृष्णके जीवन चरित्रका कोई सम्बन्ध ही नहीं है !

नित्य नियमानुसार गोपाल मण्डली एक हरे-भरे मैदानमें गायोंको छोड़कर क्रीड़ा-कौतुक कर रही थी। आजका खेल भी कुछ विचित्र था। बालकोंने कृष्णको अपना राजा और बल-रामको मन्त्री बनाया था। मिट्टीका एक ऊँचा टीला राजसिंहा-सन मान लिया गया था। राजा कृष्ण गम्भीर भावसे उसपर विराजमान थे और उनकी दाहिनी ओर मन्त्रीप्रवर बलराम बैठे थे। अन्यान्य ग्वालबाल प्रजारूपमें अपने अपने अभाव-अभि-योग उपस्थित कर रहे थे। राजा हाथमें बाँसुरीरूप शासनदण्ड लिये यथोपयुक्त आदेश प्रदान कर रहे थे। दोषीका तिरस्कार और निर्दोषीको पुरस्कारकी व्यवस्था हो रही थी। परन्तु जब इस क्षणभङ्गुर संसारके सच्चे साम्राज्य ही अधिक दिन नहीं ठहरते, तब गोप-बालकोंके कृत्रिम साम्राज्यका क्या ठिकाना था? थोड़ी देरके बाद इच्छा बदल गई और उसके साथ ही यह क्षणिक राज-व्यवस्था भी बदल गई। अब दूसरा खेल आरम्भ हुआ। गोपाल-मण्डली दो भागोंमें विभक्त हो गई। एक दलके

बंगालके विख्यात कवि नवीन चन्द्रसेनने भी पूतना, बक और अघको हिंसक जन्तु ही स्वीकार किया है।

स्वर्गीय बङ्किमचन्द्र चटर्जीकी भी यही राय है। परन्तु वे यह भी लिखते हैं,—कि "यह कोई बात नहीं, कि वत्सासुर, बकासुर और अघासुरकी कथा-ओंमें कोई तत्व ही नहीं। वद् धातुसे 'वत्स' बनक् धातुसे 'बक' और 'अघ्' धातुसे 'अघ' बनता है, वद्का अर्थ प्रकाश करना, बकका अर्थ बक्र होना और अघका अर्थ पाप करना होता है। जो सूक्ष्म
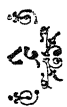
दलपति कृष्ण और दूसरे दलके बलराम बने। यह पहले ही तय हो चुका था, कि जो दल हारेगा, वह विजयी दलके व्यक्तियोंको कन्धेपर चढ़ा कर यमुना-तटसे वंशीवटतक ले जायगा। खेल आरम्भ हुआ। बलरामका दल विजयी और कृष्णाका दल पराजित हुआ। सुदाम श्रीकृष्णकी ओर था। उसने हार स्वीकार न की। कहने लगा, कृष्णने जान-बूझकर बलरामको जिताया है। इसपर दोनों दलोंमें विषम विवाद होने लगा।

इतनेमें महा अघी अघासुर अजगरका रूप धारण कर आया और मुँह फैलाकर कृष्णके साथ समस्त गोप-बालकोंको निगल जानेका मौका देखने लगा।

विशालवपु अजगरको देखकर एक बालकने कहा—"झगड़ा छोड़ो। देखो, वह सामने क्या दिखाई देता है! मालूम होता है, कोई अजगर मुँह फैलाये बैठा है।"

एक दूसरे बालकने कहा—"अजगर नहीं, वह तो पहाड़ है।

खुल्ला निन्दा करता है, वह वत्स; कुटिल शत्रुपक्ष बक और जो पापी हैं, वे अघ कहलाते हैं। अतः उपर्युक्त घटनाओंसे यह भी सिद्ध हो सकता है, कि कृष्णने लड़कपनमें ही इन तीनों शत्रुओंको वशमें कर लिया था। यजुर्वेदके एक मन्त्र द्वारा इसी प्रकारकी कामना भी की गई है। उस मन्त्रका अर्थ है:—हे अग्नि! जो हमारे शत्रु हैं, जो हमारे द्वेषी हैं, जो हमारे निन्दक हैं और जो हमें मार डालनेकी इच्छा रखते हैं, उन्हें भस्म कर डालो।..........सम्भवतः उपर्युक्त कथाकी रचनाके समय भागवतकारको उक्त मन्त्र याद था। अथवा यही कहना यथेष्ट होगा, कि उपर्युक्त वर्णनका मूल यह मन्त्र ही है।"

देखते नहीं, उसकी कन्दरायें कितनी बड़ी हैं। आओ हमलोग उसमें समाकर देखें।"

यह प्रस्ताव सबने पसन्द किया। अजगरके मुँहको पहाड़की कन्दरा समझ कर, कुतूहलवश, सभी ग्वालवाल उसमें घुस गये। अन्तमें सबकी देखा-देखी कृष्णने भी प्रवेश किया। कृष्ण सहित समस्त मण्डलीको मुँहमें पाकर, अघासुर अतीव आनन्दित हुआ। मनोकामना पूरी हुई समझ कर उसने एक साथ ही समस्त ग्वालबालोंको डकार जानेकी इच्छा की। परन्तु यह क्या ? अब तो उसका मुँह ही नहीं बन्द होता। गोपालगण उस अजगरके मुँहमें आकर मानों उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं।

'अघ'को उसके अघोंका प्रतिफल मिल गया ! उसका गला रुँध गया, साँस रुक गई और दोनों आखें बाहर निकल पड़ीं। देखते-देखते पूतना और बकासुरकी भाँति अघासुरने भी यमपुरकी राह पकड़ी।

अन्तमें आगे घुसनेकी राह न पाकर गोपालगण भी बाहर निकल आये। उनकी समझमें आ गया, कि यह वास्तवमें पहाड़की कन्दरा नहीं, अजगरका मुँह ही था।

१६
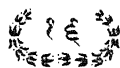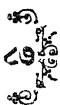
अद्भुत परीक्षा.

अघासुरको उसके कर्म्मोंका फल प्रदानकर, श्रीकृष्ण सदल-बल यमुनाकी रेतपर जा बैठे। गायें चरनेके लिये किनारेपर छोड़ दी गईं। कृष्णको बीचमें कर, गोपाल मण्डलीके बैठ जानेपर, निश्चय हुआ, कि खेल-कूद बहुत हो चुका, अब कुछ भोजन कर जठरज्वाला शान्त करनी चाहिये। सबने अपनी अपनी गठरी खोली और घरसे जो कुछ लाये थे, उसे परस्पर बाँट कर खाने लगे।

अन्यान्य देवताओंके साथ ब्रह्माजीने भी आकाशमें आकर श्रीकृष्ण द्वारा अघासुरका निधन देखा था। यद्यपि विधाताजीसे कृष्णकी महिमा छिपी न थी, तथापि ईश्वरकी मायाके वशवर्त्ती होनेके कारण बालक कृष्णका अद्भुत पराक्रम देखकर, उन्हें बड़ा आश्चर्य्य हुआ। इसलिये उन्होंने उनकी परीक्षा लेनेका विचार किया।

जिस समय श्रीकृष्ण आदि यमुना किनारे बैठ कर, पुलिन-भोजन और क्रीड़ा-कौतुकमें निमग्न थे, उसी समय ब्रह्मा आये

और गायोंको कहीं छिपाकर चल दिये। किनारेपर गायोंकी आहट न पाकर चरवाहोंने समझा, कि शायद् वे चरती-चरती घने वनोंमें बहक गई हैं। इसलिये भोजन आदि छोड़ कर उन्हें ढूँढ़ने चले। कृष्णने कहा,—"तुम लोग मत जाव। मैं अकेला ही जाकर सब गायोंको ढूँढ़ लाऊँगा।" यह कहकर वे तुरन्त उठ पड़े। कुछ बालकोंने साथ जाना चाहा, परन्तु उन्होंने किसीको साथ न लिया।

कृष्णने गायोंको इधर-उधर बहुत ढूँढ़ा, परन्तु जब कहीं पता न चला, तब लाचार होकर यमुना किनारे लौट आये। यहाँ आकर देखा, कि उनके साथी चरवाहोंका भी कहीं पता नहीं है। अन्तर्य्यामी श्रीकृष्णसे कोई बात छिपी न रही, परन्तु ब्रह्माजीको भ्रममें डालनेके लिये वे बड़ी व्याकुलतासे गायों और साथियोंको इधर-उधर ढूँढ़ने लगे।

सारा दिन ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गये, परन्तु कहीं कुछ पता न चला। इधर सन्ध्याका समय समीप आया। गायों तथा चरवाहोंके घर जानेका समय उपस्थित देखकर, कृष्ण चिन्तित हुए। गायों और ग्वालबालोंको छोड़कर अकेले वे घर कैसे जायेंगे? ग्वालोंकी मातायें अपने बच्चोंको न देखकर, इनके पास आकर पूछेंगी तो ये क्या उत्तर देंगे? परन्तु कृष्णकी यह चिन्ता केवल ऊपरी दिखाव मात्र थी! समय उपस्थित होतेही उन्होंने स्वयं गायों, बछड़ों तथा गोपालोंका रूप धारणकर लिया और पूर्व्ववत् वंशी बजाते अटखेलियाँ करते घर जा पहुँचे।
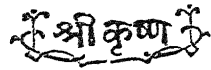
अन्यान्य गोपबालक भी अपने अपने घर गये। श्रीदाम, सुदाम, सुबल और मधुमंगल आदि, सभी गोपबालक पूर्व्ववत् अपनी अपनी माताओंके निकट पहुँचे। गायें भी अपने अपने बच्चोंको दूध पिलाने लगीं।

व्रजबालायें अपने बच्चोंकी अपेक्षा कृष्णको अधिक प्यार करती थीं। परन्तु आजकल उनका स्नेह कृष्णकी अपेक्षा अपने लड़कोंपर ही अधिक होने लगा और प्राय: एक वर्षतक उत्तरोत्तर बढ़ता गया। मनुष्योंकी तरह गायें भी अपने बच्चोंको प्यार करने लगीं। इस तरह प्रायः एक वर्षतक कृष्णने स्वयं गायों और चरवाहोंका रूप धारणकर गायें चराईं। जब वर्षमें चार-पाँच दिन बाकी थे, तब एक दिन बलरामके मनमें सन्देह उत्पन्न हुआ। व्रज-बालाओंका अपने पुत्रोंके प्रति अत्यधिक स्नेह देखकर, वे सोचने लगे, कि आखिर माजरा क्या है! इस सन्देहके मनमें उत्पन्न होते ही, ध्यानावस्थित होकर उन्होंने सब हाल जान लिया। इसके बाद उन्होंने कृष्णसे पूछा—"अबतक तो मैं जानता था, कि व्रजके बालक देवताओंके अंशसे और गोवत्सादि ऋषियोंके अंशसे उत्पन्न हैं; परन्तु आजकल देखता हूँ, कि तुम्हीं गोपाल और तुम्हीं गायें बने हो। मुझे चारों ओर तुम्हारी ही मूर्त्ति दिखाई पड़ती है! आखिर इस परिवर्त्तनका कारण क्या है?" श्रीकृष्णने बलरामको सब बातें बताकर उनके मनका सन्देह दूर किया।

जिस दिन विधाताने कृष्णकी परीक्षाके लिये गायों और

चरवाहोंका हरण किया था, उस दिनसे आजतक एक वर्ष बीत गया था। किन्तु मनुष्योंका एक वर्ष ब्रह्माके एक क्षणके बराबर ही होता है। ब्रह्माजी गायें और चरवाहोंको अपने ब्रह्मलोकमें पहुँचाकर, तुरन्त वृन्दावन आकर श्रीकृष्णका कार्यकलाप देखने लगे।

उन्होंने देखा, कि श्रीकृष्ण पूर्व्ववत् गायें चरा रहे हैं और गोपगण कालिन्दीतटपर क्रीड़ा कर रहे हैं। यह देखकर विधाता बड़े विस्मयमें पड़े। कृष्णको मोहित करने जाकर बेचारे स्वयं मोहित हो गये; समस्त ज्ञान विलुप्त हो गये! भगवान् लीलामयकी लीला उनकी समझमें नहीं आई। थोड़ी देरके बाद उन्होंने देखा, कि जिन्हें वे ग्वालबाल और गायें समझ आश्चर्य्यमें पड़े थे, वे सबके सब कृष्ण ही हैं। सभी श्याम वर्ण, मोरमुकुटधारी, चतुर्भुजी मूर्त्ति धारण किये खड़े हैं। विधाताजी निश्चल भावसे खड़े होकर, यह अद्भुत लीला देखने लगे।

थोड़ी देर बाद लीलामय कृष्णने अपनी माया-यवनिका हटा ली। उस समय ब्रह्माजीकी आँखें खुलीं। उन्होंने देखा, कि कुछ दूरपर वृन्दावन दिखाई पड़ रहा है और वे यमुना-किनारे खड़े हैं। कृष्ण व्यस्त भावसे इधर-उधर गायोंको ढूँढ़ रहे हैं।

अब ब्रह्माजीका मोह दूर हुआ। दौड़कर श्रीकृष्णके चरणों-पर गिर पड़े और विविध भाँतिसे उनकी स्तुति करने लगे।

इसके उपरान्त ब्रह्माजीके आदेशानुसार समस्त गायें और

चरवाहे यथास्थान आ गये। यमुना-किनारे फिर वही दृश्य दिखाई देने लगा, जो आजसे एक वर्ष पहले दिखाई दिया था। देखा गया, कि ग्वालबाल भोजन भूलकर कृष्णके आनेकी बाट जोह रहे हैं। देखते-देखते कृष्ण गायोंके दलके साथ आ पहुँचे। बालकगण उन्हें देखकर बड़े प्रसन्न हुए। ब्रह्माजी और श्रीकृष्णकी इस लीलाकी खबर किसीको मालूम न हुई। कृष्णको देखतेही साथियोंने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी,—गायें कहाँ मिल गईं? तुम इतनी जल्दी कैसे आगये? घने वनमें डरे तो नहीं? इत्यादि। आओ-आओ, जल्दी आओ। देखो तुम्हारे लिये हम लोग बैठे हैं। अभी खाया भी नहीं। आओ सब कोई साथ ही बैठकर भोजन करें!

श्रीकृष्णने प्रसन्नता पूर्वक अपने प्रिय बन्धुओंके साथ बैठकर भोजन किया। फिर दिन भर गायें चराकर शामको प्रति दिनकी भाँति वंशी बजाते, नाचते-कूदते घरकी ओर चले।*

* आजकलके विचारशील विद्वानोंकी रायमें ब्रह्माजी द्वारा कृष्णकी परीक्षाकी कथा निरी कल्पना है—केवल कृष्णका बड़प्पन दिखानेके लिये यह उपन्यास रचा गया है।—लेखक।

१७

अन्यान्य अलौकिक लीलायें.

वृन्दावनके अन्तर्गत तालव नामक एक बड़ाही घनघोर वन था। इस वनमें तरह तरहके वनफल और नाना प्रकारके फूल खिला करते थे। उसके भीतर एक सुन्दर सरोवर भी था। नाना प्रकारके पक्षी उसमें क्रीड़ा किया करते थे।

एक दिन कृष्ण और बलराम उसी वनके निकट जाकर गायें चराने लगे। उस वनकी अनुपम प्राकृतिक शोभा कृष्णको बहुत अच्छी लगी। उन्होंने प्रिय भाई बलरामसे उस स्थानकी शोभाकी बड़ी प्रशंसा की और वंशी बजाकर ग्वालबालोंके साथ आनन्द मनाने लगे।

कृष्णके मुखसे ताल वनकी शोभाका बखान सुनकर श्रीदामने कहा—"इस वनकी भीतरी शोभा और भी अच्छी है। वहाँ अमृततुल्य मीठे नाना प्रकारके फल हैं। तरहत-रहके मनोहर सुगन्ध-युक्त फूल वहाँ खिलते हैं और नाना प्रकारके सुन्दर पक्षी वहाँ निवास करते हैं। परन्तु इस वनमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता। इस वनके मधुर फलोंकी सुगन्धि यहाँतक आ रही है, उन्हें खानेके लिये मेरी तबीअत तरस रही

है। परन्तु वहाँतक पहुँचना बड़ा कठिन काम है। क्योंकि इस वनमें धेनुक नामक राक्षस रहता है। वह बड़ा ही दुष्ट और हिंसक है। वह पापी असुर मनुष्योंको देखते ही, उन्हें मार डालता है। इसी भयसे कोई इस वनमें प्रवेश नहीं कर सकता। वहाँ ढेरके-ढेर वनफल टपककर पड़े-पड़े सूख जाते हैं, परन्तु दुष्ट धेनुक उन फलोंको किसीको छूने नहीं देता। भाई राम और कृष्ण! तुम दोनों बड़े साहसी हो और बलवान हो। यदि हिम्मत करो, तो आज हम लोग चलकर ताल वनकी सैर कर आवें।

श्रीदामके मुखसे तालवनका वर्णन सुनकर, कृष्णके मनमें भी वहाँ जानेकी इच्छा उत्पन्न हुई। फिर क्या था! सबके सब चलनेको तैयार हो गये। गायोंको एक मैदानमें छोड़कर, सभी तालवनमें घुस गये और पेड़ोंपर चढ़कर फल तोड़ खाने लगे।

राक्षस धेनुक बड़ा ही क्रोधी और नरघातक था। वह मायावी सदैव गदहेकी शक्लमें रहा करता था* गोपालोंके आनेकी आहट पाकर, वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और विकट ध्वनि करता हुआ उनकी ओर दौड़ पड़ा। उसे आते देखकर गोपालगण बड़े भयभीत हुए। सबसे पहले उस असुरकी दृष्टि बलरामपर पड़ी। वह (हेंपों हेंपों) रव कर छलाँगे भरता हुआ, उनके पास आकर दुलत्तियाँ झाड़ने लगा। जिस तरह श्रीकृष्णने वत्सासुरकी टाँगें पकड़ उसे घुमाया था, उसी तरह बलरामने भी धेनुककी टाँगे

पकड़ लीं और बड़े जोरसे घुमाकर एक ताड़के पेड़पर दे मारा। गदहा धेनुक विकट चीत्कार कर मर गया। उसकी चिल्लाहट सुनकर उसके अन्यान्य सजातीय गदहे भी वहाँ आकर, दौड़-धूप मचाने और गोपालोंपर दुलत्तियाँ फटकारने लगे। यह देख, बल-राम और कृष्णने एक एकको पकड़कर घुमाना और पटकना आरम्भ कर दिया। थोड़ी देरमें वहाँ गदहोंकी लाशोंकी ढेर लग गई।

राम-कृष्णका अद्भुत पराक्रम देखकर, ग्वालोंको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। इसके उपरान्त सबोंने मिलकर स्वच्छन्दता पूर्व्वक खूब फल खाये और गायोंको भी तालवनके भीतर लाकर चराने लगे।

सन्ध्याको घर पहुँचनेपर ग्वालबालोंने नन्द आदिको भी धेनुक-बधका वृत्तान्त सुनाया। यह सुनकर उन लोगोंको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। बलराम और कृष्णके साहस तथा बलपौरुषकी प्रशंसा सबने की। पुत्रवत्सला यशोदा और रोहिणीने भी पुत्रोंको गोदमें लेकर आशीर्व्वाद दिया।

इस घटनाके बादसे कृष्ण और बलरामका साहस और भी बढ़ गया। वे अब निडर होकर वृन्दावनके सभी प्रान्तोंमें विचरण करने लगे। इधर लड़कोंका पराक्रम देखकर, नन्द आदि भी बहुत कुछ निश्चिन्त हो गये। परन्तु स्नेहमयी जननी यशोदाको सन्तोष न हुआ। वह पूर्व्ववत् दिनभर कृष्णकी मंगल-कामनाके लिये देवी-देवता मनाती और उन्हें घने वनोंमें

जानेके लिये सदैव मना किया करती रही। यद्यपि कृष्ण माताके सामने प्रतिज्ञा कर लेते थे, कि घने वनोंमें प्रवेश न करेंगे। परन्तु वृन्दावनकी अनुपम प्राकृतिक छटा देखनेकी लालसा; माताके सामने की हुई प्रतिज्ञाके पालनमें सदैव वाधा उपस्थित कर दिया करती थी। अतः वनमें पहुँचनेपर वे अपनी मण्डलीके साथ नित्य नये नये स्थानोंमें भ्रमण किया करते थे। पुष्पभारा-क्रान्त वनस्पतियोंकी शोभा, रंगविरंगे पक्षियोंका कलरव, स्वच्छ सलिल सरोवरोंकी शोभा, मृगशावकोंकी कलोलें और परागलो-लुप भ्रमरोंकी मधुर गुञ्जन उन्हें तन्मयकर देती। वे वालक-मण्ड-लीसे अलग, किसी निर्ज्जन स्थानमें बैठकर प्रकृतिकी मनोहर शोभा देखकर मुग्ध होते, कभी वंशीकी मधुर-ध्वनिसे निस्तब्ध वनस्थलीको मुखरित करते, कभी गिरि गोवर्द्धनकी गहन गुहाओंमें बैठकर विश्राम करते और कभी प्राणप्रिय साथियोंके साथ नाना प्रकारके क्रीड़ा-कौतुक किया करते।

एक दिन हटात् कृष्ण अपने साथियोंको छोड़कर निर्ज्जन वनमें चले गये और वड़ी देरतक वापस न आये। अधिक विलम्ब होते देखकर, साथियोंको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने कृष्णको ढूँढ़नेके लिये सुवलको भेजा। सुवल कृष्णका अन्तरंग वन्धु था। कृष्ण उसे अपने अन्यान्य साथियोंकी अपेक्षा अधिक चाहते थे और जब कभी किसी निर्ज्जन स्थानमें बैठते तो उसे बता भी देते थे। सुवलने बड़ी देरतक इधर-उधर ढूंढ़ा "कृष्ण, भाई कृष्ण!!" कहकर बहुत पुकारा। परन्तु जब कहीं पता

न लगा, तब अन्तमें हताश होकर लौट आया। उसके लौट-कर आनेपर बलराम सब साथियोंको लेकर कृष्णको ढूंढ़ने चले। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते एक निर्ज्जन स्थानमें जाकर देखा, कि एक आठ बाहोंवाली, अपूर्व्व तेजोमयी रमणी कृष्णको गोदमें लिये, बैठी है और एक मृगचर्मधारी, हाथमें त्रिशूल लिये और समस्त शरीरमें भस्म लपेटे, तीन नेत्रवाला दिव्य शोभाशाली पुरुष, झूमता हुआ कुछ गा रहा है। उसके पास ही एक और जटाजूटधारी महा-पुरुष वीणा बजा रहे हैं। यह अद्भुत दृश्य देख, ग्वालबालोंको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। वे चुपचाप खड़े होकर तमाशा देखने लगे। इतनेमें कृष्णकी दृष्टि अपने साथियोंपर जा पड़ी। वे तुरन्त उस रमणीकी गोदसे उतर कर अपने साथियोंसे आ मिले। वह रमणी दोनों महापुरुषों सहित न जाने कहाँ गायब हो गई! यह अपूर्व्व विस्मयकर दृश्य देखकर, ग्वालबालोंके मनमें विचित्र कुतूहल उत्पन्न हुआ। परन्तु कृष्णने उन्हें बातोंमें ऐसा फंसाया, कि वे सारी बातें भूल गये!

इसके बाद कृष्णको पाकर, महा उल्लास करती, बालक-मण्डली यमुनाकी ओर चली। उस समय दो पहर हो गया था। सूर्य्यका प्रखर उत्ताप चारों ओर फैल गया था। गौयें तथा ग्वालबाल प्याससे व्याकुल हो गये थे। कुछ अग्रसर होनेपर उन्हें एक सुन्दर जलाशय दिखाई दिया। यह जलाशय यमुना नदीका एक अंश विशेष था। इसमें सदैव सुन्दर स्वच्छ जल भरा रहता था। जलाशयके निकट पहुँचकर ग्वालबालोंने
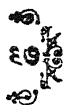
जल पीकर अपनी प्यास बुझाई। इसके बाद गायों और बछड़ोंको भी जल पिलाया। केवल कृष्ण और बलरामने, प्यास न रहनेके कारण जल न पिया।

जल पीकर ऊपर आते-आते सभी लड़के बेहोश हो गये! गायों और बछड़ोंकी भी यही दशा हुई! साथियोंकी यह अवस्था देखकर कृष्ण और बलराम अत्यन्त विस्मित हुए। परन्तु थोड़ी देरके बाद उनकी बेहोशीका कारण उन्हें मालूम हो गया। बात यह थी, कि कालीयनाग* नामक एक विषधर सर्प अपने परिजनों-सहित इस जलाशयमें निवास करता था। इसी लिये जलाशयका जल अत्यन्त विषाक्त हो गया था। जो प्राणी इस जलाशयका जलपान करता था, वह तुरन्त ही बेहोश होकर गिर पड़ता था और अन्तमें मर जाता था।

---

* कालीनागके सम्बन्धमें आधुनिक विचारवानोंकी दो राये हैं। कुछ लोग उसे विषधर साँप स्वीकार करते हैं और अनुमान करते हैं, कि कृष्णने उसे मार भगाया होगा। इसीके आधारपर पौराणिकोंने यह कहानी रच डाली होगी। कुछ विद्वानोंकी रायमें वह कोई अनार्य्य तस्कर था और गोप-ग्वालोंको बहुत दिक़ किया करता था। यहाँतक कि, उसके भयसे कोई उधर जाता तक न था। अतएव लोगोंका भय दूर करनेके लिये ही कृष्णने उसे युद्धमें परास्त कर भगा दिया होगा। पुराणोंमें लिखा है, कि कालीयकी स्त्रियोंने उसे क्षमा कर देनेके लिये कृष्णकी बड़ी स्तुति की थी। इससे भी अनुमान किया जाता है, कि वह मनुष्य ही था। स्वर्गीय बङ्किम-चन्द्र चटर्जीकी रायमें कालीय-दमनकी कथा एक रूपक है। उन्होंने इसका

पक्षियोंके राजा गरुड़के भयसे यह नाग बहुत दिनोंसे अपने बाल-बच्चोंके साथ इस जलाशयमें रहा करता था। गरुड़ सर्प जातिके कट्टर शत्रु हैं। जहाँ कहीं कोई साँप देखते हैं, उसे निगल जाते हैं। यह देखकर एक बार सर्पोंने उनसे सन्धि कर

जो आध्यात्मिक अर्थ किया है उसका आशय इस प्रकार है:—काले जल-वाली, कलनिनादिनी कालिन्दी, घोरनाद करनेवाली अन्धकारमयी काल-प्रवाहिनी नदी है। उसमें कितनेही भयङ्कर भँवर है। जिसे हमलोग दुःख-मय या विपद्-काल कहते हैं, वही उस कालप्रवाहिनी नदीके भँवर हैं। मनुष्योंके कितनेही विषमय, भयङ्कर शत्रु उस भँवरमें छिपे हैं। उनके रहनेके स्थान, साँपकी बिलके समान निभृत हैं, उनकी चाल साँपकी भाँति टेढ़ी है और वे साँपकी भाँति ही अमोघ विषधारी हैं। फलतः वे शत्रु विषधर स्वरूप हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तापत्रय ही विषधरोंकी तीन फणें हैं। यदि दुःखोंका कारण इन्द्रियोंको मान लें तो हमारी पंचेन्द्रियाँ ही उनकी पाँच फणें हैं और यदि हमारे अमङ्गलोंके अनेक कारण हैं तो वे ही उस सर्पकी सहस्र फणें हैं। घोर भंवरमें पड़कर इस भीषण भुजङ्गके वशीभूत हो जानेपर, भगवद्-पाद-पद्मके सिवा हमारे उद्धारका कोई उपाय नहीं। उस समय यदि भगवान् कृपापरवश हो, विषधरको पद-दलितकर, अपनी मनोहर मूर्त्ति दिखाकर, अभयवंशी बजा दें, तभी यह जीव आशान्वित होकर संसार-यात्रा-निर्वाह कर सकता है और वह कराल नादिनी कालनदी प्रशांत सलिला बन जाती है। कृष्ण सलिला, भीषण नाद करनेवाली कालप्रवाहिनीके भयावह भंवरमें, अमङ्गल रूपी भुजङ्गके मस्तकपर आरूढ़, अभयवंशी बजानेवाले वंशीधरकी मूर्ति पुराणकारकी अपूर्व सृष्टि है। इस भावको प्रतिमा-रूपमें परिणतकर उसकी पूजा करने-वालेको कौन पौत्तलिक कहनेका साहस कर सकता है?
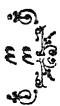
ली। तय पाया कि, सर्प लोग प्रति दिन गरुड़को बलि प्रदान किया करेंगे। परन्तु कालीयनागने यह शर्त स्वीकार न की। वह कभी गरुड़को बलि प्रदान नहीं करता था, प्रत्युत् दूसरे नागोंका प्रदान किया हुआ बलि भी भक्षण कर लिया करता था। इससे गरुड़ कालीयपर बहुत बिगड़े। कालीय भी डटकर खड़ा हो गया। ख़ूब लड़ाई हुई। परन्तु अन्तमें कालीय मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ और वृन्दावनके निकट, यमुनाकी झीलमें आकर छिप गया।

गरुड़ इस झीलके निकट आ नहीं सकते थे। कारण यह था, कि एकबार वे उड़ते हुए उसी झीलके पास आ पहुँचे थे। उस समय उन्हें बड़ी भूख लगी थी। आकाशसे उतरकर झील-मेंसे एक मछली पकड़कर खाने लगे। झीलके निकट ही सौरभि नामके एक ऋषि रहा करते थे। उन्होंने गरुड़को मना किया, कि इस झीलकी मछली मत पकड़ो। परन्तु क्षुधा-पीड़ित गरुड़ने मुनिके कहनेका कुछ ख़याल न किया। इससे मुनिने क्रुद्ध होकर शाप दिया, कि यदि भविष्यमें फिर कभी यहाँ आवोगे, तो मर जावोगे। कालीयनाग इस बातको जानता था। इसीसे वह इस झीलमें आकर रहने लगा था और उसी समयसे उस झीलका नाम कालीदह पड़ गया था। उस विषधरके भयसे कोई प्राणी उस दहके निकट नहीं जाता था।

अपने साथियोंकी अवस्था देखकर कृष्णको मालूम हो गया, कि कालीयनागके विषके कारण ही वे इस तरह बेहोश पड़े हैं।

उन्होंने अपनी सञ्जीवनी दृष्टि फेरकर ग्वालवालों और गायोंको जीवित किया और फिर कालीयको किसी तरह भगाकर उस स्थानको सदैवके लिये निरापद करनेकी तद्वीर सोचने लगे।

कालीदहके किनारे एक विशाल कदम्ब वृक्ष था। उसकी डालियाँ दहके मध्य भाग तक फैली हुई थीं। हठात् कृष्ण उस वृक्षपर चढ़कर कालीदहमें कूद पड़े। उनके कूदनेसे दहका प्रशान्त जल खलबला उठा। निश्चिन्तता पूर्व्वक विश्राम करता हुआ विषधर चौंक उठा और कृष्णको सामने खड़ा देखकर बड़े ज़ोरोंसे फुफकार छोड़ता हुआ उनपर टूट पड़ा।

हठात् कृष्णको कालीदहमें कूदते देखकर ग्वालवाल हाहाकार करने लगे। गायें भी चरना छोड़कर सिर उठाये दहकी ओर देखने लगीं। दैवात् उसी समय वृन्दावनमें एक भयङ्कर भूचाल भी आ गया। इससे गोप-ग्वाल बेतरह घबरा उठे। नन्द-यशोदाको अपने बच्चोंकी बड़ी चिन्ता हुई। वे व्याकुल होकर कृष्णको देखनेके लिये वनकी ओर दौड़े। उनकी देखा-देखी अन्यान्य गोपगोपियाँ भी उधर ही दौड़ पड़ीं।

कालीदहके पास पहुँचने पर उन्हें सब हाल मालूम हुआ। बेचारी यशोदा चीख़कर बज्राहत वृक्षकी भाँति भूमिपर गिर पड़ी। नन्द सिर पकड़कर बैठ गये। अन्यान्य गोप-ग्वाल तथा गोपियाँ रोने लगीं। बड़ा बावेला मच गया। सभी "हाय कृष्ण! हाय कृष्ण!!" कहकर आर्त्तनाद करने लगे। बलराम-को कृष्णके पौरुष—पराक्रमपर दृढ़ विश्वास था, उन्होंने नन्द

कृष्ण उछलकर उसके फणपर सवार हो गये और प्रसन्नतापूर्वक नाचने लगे।

Durga Press. Calcutta.

(देखिये—पृष्ठ संख्या १०१)

यशोदाको समझा बुझाकर शान्त करनेकी चेष्टा की। परन्तु कोई फल न हुआ।

क्रुद्ध कालीयने कृष्णके शरीरमें लपटकर उन्हें अच्छी तरह जकड़ लिया और अपने तीव्र विषैले दांतोंसे उन्हें दंशन करने लगा। कृष्ण अपने शरीरकी यथासाध्य रक्षा करते हुए, उसे जलसे बाहर लानेकी चेष्टा करने लगे और सर्प उन्हें निष्पेषित करने लगा। अन्तमें कृष्णने दम रोककर अपनी देहको इतना फुलाया कि नागकी नसें ढीली हो गईं। सारा बल तिरोहित हो गया; शरीर अवसन्न हो गया और बन्धन आपसे आप शिथिल होकर खुलने लगा। यहाँतक कि, अन्तमें नाग कृष्णको छोड़कर अलग खड़ा हो गया। यद्यपि उसका शरीर क्लान्त हो गया था, परन्तु क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। वह बार-बार फुफकार छोड़ता हुआ उनकी ओर देखने लगा। उस समय उसकी आँखोंसे मानों आगकी चिनगारियाँ निकल रही थीं। कुछ देरके बाद फण फैलाकर विकट फुँफकार छोड़ता हुआ वह कृष्णकी ओर झपटा और दंशन करनेकी चेष्टा करने लगा। इधर कृष्ण कौशल पूर्व्वक उसके आक्रमणसे अपनी रक्षा करते हुए, उसे थकाने लगे। कुछ देरके बाद, जब कालीय नितान्त क्लान्त हो गया, तब कृष्ण उछलकर उसके फणपर सवार हो गये और प्रसन्नता पूर्व्वक नाचने लगे। कृष्णके भारसे नाग अत्यन्त व्याकुल हो गया। उसके मस्तकों* से मणियाँ खसक

* भागवतमें लिखा है कि कालीयके हजार फण थे। विष्णु पुराणमें पाँच और हरिवंशमें तीन फण बताये गये हैं।

पड़ीं और नाकोंसे रुधिर-धारा बहने लगी। अन्तमें विवश होकर उसने कृष्णकी वश्यता स्वीकार की। उस समय नागकी स्त्रियाँ और लड़के एकत्र होकर अत्यन्त विनीत भावसे कृष्णकी स्तुति करने लगे।

नाग-नागिनोंकी कातर प्रार्थना सुनकर दीनदयालु कृष्णने कालीयका अपराध क्षमा कर दिया और बोले—"मैं तुम्हें क्षमा प्रदान करता हूँ, परन्तु अब यहाँ रहने नहीं पाओगे। यह स्थान छोड़कर तुम्हें अन्यत्र चला जाना होगा। "कालीयने सिर झुकाकर यह आज्ञा स्वीकार कर ली।

इसके बाद उसने कृष्णकी विधिवत् पूजा की और उनके आदेशानुसार बाल-बच्चों सहित, रमणक द्वीपमें, जाकर रहने लगा।

कालीयका दमन कर कृष्ण सरोवरसे बाहर निकले और शीतसे काँपते हुए अत्यन्त संकुचित भावसे माता यशोदाके निकट जाकर खड़े हो गये। स्नेहमयी जननीने दौड़कर बालकको छातीसे लगा लिया। मानों रङ्कको रत्नोंकी राशि मिल गई। विषादके बादल विलीन हो गये और चारों ओर आनन्दका उजियाला फैल गया।

यद्यपि श्रीकृष्णकी सभी लीलायें अद्भुत और आश्चर्य्य-प्रद थीं, तथापि उनके उपर्युक्त कर्मका गोप-गोपियोंपर विशेष प्रभाव पड़ा। वे समझ गये, कि कृष्ण कोई साधारण लड़का नहीं है। यह अवश्य ही किसी महा शक्तिशाली देवताके अंशसे उत्पन्न हुआ है। इसने कालीय जैसे दुर्द्धर्ष जीवको परास्तकर अपने अपूर्व्व पौरुषका परिचय दिया है। क्या साधारण मनुष्यका बालक ऐसा पराक्रमशाली हो सकता है? उसी दिनसे उनके मनमें दृढ़ विश्वास हो गया, कि यह असाधारण बलवीर्य्यशाली बालक, सब प्रकारकी आपद्-विपदोंसे अपनी और गोकुल-वासियोंकी अनायासही रक्षा कर सकता है। इसीसे उनके हृदयमें कृष्ण-प्रेमके साथ-साथ ही कृष्ण-भक्तिका भी सञ्चार हो आया। अब वे उन्हें देवताकी भाँति पूज्य और श्रद्धा-पात्र समझने लगे। कृष्ण भी नित्य नई अद्भुत लीलायें दिखाकर उनके हृदयोंपर अधिकार जमाने लगे।

जिस दिन उन्होंने कालीयको परास्त कर 'रमणक द्वीप' भेजा था, उस दिन गोकुल-वासी अपने घर नहीं गये। दिन

भरकी हैरानी-परेशानीके बाद इतनी दूर चलकर घर जाना, किसीने स्वीकार न किया। अतएव वे वहीं सोकर रात विताने लगे। अचानक आधी रातको वनमें भीषण आग लगी। गहरी नींदसे चौंकनेपर अग्निका भीषण काण्ड देखकर गोप-ग्वालोंके होश पैंतरा कर गये। यह देखकर कृष्णने उन्हें आश्वासन दिया और इस भीषण अग्निसे उनकी रक्षा की। इसके बाद एक दिन और एक ऐसी ही दुर्घटना हो गई। ग्वाल-बाल एक वनमें गायें चरा रहे थे, इतनेमें विषम दावानलसे सारा वन जल उठा। उस समय भी कृष्णने उनका प्राण बचाया।

कृष्णकी ही तरह बलराम भी बड़े विचित्र बली थे। उन्होंने एक दिन प्रलम्ब नामक राक्षसको मारकर चरवाहोंकी रक्षा की। प्रलम्बको कंसने कृष्ण-बलरामको पकड़ लानेके लिये भेजा था।

ऊपर लिख आये हैं, कि श्रीकृष्णके अद्भुत कर्म्मोंका गोप-गोपियों-पर बड़ा विचित्र प्रभाव पड़ गया था और उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया था, कि संसारका कोई कर्म्म इस महाबलशालीके लिये असाध्य नहीं है। यह अपनी अपूर्व दैवीशक्तिके प्रभावसे असम्भवको भी सम्भव कर दिखलाता है। उनकी यह धारणा उत्तरोत्तर बढ़ती गई। अतः जब कभी उनपर किसी तरहकी विपद्-आपद् आ पड़ता अथवा कोई हिंसक जन्तु उन्हें सताने लगता, तो वे सीधे कृष्णके पास दौड़े आते। कृष्ण तत्काल कोई न कोई तदबीर कर उनका संकट दूर कर दिया करते थे।

एक बार नन्दजीने एकादशी व्रत किया था। संयोगवश

द्वादशी * रातको पड़ी। इसलिये वे रातको ही यमुना-स्नान करने गये। रातके आसुरी समयमें जलमें अवगाहन करनेके कारण, वरुणके सेवकने + उन्हें पकड़ लिया। जब इस बातकी खबर कृष्णको लगी, तब उन्होंने उसी समय यमुनामें प्रवेशकर, अपने पिता नन्दका उद्धार किया।

एकबार नन्द आदि गोप अपनी अपनी बैल-गाड़ियोंपर चढ़-कर, सरस्वती नदीके किनारे अम्बिका भवानीका दर्शन करने गये थे। दिनको व्रत-पूजन और दान-दक्षिणा देकर, रातको नदीके तटपर विश्राम करने लगे। इतनेमें एक अजगरने आकर नन्दजीको पकड़ लिया। नन्दजी चिल्ला उठे। उनकी चिल्लाहट सुनकर, कृष्ण आदि दौड़कर उनके पास गये। निश्चय हुआ, कि मशालों द्वारा अजगरका शरीर जलाया जाय। जिसमें गर्मीसे घबराकर वह नन्दजीको छोड़ दे। परन्तु जब इस तदबीरसे कोई नतीजा न निकला, तब श्रीकृष्णने अजगरके शरीरमें पदा-घात करना आरम्भ किया। इससे व्याकुल होकर उसने नन्दजीको छोड़ दिया और सुन्दर नरदेह धारणकर, श्रीकृष्णकी स्तुति करता

---

* एकादशी व्रत करनेपर द्वादशीमें पारणाकर लेना अत्यावश्यक है, नहीं तो व्रतका पुण्य नहीं प्राप्त होता। इधर हिन्दू मतानुसार रातको जलके अधिष्ठाता वरुणदेव विश्राम किया करते हैं, इसलिये रातमें जलमें अवगाहन करना निषिद्ध है।

+ आजकलके विद्वानोंके मतानुसार नन्दजी यमुनामें डूब गये थे, अथवा कोई जल जन्तु उन्हें पकड़ ले गया था।

हुआ कहने लगा—"मैं गन्धर्व हूं। एक ऋषिके शापके कारण अजगर हो गया था। आज आपके चरण-स्पर्शसे मैं शाप-मुक्त हुआ हूं। ऋषिने मुझसे कहा था, कि भगवान श्रीकृष्णके चरण-स्पर्शसे तेरी मुक्ति होगी और तू पुनः अपना गन्धर्वशरीर धारणकर सकेगा।" यह कहकर वह गन्धर्व श्रीकृष्णके चरणोंमें श्रद्धा-भक्ति पूर्व्वक प्रणाम कर चला गया।*

एक दिन श्रीकृष्ण और बलराम अपनी मण्डली-सहित वृन्दावनमें क्रीड़ा-कौतुक कर रहे थे। इतनेमें उन्हें खबर मिली, कि कोई बदमाश यक्ष, कतिपय गोप-युवतियोंको जबर्दस्ती पकड़ कर लिये जा रहा है। इस खबरके सुनते ही दोनों भाइयोंने उसका पीछा किया। काल और मृत्युकी भांति उन दोनों वीरोंको अपनी ओर आते देखकर, यक्ष बड़ा भयभीत हुआ और स्त्रियोंको छोड़कर भाग जानेकी चेष्टा करने लगा। परन्तु कृष्णने पकड़कर उसका मस्तक छेदन कर डाला।

श्रीकृष्णकी नित्य नवीन लीलायें देखकर, गोप-गोपियोंका प्रेम और भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। आबाल-वृद्ध-वनिता सभी उनसे प्रेम करने लगे। गोकुलके स्त्री-पुरुषोंमें, युवक-युवतियोंमें और बालक-बालिकाओंमें सदैव कृष्णकी चर्चा होने लगी। कोई उनके मनोहर रूपकी प्रशंसा करता, तो कोई उनके अद्भुत शौर्य्य-वीर्य्यका

---

* पुराण विरोधियोंकी रायमें अजगरका गन्धर्व होना कल्पित उपन्यास मात्र है। इसमें सत्य इतना ही है, कि श्रीकृष्णने अजगरके मुखसे नन्दको बचा लिया।

बखान करता, कोई वंशी वजानेकी तारीफ़ करता और कोई उनके नाच-गानकी चर्चा कर विमुग्ध होता। कोई उन्हें शक्ति-शाली देवता समझता, तो कोई उनके अद्भुत कर्म्मोंके गीत गाता।

कृष्णका मनोहर रूप और अद्भुत पराक्रम देखकर, बहुतसी गोप-किशोरियां* उनकी पत्नी बननेकी अभिलाषिणी बन गई थीं। हेमन्त ऋतुमें अपने मनोरथकी पूर्त्तिके लिये उन्होंने एक मासतक कात्यायिनी देवीकी आराधना आरम्भ की। प्रति दिन प्रातःकाल यमुनामें स्नान कर, विविध उपचारों द्वारा भग-वती कात्यायिनीकी पूजा करने लगीं।

---

* महाभारत, विष्णु पुराण वा हरिवंश पुराणमें यह कथा बिल्कुल नहीं है। केवल श्रीमद्भागवतमें है। भागवतकारने इस लीलाका जो विस्तृत विवरण दिया है, वह आजकलकी सभ्यताके अनुसार अश्लील है। इसलिये यहाँ उसका अति संक्षेपमें उल्लेख किया गया। कृष्ण-चरित्रकी आलोचना करनेवाले आधुनिक विद्वानोंने भी शायद अश्लील समझ कर ही, इस कथापर विचार नहीं किया है। परन्तु स्वर्गीय बङ्किम-चन्द्र चटर्जीने अपने 'कृष्ण-चरित्र' में इसपर खूब तर्क-वितर्क किया है। उनके मतानुसार इस घटनामें सत्यका लवलेश मात्र भी नहीं है और इस वर्णनका बाहरी दृश्य आजकलकी रुचिके विपरीत भी है। परन्तु इसमें पवित्र भक्तितत्व निहित है। गोपकुमारियोंने कृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी लालसासे, कात्यायिनी-व्रत किया था और उनके चरणोंमें अपना सर्वस्व, यहाँतक, कि स्त्रियोंका शेष रत्न लज्जातक भी अर्पण कर दिया। हिन्दूधर्मके भक्तिपादके अनुसार कृष्णको इन गोपियोंका पतित्व अवश्य स्वीकार करना चाहिये। क्योंकि उन्होंने गीतामें स्वयं कहा है,—"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।" अर्थात्, जो जिस भावसे मेरा भजन

कृष्णने सुना, कि गोपकुमारियां प्रति दिन नङ्गी होकर यमुनामें स्नान करती हैं। यह बात उन्हें अत्यन्त अनुचित प्रतीत हुई। उन्होंने किशोरियोंकी यह आदत छुड़ा देनेका विचार किया। वे लड़कपनके नटखट और चपल तो थे ही। एक दिन तड़के उठकर अपने कुछ अन्तरंग मित्रोंके साथ, यमुना किनारे जा पहुँचे। गोप-किशोरियां नित्य नियमानुसार अपना अपना वस्त्र, यमुना किनारे छोड़कर नहा रही थीं। कृष्ण चुपकेसे उनके सब कपड़े लेकर, एक वृक्षकी डालीपर चढ़ गये और आनन्द पूर्व्वक वंशी बजाने लगे। अन्तमें किशोरियोंके बहुत चिरौरी-मिनती करनेपर, फिर कभी नङ्गी होकर न नहानेकी प्रतिज्ञा कराकर, कृष्णने उनका वस्त्र लौटा दिया और कहा, कि मैं शीघ्र ही एक दिन तुम लोगोंकी मनोकामना पूरी करूँगा।

धीरे-धीरे श्रीकृष्णकी अनुपम रूपराशि और उनके अद्भुत कर्मोंकी ख्याति वृन्दावन और गोकुलकी सीमा उल्लङ्घनकर दूरतक जा पहुँची थी। आसपासके स्थानोंके अधिवासियोंके हृदयोंमें भी इस विचित्र बालकको देखनेकी लालसा उत्पन्न होने लगी। एक दिन कृष्ण अपने राखाल-बन्धुओंके साथ गायें चरा रहे थे। मध्यानकालमें कुछ ग्वालबालोंने भोजन करनेकी इच्छा प्रकट की। कृष्णने कहा—"यहांसे कुछ दूरपर ब्राह्मण लोग यज्ञ कर रहे हैं। तुम लोग उनके पास जाकर कहना, कि हम-लोगोंको कृष्ण और बलरामने भेजा है, कुछ भोजन दीजिये।"

करता है. मैं उसी भावसे उसपर अनुग्रह करता हूं। अतः कृष्णने केवल उन गोपकुमारियोंकी मनोकामना पूरी करनेके निमित्त ही यह लीला की थी।

कृष्णचन्द्रकी आज्ञा पाकर गोप-बालकोंने ब्राह्मणोंकी यज्ञ-शालामें जाकर अपना अभिप्राय जनाया। परन्तु ब्राह्मणोंने कुछ ध्यान न दिया। बेचारे बालक हताश होकर लौट आये।

कृष्णने उनका हाल सुनकर कहा,—"एकबार उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके पास जाकर भोजन मांगो। स्त्रियाँ स्वभावतः ही दया-वती होती हैं। मुझे विश्वास है, कि वे अवश्य तुम्हें भोजन प्रदान करेंगी। उनसे जाकर कहना, कि श्रीकृष्ण और बलराम निकट ही बैठे हैं, उन्हीं लोगोंने हमें आपके पास भोजन मांगनेके लिये भेजा है।"

बालकोंने ऐसा ही किया। द्विजपत्नियां पहलेसे ही कृष्णकी सुख्याति सुन चुकी थीं और उन्हें देखनेके लिये उत्सुक हो रही थीं। उन्होंने प्रसन्नता पूर्व्वक ग्वालबालोंको प्रचुर भोजन-सामग्री देकर, विदा किया और उनके चले जानेपर स्वयं भी कृष्ण-दर्शनके लिये चल पड़ीं। ब्राह्मणोंने उन्हें रोकनेकी बड़ी चेष्टा की, परन्तु वे कृष्णको देखनेके लिये इतनी उत्कण्ठिता थीं, कि किसी तरह न रुकीं।

अपने प्रति ब्राह्मण-पत्नियोंका इतना प्रेम देखकर, कृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। उनके आनेपर बड़े आदरसे बैठाकर, कुशल आदि पूछा। कृष्णका अलौकिक रूपलावण्य देखकर, स्त्रियाँ भी विमुग्ध हो गईं और बड़ी देरतक बैठी रहीं। अन्तमें कृष्णने कहा—"आपलोगोंको यहां आये बड़ी देर हुई। अब अपने अपने स्थानपर जाइये।"

परन्तु स्त्रियां जानेपर तैयार न हुईं। उन्होंने कहा,—"हे

कृष्ण! तुम्हारे मोहन रूप और मधुर स्वभावने हमें विमुग्धकर लिया है। तुम्हें छोड़कर जानेकी इच्छा नहीं होती। हमारे घरवाले हमें आने नहीं देते थे। तुम्हारी यश-ख्याति जबर्दस्ती हमें यहांतक खींच लाई है। अब जानेसे वे अवश्य ही हमारा तिरस्कार करेंगे।"

कृष्णने उन्हें बहुत समझा-बुझाकर लौटाया। घर पहुँचकर ब्राह्मणियोंने श्रीकृष्णके रूप, गुण और स्वभावकी खूब प्रशंसा की। स्त्रियोंके मुँहसे कृष्णका हाल सुनकर, ब्राह्मणोंके मनमें भी उन्हें देखनेकी इच्छा उत्पन्न हुई और साथ ही साथ उन्हें अपने कृत्यपर पश्चात्ताप भी होने लगा।

१९
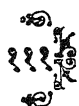
गोवर्द्धन-पूजा.

प्रति दिन नाना प्रकारकी अलौकिक लीलायें दिखाकर, अपने अद्भुत कर्म्मोंसे व्रजवासियोंको विमुग्ध करते हुए, कृष्णने बाल्यावस्था बिताकर किशोरावस्थामें पदार्पण किया। बाल्यकालकी स्वाभाविक चपलता और चञ्चलता धीरे धीरे गम्भीरताका रूप धारण करने लगी। किशोरावस्थाके आगमनसे उनका मनोहर रूपलावण्य और भी अधिक बढ़ गया। अङ्ग-प्रत्यङ्गमें यौवन-कालीन परिवर्त्तन दिखाई देने लगे। जिस चितवनमें पहले बालोचित चञ्चलता और शोखी भरी दिखाई देती थी, उसमें अब स्वाभाविक गम्भीरता और विचार-शीलता परिलक्षित होने लगी। वक्षस्थल पहलेकी अपेक्षा कुछ स्फीत हो गया, भुजायें दृढ़ता तथा नवबलसे परिपूर्ण होने लगीं। सारांश यह, कि किशोरावस्थाके आगमनके कारण कृष्ण-शरीर विचित्र शोभा युक्त हो गया। साथ ही साथ व्रजवासि-योंपर उनका प्रभाव भी अधिक पड़ने लगा। यहां तक, कि

वे अपने प्रत्येक धार्म्मिक तथा सामाजिक कामोंमें भी कृष्णके मतको प्रश्रय प्रदान करने लगे।

धार्म्मिक गोपजाति वर्षके अन्तमें एकबार बड़ी धूमधामसे इन्द्रयज्ञोत्सव किया करती थी। वर्षा और वायुके अधिष्ठाता इन्द्रको प्रसन्न रखना ही इस यज्ञोत्सवका मुख्योद्देश्य था। प्रति वर्षकी भांति इस यज्ञोत्सवका समय समीप आया देख, नन्द आदि गोप महीनों पहलेसे उसका आयोजन करने लगे। विविध स्थानोंसे तरह तरहकी यज्ञ-सामग्री एकत्रित होने लगी। ब्राह्मण-भोजन तथा दान-दक्षिणाका भी आयोजन होने लगा। यह देख कृष्णने नन्दजीके पास जाकर, बड़ी नम्रतासे पूछा—"पिता! आप लोग प्रति वर्ष इतनी धूमधामसे इन्द्रकी पूजा क्यों करते हैं? इन्द्र कौन हैं?"

नन्दजीने कहा—"इन्द्र देवताओंके राजा हैं। पानी बरसाने-वाले वरुण, वायुके अधिष्ठाता मरुत और अग्नि आदि देवता उनकी आज्ञाके अधीन रहते हैं। इन्द्रके आज्ञानुसार ही पृथ्वीपर वर्षा होती है, जिससे मनुष्योंके लिये अन्नादि तथा पशुओंके लिये चारा मिलता है। यदि वर्षा न हो, तो पृथ्वीपर एक तिनका भी न जमे। यह सब इन्द्रकी ही कृपाका फल है, कि हमारे खेतोंमें तरह तरहके अन्न पैदा होते हैं, बागोंमें फल-फूल और वनोंमें नाना प्रकारके वनफल आदि पैदा होते हैं, जिससे हम-लोगोंकी जीविका चलती है। अतएव ऐसे उपकारी देवताके प्रति कृतज्ञता प्रकाश पूर्व्वक, उनकी पूजा करनेका और उसीके

उपलक्षमें ब्राह्मण-भोजन आदि करानेकी परिपाटी, वहुत दिनोंसे हमलोगोंमें प्रचलित है।”

कृष्णने कहा—“परन्तु विधाताके विधानानुसार प्रत्येक प्राणी अपने कर्म्मों का ही फल भोगता है। ईश्वर उसके कृत-कर्मों का फल प्रदान किया करते हैं। सुख-दुःख, असन-वसन आदि हमें अपने कृतकर्म्मोंके फल स्वरूप ही प्राप्त होते हैं। इसके लिये इन्द्र आदि किसी देवताकी पूजा करनेका कोई प्रयोजन नहीं दिखाई देता। सत्व, रज और तम, ये ही तीन गुण विश्वकी स्थिति, सृष्टि और लयके कारण हैं। इस रजोगुण द्वारा ही चालित हो, मेघ जल वरसाते हैं। जलसे शस्य उत्पन्न होता है। उससे प्रजा जीवित रहती है। अतएव इन्द्रसे इससे कोई वास्ता नहीं हैं। हमलोगोंके पास पुर, जनपद, ग्राम या गृह कुछ भी नहीं है। हमलोग वनवासी हैं। अतएव हमलोगोंको गो-ब्राह्मण और पर्वतके उद्देश्यसे ही, यज्ञ करना चाहिये। इन्द्रकी पूजाके लिये जो उपकरण संग्रहीत हुआ है, उसीसे इन्द्रके वदले गोवर्द्धन गिरिकी पूजा कीजिये। क्योंकि गोवर्द्धनसे हमें वड़ा लाभ है। गोवर्द्धन ही हमलोगोंकी रक्षा करता है। आपलोग वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा हवन कराइये, उन्हें दक्षिणा दीजिये तथा भील और चाण्डाल आदि पतित जातियोंको बुलाकर, खूब भोजन कराइये। मेरी समझमें इन्द्र-यज्ञकी अपेक्षा, इसी तरहका यज्ञोत्सव करना उचित होगा।”

श्रीकृष्णका सुयुक्तिपूर्ण प्रस्ताव सुनकर, नन्द आदि गोप

बड़े प्रसन्न हुए और इन्द्रकी पूजा त्यागकर, गोवर्द्धनकी पूजा करनेकी तैयारी करने लगे। नियत तिथिको बड़े समारोहके साथ, यज्ञ आरम्भ हुआ। वेदपाठी ब्राह्मणों द्वारा हवन कराया गया। इसके बाद साधु-ब्राह्मणोंको भोजन और दक्षिणा दी गई। आसपासकी नींच जातियोंको भी खूब भोजन कराया गया। गायें भी विविधि अलंकारोंसे सजाई गईं। इसके बाद गोवर्द्धन गिरिकी भी विधिवत् पूजाकर, प्रदक्षिणा की गई।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि श्रीकृष्णने एक दूसरा शरीर धारणकर कहा,—"मैं गोवर्द्धन पर्वत हूं।" गोपोंने गोवर्द्धनको प्रत्यक्ष शरीर धारणकर उपस्थित देख, बड़ी प्रसन्नतासे उनका पूजन किया और राशि-राशि भोजन-सामग्री उनके सामने लाकर रख दी। गोवर्द्धन जीने भी प्रसन्नता पूर्व्वक खूब भोजन किया। यह देखकर गोपोंके आनन्दका ठिकाना न रहा। गोवर्द्धनने अपना विशाल जड़शरीर छोड़कर, प्रत्यक्ष देवरूपसे दर्शन दे, उनकी पूजा ग्रहण कर ली। इससे बढ़कर प्रसन्नताकी बात और क्या हो सकती है? गोपोंने भक्ति पूर्व्वक, उनके चरणोंमें नमस्कार किया। गोवर्द्धन भी उन्हें आशीर्व्वाद प्रदानकर विदा हुए।

खूब धूमधामसे गोवर्द्धन-पूजाकर, गोपगण अपने-अपने घर आये।

इन्द्रने सुना, कि कृष्णके बहकानेके कारण, नन्द आदि गोपोंने इस साल उनके बदले, गोवर्द्धन पहाड़की पूजा की है। इस

संवादके सुनते ही, वे क्रोधके मारे आगबबूला हो गये। उन्होंने पवन तथा मेघोंको बुलाकर आज्ञा दी, कि एक छोकड़ेके बहकावेमें आकर, नन्द आदिने मेरी बड़ी अवज्ञा की है। अतः तुमलोग अभी जाकर मूसलाधार वृष्टिसे, सारा गोकुल और वृन्दावन बहादो।

मेघोंको इस प्रकार आदेश प्रदानकर, इन्द्रने अपना ऐरावत हाथी कसवाया और उसपर सवार हो, स्वयं भी व्रजकी ओर चले।

देखते-देखते गोकुल और वृन्दावनके ऊपर आकाशमें घनघोर घटा छा गई। चारों ओर घना अन्धकार फैल गया। बाद्-लोंके भयङ्कर गर्जन और बिजलीकी चमकसे, गोपोंका दिल दहलने लगा। बेचारे चिन्तित होकर, आकाशकी ओर निहार रहे थे, इतनेमें मूसलाधार वृष्टि आरम्भ हो गई और एक क्षणमें चारों ओर जलही जल दिखाई देने लगा।

गोपोंकी समझमें आ गया, कि इन्द्रकी अवज्ञाका ही यह फल है। इस समय केवल कृष्णका ही आसरा है। उन्हींके कहनेसे हमलोगोंने इन्द्रकी पूजा छोड़कर, गोवर्द्धनकी पूजा की है। अब वही हमारे परित्राणकी कोई तदबीर करेंगे।

इस तरह सोच-विचारकर, समस्त गोप और गोपी श्रीकृष्ण-के शरणापन्न होकर कहने लगीं—"हे कृष्ण! इस विपदसे तुम हमारी रक्षा करो! इन्द्रके प्रकोपसे वृन्दावनका सत्यानाश हुआ चाहता है। शीघ्र कोई उपाय करो, नहीं तो सारा गोकुल पानीमें डूबकर मर मिटेगा।"

कृष्णने कहा,—आप लोग कोई चिन्ता न करें। चलकर

गोवर्द्धनके शरणापन्न हों। गोवर्द्धन अवश्य ही हमारी रक्षा करेंगे।"

कृष्णके आदेशानुसार गोपगण, अपनी गाड़ी-छकड़े, गाय-बछड़े और चूल्हा-चक्की लेकर, गोवर्द्धनके निकट पहुँचे। कृष्ण भी उनके साथ-साथ चले और वहां पहुँचकर, उन्होंने छातेकी भाँति गोवर्द्धन पर्वतको बाँयें हाथपर उठा लिया*। कृष्णका यह अद्भुत पराक्रम देखकर, गोपोंके आश्चर्य्यकी सीमा न रही।

इसके बाद कृष्णने नन्द आदिको सम्बोधनकर कहा,—"आप लोग सब सामान लेकर, स्वच्छन्दता पूर्व्वक, इस पहाड़के नीचे चले आइये। अब इन्द्र आप लोगोंका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।"

इन्द्रके आज्ञानुसार एक सप्ताहतक गोकुल और वृन्दावनपर मूसलाधार पानी बरसता रहा। परन्तु कृष्णकी कृपासे वहांके अधिवासियोंका कुछ भी नहीं बिगड़ा। लगातार सात दिनोंतक गोवर्द्धनको हाथपर उठाकर कृष्णने उनकी रक्षा की। कृष्णकी

---

*श्रीकृष्णकी अन्यान्य अलौकिक लीलाओंकी भांति, गोवर्द्धनगिरिको उठा लेनेवाली बातपर भी आजकलके विद्वान विश्वास नहीं करते। गोवर्द्धनकी वर्त्तमान स्थिति देखनेसे प्रतीत होता है, कि किसी प्राकृतिक विप्लवने उसे उखाड़कर पुनः स्थापित कर दिया है। शायद इसी आधारपर पौराणिकोंने इस कथाकी रचना की होगी। यह भी सम्भव है, कि गोवर्द्धनकी पूजाके बाद ही वृन्दावनमें घोर वर्षा हुई हो और 'खाने-बदोश' गोपोंने श्रीकृष्णके कहनेसे गोवर्द्धनकी कन्दराओंमें जाकर आश्रय लिया हो और इसी कथाको कृष्ण-भक्तोंने अतिरंजित कर दिया हो।
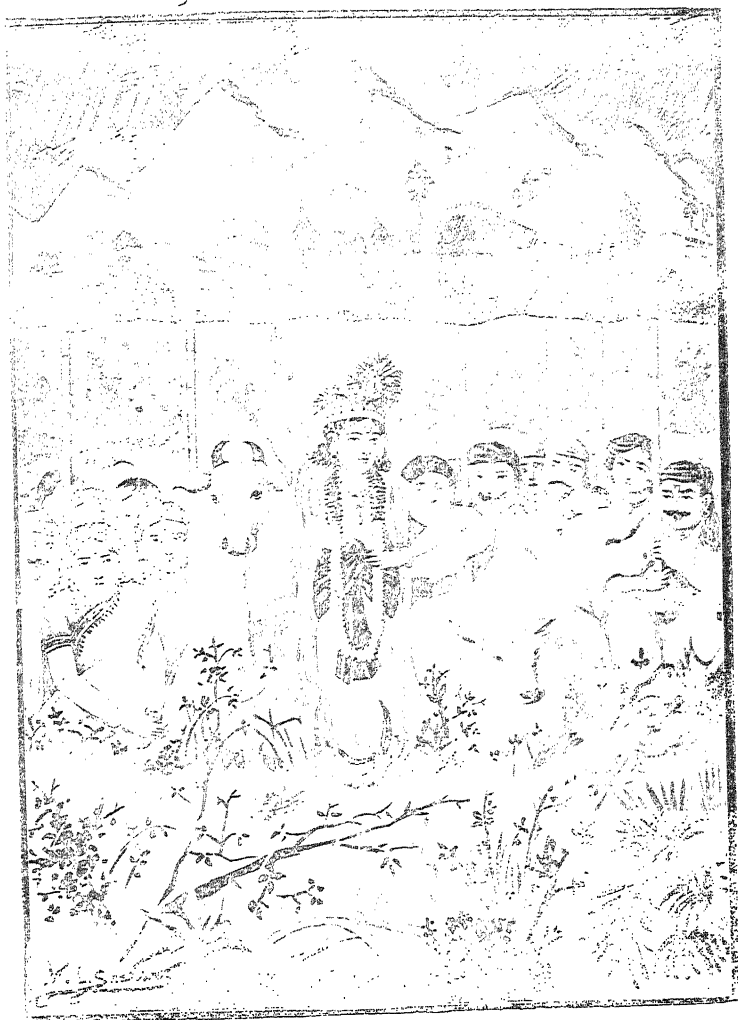
गोवर्द्धन-धारण ।

लगातार सात दिनोंतक गोवर्द्धनको हाथपर उठाकर कृष्णने उनकी रक्षा की ।

[देखिये—पृष्ठ संख्या ११६

...र्मा प्रेस, कलकत्ता]

यह अमानुषी शक्ति देखकर, इन्द्र हैरान रह गये। लाचार होकर, उन्होंने अपने मेघोंको वहांसे हटा लिया और निर्ज्जनमें आकर कृष्णके चरणोंपर गिरकर, क्षमा प्रार्थना करने लगे। इन्द्रने कहा,—"हे भगवन्! आप सर्व शक्तिमान परमात्मा हैं। अपने इन्द्रत्वके मदमें भूलकर, अज्ञानतावश मैं आपको पहचान नहीं सका था। अब आप कृपाकर मेरा अपराध क्षमा कीजिये और आशीर्वाद दीजिये, जिसमें फिर कभी मैं ऐसा निर्बुद्धिता-पूर्ण कार्य्य न करूँ। मुझे अपनी करनीपर बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है। अब मैं आपके शरणमें आया हूँ। आप शरणागत वत्सल हैं; मेरी रक्षा कीजिये।"

श्रीकृष्णने हंसते हुए इन्द्रको अभयकर कहा,—"देवराज! तुम्हें अपनी पदमर्य्यादाका अत्यन्त अभिमान हो गया था। इसीसे तुमने मुझे पहचाना नहीं। मदान्ध व्यक्ति मुझे नहीं पहचानते। तुम्हारा मदचूर्णकर, तुम्हारी आँखें खोलनेके लिये ही, मुझे इतनी तवालत करनी पड़ी है। क्योंकि अपने जनोंका मद-भँग करना, मैं अपना धर्म समझता हूँ। अब तुम स्वर्गमें जाकर, अपने ईश्वरप्रदत्त अधिकारोंका उपभोग करो। अपने अधिकारोंकी सीमा कभी उल्लङ्घन न करना, इसीमें तुम्हारा मंगल है।"

इसके पश्चात् इन्द्रने आकाशगंगाके पवित्र जलसे श्रीकृष्णको अभिषिक्तकर 'गोविन्द' नाम उच्चारण पूर्व्वक, उनका स्तव किया और उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणामकर प्रस्थान किया।

मेघोंके हट जानेपर, आकाश-मण्डल साफ़ हो गया; सूर्य्यका

प्रकाश चारों ओर फैल गया। तब कृष्णका आदेश पाकर, गोप-गण अपने गाड़ी-छकड़ेके साथ गिरि-गह्वरसे बाहर निकल आये। उनके निकल आनेपर कृष्णने भी, गोवर्द्धनको हाथपरसे उतार कर भूमिपर स्थापित कर दिया। श्रीकृष्णका यह अलौकिक कार्य्य देखकर, व्रजवासियोंने दधि-अक्षत आदिसे उनकी पूजा की और गा-बजाकर खूब आनन्द मनाया। गोपगोपियोंको इस बातपर विश्वास हो गया, कि श्रीकृष्ण परमात्माके अवतार हैं। नन्दजीने पण्डित गर्गजीका कथन सुनाकर इस बातकी पुष्टि की। उस दिनसे कृष्णपर उनलोगोंकी श्रद्धाभक्ति और भी अधिक हो गई।

२०

रासलीला.

शरदीय पूर्णिमाकी प्रायः आधी रात बीत चुकी थी। चन्द्रमाका विमल प्रकाश चारों ओर फैल रहा था। अपूर्व्व स्निग्ध चन्द्रिमासे वनस्थली रञ्जित हो रही थी। चकोर सतृष्ण दृष्टिसे अपने प्रियतम शशधरकी ओर टक-टकी लगाये देख रहा था। नाना प्रकारके वनपुष्पोंके मधुर सौरभसे दिक्मण्डल परिपूर्ण हो रहा था। श्रीकृष्ण अपने विश्रामागारमें लेटे हुए, प्रकृतिकी यह अनुपम शोभा देख रहे थे। हठात् उन्हें चीरहरणके दिन गोपियोंसे की हुई, प्रतिश्रुतिका ध्यान आया। उन्होंने गोपियोंके सामने प्रतिज्ञा की थी, कि एक दिन शीघ्र ही मैं तुमलोगोंकी मनोकामना पूरी करूंगा। इस सुहा-वनी रातको उस प्रतिज्ञाको पूरी करनेका उपयुक्त अवसर समझ, वे अपनी चिर सहचरी बाँसुरीको ले यमुनाकी ओर चले। चाँदनी रातमें स्वच्छ सलिला यमुनाकी मनोहर शोभा देखकर, कृष्ण विमुग्ध हो गये। कुछ देर खड़े होकर तन्मय भावसे कलुष-नाशिनी कालिन्दीको देखते रहे। इसके बाद बंशीको अपने

सुकोमल अधरोंपर स्थापित कर, धीरे-धीरे बजाने लगे। बंशीकी मनोहर तान क्रमशः उच्चसे उच्चतर होने लगी। विचित्र मादकता विशिष्ट मनोहर बंशी-ध्वनिसे वनस्थली गूंज उठी। वह मधुर ध्वनि सुनकर, वृन्दावनके वनजन्तु विमुग्ध हो गये। यों तो श्रीकृष्ण सदैव ही बंशी बजाकर सुननेवालोंको मोहित कर लेते थे। यहांतक, कि जब वे बंशी बजाने लगते थे, तब गायें और बछड़े चरना भूलकर, उनके पास आकर खड़े हो जाते थे। परन्तु आज वे जो स्वर्गीय संगीत अलापने लगे, उसमें पहलेकी अपेक्षा अधिक आकर्षण शक्ति भरी थी। उस मनोहर संगीतके एक-एक तान और लयमें न जानें कितनी श्रुति मधुर कथायें भरी थीं। आज उस बाँसकी बंशीसे जो ध्वनि निकलती थी, उसमें मानों कोई प्राण-सञ्जीवनी सुधा भरी थी। सुदूर गोकुल ग्रामके घरोंमें सोई हुई गोपियोंका हृदय, न जाने किस आकर्षण मन्त्र द्वारा कृष्णकी ओर खिंच गया। वे होश-हवास भूलकर, जिधरसे वह आनन्दोद्दीपक संगीत-ध्वनि आती थी, उधर ही दौड़ पड़ीं। गोपियोंकी, उस समयकी व्यस्तताका, एक कविने बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है:—

बाजी बौरानी बाजी देखबेको द्वार धाईं,
बाजी अकुलानी सुनि बंशी बंशीधरकी।
बाजीना पहिरें चीर बाजीना धरें धीर,
बाजिनके उठी पीर बिरहानल भरकी।
बाजी ना बोलें बाजी संगलागि डोलैं,

बाजिनको बिसर गई सुधिबुधि घरकी।
बाजी कहैं बाजी बाजी कहैं कहाँ बाजो,
बाजी कहैं बंशी बाजी साँवरे सुंदरकी।

गोपियोंको समागत देख, कृष्णने बड़े प्रेमसे उनका स्वागत किया और मधुरवाणीसे बोले,—"हे कल्याणियो, आओ, कहो, सब कुशल तो है ? इस भयावनी रातमें यहाँ क्यों आई हो ? घर सब कुशल तो है ? इस निर्ज्जन वनमें कितने ही हिंसक जीव रहते हैं। इसलिये तुम्हारा यहाँ ठहरना उचित नहीं। तुम शीघ्र अपने-अपने घर लौट जाओ। तुम्हारे पितामाता, भाई-बन्धु, लड़के-लड़कियाँ और पति आदि तुम्हारे चले आनेसे चिन्तित होंगे; तुम्हें ढूँढ़ते होंगे। इसलिये देर न करो, शीघ्र चली जाओ। मालूम होता है, कि इस सुहावनी रातमें प्रकृतिकी शोभा देखनेके लियेही तुम यहां आई हो। वास्तवमें बड़ी सुन्दर शोभा है। पूर्ण चन्द्रने प्रकृतिको अपनी विमलचन्द्रिकाकी चादरसे ढँक दिया है। फूलोंका सौरभ चारों ओर फैल रहा है। पवन मन्दगतिसे वृक्षोंके पत्तोंको हिला रहा है। यमुनाकी तरंग-मालाओंकी शोभा भी दर्शनीय हो रही है। तुम यह अनुपम शोभा देख चुकीं। अब देर न करो। शीघ्र ही चली जाओ। तुम साध्वी हो। पतिसेवा साध्वी स्त्रियोंका प्रधान धर्म है। इसलिये शीघ्र जाकर, अपने पतियोंकी सेवा करो। तुम्हारे छोटे बच्चे भूखसे रोते होंगे, शीघ्र जाकर उन्हें दूध पिलाओ। यदि मेरे स्नेहके कारण आई हो, तो तुम्हारी बड़ी कृपा है। वास्तवमें तुम सभी मुझसे बड़ा

स्नेह रखती हो। अब अपने-अपने पतियोंके पास जाओ। कपट-रहित होकर पति-सेवा करना, परिजनोंकी सुश्रूषा और सन्तानका परिपालन करना, स्त्रियोंका परम धर्म है। पति अभागा हो, मूर्ख हो, रोगी हो, धनहीन हो और महापातकी हो, तो भी अच्छी गति चाहनेवाली कुल-कामिनियोंको उसका निरादर न करना चाहिये। कुल-कामिनियोंका असतीत्व ही उनके अधःपातका कारण है। यह अतीव निन्दनीय, भयानक और घृणित कर्म है। मेरे पास न आकर भी तुम अपना स्नेह जना सकती थीं।"

श्रीकृष्णकी बातें सुनकर, गोपियाँ अत्यन्त लज्जित और हताश हुईं। उनकी आँखोंमें आँसू भर आया। उन्होंने अत्यन्त कातर स्वरसे कहा,—"कृष्ण! वास्तवमें तुम देवता हो। तुम्हारी वंशीकी आकर्षणशक्ति हमें यहाँ खींच लाई है। अतएव हमारे साथ इस तरहका निष्ठुर व्यवहार करना तुम्हें उचित नहीं। किसो, तुम्हारा आदेश शिरोधार्य्य है। हम लोग वही करेंगी। परन्तु जब, सब प्राणियोंमें तुम्हारी ही सत्ता मौजूद है, तब तुम्हारी ही सेवा द्वारा हम अपने पति-पुत्रोंकी सेवाका भी फल प्राप्त कर सकेंगी। अतएव हमें निराश न करो। तुम नारायणके अवतार हो, दूसरोंका उपकार करनेके लिये तुमने जन्म लिया है। हम केवल तुम्हारी उपासनाके लिये ही यहाँ आई हैं।"

गोपियोंके बहुत अनुनय-विनय करनेपर, उन्हें प्रसन्न करनेके
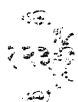
लिये, कृष्णने रासलीला* आरम्भ की। बाँसुरीको अधरोंपर स्थापित कर, फिर वैसाही अपूर्व सङ्गीत आरम्भ किया, जिससे विमुग्ध हो, घरबार छोड़कर, गोपियाँ उनके पास दौड़ी आई थीं। जिस तरह मदारीकी 'तुम्बी'का सम्मोहन स्वर विषधरोंको विमुग्ध कर देता है अथवा जिस तरह बहेलियेका बाजा मृगोंको

*रास वा रासः (रस. रास घज, भावे) अर्थ,—कोलाहलः। ध्वनिः। शृङ्खलकः। गोपानां क्रीड़ा भेदः। इति मेदिनी। "अन्योन्य व्यतिषक्त हस्तानां स्त्री पुंसां गायतां मण्डली रूपेण भ्रमतां नृत्य विनोदो रासोनाम" —श्रीधर स्वामी।

अर्थात्, स्त्री-पुरुष परस्पर हाथ पकड़कर गाते हुए और मण्डलाकार भ्रमण करते हुए जो नृत्य करते हैं, उसे रास कहते हैं। लड़के-लड़कियां आज भी इस तरहका नृत्य करती हैं। यूरोप तथा अमेरिका आदि पाश्चात्य देशोंमें युवक-युवती भी इसी तरहका नाच या रास करती हैं, जिसे बाल नाच या Ball Dansing कहते हैं। मालूम होता है, कि श्रीकृष्णके समयमें युवक-युवतियोंको परस्पर हाथ थामकर नाचना प्रचलित था। अथवा आजकलकी भाँति निन्द-नीय नहीं समझा जाता था। यह रासलीला पवित्र क्रीड़ा मात्र थी। इसमें आदिरसका नाम-गन्ध बिल्कुल न था। क्योंकि विष्णुपुराणमें रासली-लाका जो वर्णन पाया जाता है, उसमें आदिरस बिल्कुल नहीं है। रासलीलाका उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण हमने प्रधानतः विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवतके आधारपर लिखा है। परन्तु उसका जो अंश आजकलकी सभ्यताके प्रतिकूल, अथवा अश्लील प्रतीत हुआ है, उसे सर्वथा परित्याग कर दिया है। महाभारतमें रासलीलाका कहीं जिक्र नहीं है। विष्णु पुराणमें उल्लेख है, परन्तु पवित्र भाव-पूर्ण है। अश्लीलता और अपवित्रता बिल्कुल नहीं है। हरिवंशमें कुछ कुछ विलासिता-युक्त है। परन्तु भागवतके

उसके जालमें लाकर फँसा देता है, उसी तरह कृष्णकी वंशीका शब्द सुनकर गोपियाँ मोहित हो गईं और बार बार कृष्णकी वाद्य-निपुणताकी प्रशंसा करने लगीं। कृष्ण भी भावावेशमें आकर वंशी बजाते-बजाते नाचने लगे। वह नृत्य बड़ा ही हृदय-ग्राही—बड़ा ही आनन्द दायक था। उस अद्भुत नाट्यने गोपियोंकी

रास पंचाध्यायीमें और ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें तो आदि रसकी मानों नदी बहा दी गई है। भागवतकारने इस सम्बन्धमें अपनी सफाई भी दी है। उसका आशय यह है, कि श्रीकृष्ण ईश्वरके अवतार थे, उन्होंने जो कुछ किया उचित ही किया। जिस तरह अग्नि सब पदार्थोंको जलाकर भी पवित्र ही रहता है, उसी तरह कृष्णने भी जो कुछ किया वह दोषावह नहीं। विष पान करना शिवजीका ही काम था। यदि कोई इतर प्राणी विष पान करता तो तुरन्त ही मर जाता। ईश्वर रूपियोंके वाक्य ही सत्य हैं, आचरण सत्य नहीं। अतएव बुद्धिमान मनुष्योंको इस पचड़ेमें न पड़कर उनके वाक्योंका ही प्रतिपालन करना चाहिये।

यह तो हुई श्रीमद्भागवतकारकी सफाई। परन्तु आजकलके विद्वानोंको इस सफाईसे सन्तोष नहीं होता। वे इसे सर्वथा अनुचित और कृष्ण चरित्रको कलङ्कित करनेवाला बताते हैं। उनके मतानुसार किसी वैष्णव सम्प्रदायवालेने अपने किसी उद्देश्य विशेषकी सिद्धिके लिये श्रीकृष्णके पवित्र रास-क्रीड़ापर आदि रसका हाशिया चढ़ाकर उसे कलुषित और कलङ्कित कर दिया है। पुराणोंके मतानुसार रासलीलाके समय श्रीकृष्णकी उमर बारह वर्षकी भी न थी। ऐसी दशामें यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है, कि एक छोटेसे बालकके साथ भोगविलास करनेकी इच्छासे गोपियां अपने पतियोंको छोड़कर, दौड़ी आई थीं? देश पूज्य लाला लाजपतरायजीके मतानुसार रासलीला केवल बालकबालिकाओंका खेल था।
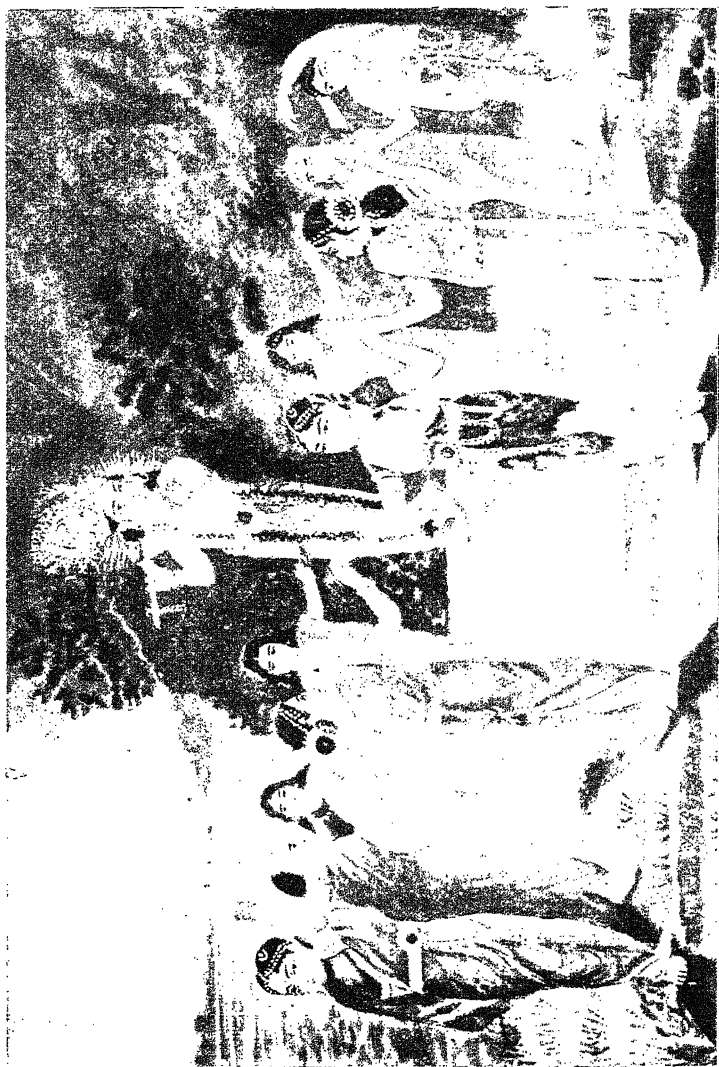
आये, तब यह चिन्ता आशङ्का और व्याकुलताके रूपमें परिणत हो गई। वे कृष्णको ढूँढ़नेके लिये वृन्दावनकी सघन झाड़ियोंमें इधर-उधर घूमने लगीं। परन्तु कृष्णका कहीं पता न लगा। अन्तमें निराश होकर, वे फिर यमुना किनारे आकर बैठ गईं और आपसमें नाना प्रकारका तर्क-वितर्क करने लगीं। उनके मनमें सन्देह होने लगा, कि शायद श्रीकृष्ण हमें धोखा देकर चले गये अथवा अपनी किसी प्रेयसीके साथ कहीं आनन्द मना रहे हैं!

इस तरहकी चर्चा होती ही थी, कि कृष्ण इतनेमें हँसते-हँसते आकर, उनके सामने खड़े हो गये। उन्हें उपस्थित देखकर गोपियोंके आनन्दका ठिकाना न रहा। मानों उनके निर्जीव शरीरमें जीवनका सञ्चार हो आया। एक गोपीने कृष्णके बैठनेके लिये, अपनी ओढ़नी उतारकर भूमिपर बिछा दी। कृष्ण उस प्रेम-पूर्ण आसनपर बैठकर, विश्राम करने लगे। कुछ काल इधर-उधरकी बातें होनेके बाद, गोपियोंने फिर रासक्रीड़ाके लिये अनुरोध किया। उदार चित्त कृष्णने प्रसन्नता पूर्व्वक रास आरम्भ किया। वे अपनी बाँसुरी लेकर खड़े हो गये और गोपियाँ उन्हें घेरकर नाचने लगीं। इसके बाद कृष्ण भी उनकी मण्डलीमें आकर नाचने लगे। उस समय प्रत्येक गोपीके मनमें कृष्णका हाथ पकड़कर, नाचनेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई। एक गोपी, दूसरी गोपीको हटाकर, स्वयं कृष्णका हाथ पकड़कर नाचने लगी। यह देखकर कृष्णने बारी-बारीसे, प्रत्येक गोपीका हाथ पकड़कर नृत्य किया। प्रायः प्रातःकालतक यह आनन्दोत्सव होता

रहा। अन्तमें सूर्य्योदयका समय सन्निकट देखकर, कृष्णने रास-लीला समाप्त की। इसके वाद गोपियोंने यमुनामें स्नान किया और प्रसन्नता पूर्व्वक, आपसमें कृष्णकी चर्चा करती हुईं, अपने अपने घर गईं।

२१

राधा और कृष्ण.

अपनी बाल्यावस्थामें, एक दिन श्रीकृष्ण अपने सहचरोंके साथ, यमुना किनारे गायें चरा रहे थे। इतनेमें उनकी दृष्टि एक रूपवती बालिकापर जा पड़ी। वह छोटीसो भोली-भाली बालिका, यमुना नहाकर अपने घरकी ओर जा रही थी। उसका अपूर्व लावण्य देखकर कृष्णके मनमें बड़ा कुतूहल उत्पन्न हुआ। उन्होंने उसके पास जाकर बड़े प्रेमसे पूछा,—"तू कौन है? कहाँ रहती है?"

बालिकाने कहा,—"मेरा नाम राधिका या राधा है।* मैं पासके बरसाना गाँवमें रहती हूँ।"

---

*राधाका हाल हमने ब्रह्मवैवर्त पुराणके आधारपर लिखा है। क्योंकि विष्णुपुराण, हरिवंश, महाभारत और श्रीमद्भागवतमें राधाका कोई जिक्र नहीं है। पाश्चात्य विद्वानोंके मतानुसार ब्रह्मवैवर्त पुराण उपर्युक्त पुराण-ग्रन्थोंकी तरह प्राचीन नहीं है। उसकी भाषा तथा रचनाशैली देखनेसे मालूम होता है, कि उसे किसी वैष्णव सम्प्रदायवालेने तान्त्रिक मतके प्रचारके बाद, नवीन वैष्णव धर्मको सृष्टिके लिये रचा है। स्वर्गीय बङ्किमचन्द्रजी चटर्जीके मतानुसार पुराना ब्रह्मवैवर्त कहीं विलुप्त हो गया है। आजकल जो ग्रन्थ ब्रह्मवैवर्तके नामसे प्रचलित है वह प्राचीन नहीं

कृष्ण,—तेरे पिता माता कौन हैं।

राधा,—मेरे पिताका नाम वृषभानजी और माताका नाम कीर्ति है।

कृष्ण,—इधर क्यों आई थी?

राधा,—यमुना नहाने आई थी, अब घर जाती हूँ।

है। ब्रह्मवैवर्तकी अर्वाचीनताके कारण कुछ लोगोंको रायमें राधा कोई थी ही नहीं। उसकी कथा केवल वैष्णवोंकी कपोल-कल्पना है। क्योंकि यदि राधा होती और कृष्णसे उसका इतना घनिष्ट सम्बन्ध होता, तो विष्णु पुराण आदि—विशेषतः श्रीमद्भागवतमें उसका अवश्य उल्लेख होता।

ब्रह्मवैवर्तके मतानुसार श्रीकृष्ण ही जगन्नियन्ता परब्रह्म हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि उन्हींके बनाये हुए हैं। उनका निवासस्थान गोलोक है। गोलोककी शोभा-सम्पद् विष्णुके वैकुण्ठ और इन्द्रकी अमरावतीसे बहुत बढ़ी-चढ़ी है। श्रीकृष्ण वहां सोलह हजार गोपियोंके साथ विहार किया करते हैं। उनमें सर्वप्रधाना राधिका हैं। पृथ्वीका भार उतारनेके कारण ही कृष्णको अवतार लेना पड़ा था। इसके अतिरिक्त उनके अवतार लेनेका एक और भी कारण है। एक बार श्रीकृष्ण अपने गोलोक धाममें विरजा नाम्नी किसी गोपिकाके साथ विहार कर रहे थे। इसकी खबर राधाको लग गई। उसने कृष्ण और विरजाको पकड़नेका विचार किया। जिस महलके भीतर कृष्ण विरजाके साथ मौजूद थे, उसके द्वारपर श्रीदाम नामक द्वारपाल बैठा था। उसने राधाको किसी तरह भीतर नहीं जाने दिया। इससे क्रुद्ध होकर राधाने उसे शाप दिया, कि तूम राक्षस हो जायगा। श्रीदामने राधाको शाप दिया, कि तुम मानवी हो जाओगी और कलङ्किनी कहलाओगी। इधर राधाके आनेकी खबर पाकर, विरजाको बड़ा भय उत्पन्न हुआ। वह डरकर

कृष्ण,—मैंने तो तुझे कभी नहीं देखा था ! तू बड़ी अच्छी है। मेरा जी तेरे साथ खेलनेको चाहता है। क्या तू मेरे साथ खेलने आयेगी ?

राधा,—मैं अपनी सखियोंके साथ घरहीपर खेला करती हूँ, कभी बाहर नहीं आती—इसीसे तुमने मुझे न देखा होगा। अब मैं तुम्हारे साथ खेलने आया करूँगी।

कृष्ण,—तू मुझे जानती है ?

नदी हो गई ! परन्तु कृष्णाने बड़ी मुशकिलसे उसे पुनर्ज्जीवन प्रदान किया। श्रीकृष्णाके इस अवैध आचरणसे नाराज होकर राधिकाने उन्हें भी शाप दिया, कि तुम मनुष्य होकर पृथ्वीपर वास करोगे। बस, राधा और कृष्णाके मनुष्य होनेका यही कारण था। ब्रह्मवैवर्त्तमें यह भी लिखा है, कि राधिका श्रीकृष्णाकी विवाहिता स्त्री थीं। स्वयं ब्रह्माजीने एक दिन वृन्दावन आकर गुप्त रीतिसे यह पवित्र-प्रणाय-कार्य्य सम्पादन कराया था। परन्तु यह बात कोई जानता न था।

ब्रह्म वैवर्त्तमें यह भी लिखा है, कि श्रीकृष्णा परम पुरुष और राधा उनकी मूल प्रकृति हैं। ये ही इस सृष्टिके कारण हैं।

मौलाना हसन निजामी दहलवीने अपनी 'कृष्ण बीती' नामी किताबमें लिखा है, राधाजी मेरे खयालमें कोई औरत न थीं, जैसा कि आम तौर पर इनको गोपियोंमें तसव्वर किया जाता है। बल्कि राधा श्रीकृष्णाजीके जज़बयेइश्क़ का सफ़ाती नाम है। चूंकि हिन्दू जज़बात व सफ़ातकी तसवीरें बनाया करते थे इस वास्ते उन्होंने कैफइश्क का जिसके मज़हब (जाहिर करनेवाले) श्रीकृष्णा थे राधा नाम रख दिया और इसकी मूरत (मूर्त्ति) भी बना डाली।

राधा,—हाँ, जानती हूँ। तुम नन्दजीके बेटा कृष्ण हो। सुना है, कि तुम ग्वालिनोंका दही-मक्खन चुराकर खा जाते हो।

कृष्ण,—मैंने तेरा तो कुछ नहीं चुराया है? तू मेरे साथ खेलने आया करेगी या नहीं, बता?

राधा,—हाँ, आया करूंगी।

इस परिचयके बादसेही राधा प्रतिदिन कृष्णके साथ खेलनेके लिये आने लगी। उमरके साथ-साथ राधा और कृष्णका बाल्य-प्रेम भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। यहां तक, कि किशोरावस्था आने-पर वह प्रणयमें परिणत हो गया। अब राधा और कृष्ण छिपकर, एक दूसरेसे मिलने-जुलने लगे। धीरे-धीरे ललिता, विशाखा और चन्द्रावती आदि राधाकी समवयस्काओंको इस गुप्त प्रणयका पता लग गया। उन्होंने राधाको समझानेकी चेष्टाकी, परन्तु कुछ फल न हुआ। राधाने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया, कि कृष्णसे मेरा आन्तरिक प्रेम है। मैं किसी तरह उन्हें नहीं छोड़ सकती। कृष्ण ही मेरे सर्वस्व हैं। मैं उनके बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। मुझे किसीकी निन्दा-स्तुतिकी कोई परवाह नहीं है! लोग चाहे मुझे भला कहें या बुरा! मैं इसकी चिन्ता नहीं करती! मैं उनके लिये घर-द्वार, माता-पिता और भाई-बन्धु, सबको छोड़ सकती हूँ। जिस हृदय सिंहा-सनपर वंशीधर श्री कृष्णकी सांवली मूर्त्ति स्थापित हो चुकी है, उसपर अब दूसरी मूर्त्ति स्थापित नहीं हो सकती। प्यारी सखियो! तुम्हारा उपदेश, तुम्हारी सलाह निष्फल है। तुम्हारी

राधा श्रीकृष्णकी हो चुकी है, अब दूसरेकी नहीं हो सकती। राधाका दृढ़ उत्तर सुनकर, सहेलियाँ उसके प्रेमकी सराहना करने लगीं।

कृष्ण भी राधाको बहुत चाहते थे। वे किसी न किसी तरह प्रतिदिन एकबार राधासे अवश्य मिला करते थे। जब कभी वह कृत्रिम कोपकर रूठ बैठती थी, तब उसे प्रसन्न करनेके लिये तरह-तरहका आयोजन किया करते थे तथा राधाको मना देनेके लिये उसकी सहचरियोंकी चिरौरी किया करते थे। कभी कभी राधाको प्रसन्न करनेके लिये, स्वयं स्त्रीका वेष बनाकर उसके पास जाया करते थे। इस तरह वे कभी राधाको चिढ़ाते, कभी मनाते, कभी खुशामद करते और कभी स्वयं रूठ जाते थे। जबतक कृष्ण वृन्दावनमें नन्द जीके यहाँ रहे, तबतक राधासे उनका प्रणय सम्बन्ध बना रहा।

२२
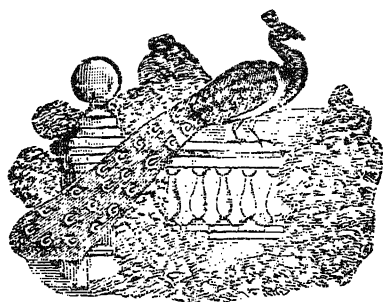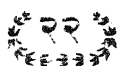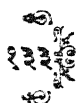
कंसकी मन्त्रणा

श्रीकृष्ण और बलरामके असीम शौर्य्य-वीर्य्यकी कथा, वृन्दावनकी सीमा अतिक्रमकर, दूर-दूर-तक फैल गई। उनके अद्भुत कर्म्मोंकी कथा सुनकर, लोगोंको विश्वास हो गया था, कि इन बालकोंमें अवश्यही कोई दैवीशक्ति है। साधारण गोपकुमारोंमें इतना साहस और शक्ति कहाँसे आई? कहीं-कहीं यह भी अफवाह फैली, कि बलराम और कृष्ण वसुदेवके ही पुत्र हैं। धीरे-धीरे यह अफवाह कंसके कानोंतक पहुँची। उसके मनमें तो कृष्णके सम्बन्धमें, पहलेसे ही सन्देह बना था। इसलिये इस अफवाहपर उसे पूर्ण विश्वास हो गया। इतनेमें एक दिन नारदजी भी आ पहुँचे और उन्होंने साफ-साफ शब्दोंमें कह दिया, कि श्रीकृष्णही देवकीकी आठवीं सन्तान हैं। इसके बदलेमें जो बालिका तुम्हारे सामने लाई गई थी, वह नन्दकी पुत्री थी।

नारदजीके मुँहसे यह वृत्तान्त सुनकर, कंस विशेष चिन्तित और भयभीत हुआ और उसी समय केशी तथा व्योम नामक दो

कहा, किसी सुदक्ष सेनापतिकी अध्यक्षतामें एक सेना भेजकर, गोकुलपर चढ़ाई कर दी जाये और कृष्ण बलरामके साथ ही समस्त गोप-वंशका ही ध्वंस कर डाला जाये। किसीने कहा, कुछ चतुर अनुचरोंको भेजकर, दोनों लड़के पकड़ मँगाये जायें और यहाँ लाकर कत्ल कर दिये जायें। किसीने कहा, इतना झमेला करनेकी कोई आवश्यकता नहीं, कुछ लोग जायँ और गुप्तरूपसे कृष्ण और बलरामको मार डालें।

परन्तु कंसने इनमेंसे किसीकी भी युक्तिको पसन्द न किया। उसने कहा,—"समस्त यदुवंशियोंको मालूम हो गया है, कि कृष्ण और बलराम वसुदेवके लड़के हैं। ऐसी दशामें यदि उनके विरुद्ध खुल्लमखुल्ला कोई कार्रवाई की जायेगी, तो प्रजा बिगड़ उठेगी। उस समय बड़े सङ्कटका सामना करना पड़ेगा। इसलिये कोई ऐसी युक्ति निकाली जाये, जिसमें कि किसीको हमलोगोंकी दुरभिसन्धिकी ख़बर भी न हो और शत्रुका काम भी तमाम हो जाये। प्रजाको असन्तुष्ट कर, कृष्ण और बलरामको मारडालना युक्ति सङ्गत नहीं है। क्योंकि वसुदेवकी सन्तान होनेके कारण, उनके प्रति यदुवंशियोंकी सहानुभूति स्वाभाविक है। इसलिये यह अनुमान करलेना अनुचित न होगा, कि यदि प्रकट रूपसे कोई कार्रवाई की जायेगी, तो प्रजा उन्हींका पक्ष लेगी।"

बड़े तर्क-वितर्कके बाद तय हुआ, कि वार्षिक मल्लयुद्धका समय सन्निकट है। इसी अवसरपर नन्द आदिको निमन्त्रण

भेजा जाय और उनके साथ कृष्ण और बलराम भी बुलाये जायं। यहाँ आनेपर किसी न किसी युक्तिसे, वे मार डाले जायं।

परामर्श हो जानेपर, कंसने अक्रूरको बुलाकर, नन्दके साथ कृष्ण और बलरामको लानेके लिये भेजा। अक्रूर प्रतिष्ठित यदुवंशी थे। राजा कंसके दरबारमें उनकी बड़ी क़द्र थी। साथ ही मथुराकी प्रजाका भी उनपर विश्वास था। इसीसे बुद्धिमान कंसने श्रीकृष्णको बुलानेके लिये, अक्रूरको ही भेजना उचित समझा। वह जानता था, कि अक्रूरके जानेसे किसीके मनमें कोई सन्देह न होगा।

अक्रूरने यथासमय वृन्दावन पहुँचकर, नन्दजीको राजा कंसका पैग़ाम सुनाया। यह खबर सुनकर कृष्ण और बलराम तो अत्यन्त प्रसन्न हुए, परन्तु नन्द आदिको बड़ी चिन्ता हुई। मालूम नहीं, कुटिल हृदय कंस, किस अभिप्रायसे कृष्ण और बलरामको बुलाता है। निश्चय ही उसकी नीयत खराब है। परन्तु उपाय क्या है? इस समय यदि उसकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया जाये, तो अवश्य ही अत्यन्त कुपित होगा। अस्तु, ईश्वरपर भरोसा कर, राजा कंसका निमन्त्रण स्वीकार करना ही नन्द आदिने उचित समझा।

कंसकी क्रूरताका हाल श्रीकृष्ण और बलरामसे छिपा न था। वे पहलेसे ही सब हाल जानते थे और मथुरा जाकर पापी कंसको उसके कर्मोंका प्रतिफल प्रदान करनेका अवसर

ढूंढ़ रहे थे। अक्रूरने भी कंसकी बदनीयती छिपाकर, निर्दोष लड़कोंको धोखा देना उचित न समझा। उन्होंने साफ़-साफ़ बता दिया, कि कंसने तुमलोगोंका प्राण लेनेके लिये ही बुला भेजा है। मल्लयुद्ध देखनेका निमन्त्रण एक बहाना मात्र है।

अक्रूरका निष्कपट भाव देखकर, श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"आप किसी बातकी चिन्ता न कीजिये। कंसके पापका घड़ा परिपूर्ण हो चुका है; यथेष्ट अधर्म कर चुका है, अब वह अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकेगा।"

इसके बाद उन्होंने नन्दजीके पास जाकर कहा, कि राजाने निमन्त्रण भेजा है। अतः हमलोगोंको अवश्य ही मथुरा जाना चाहिये। कृष्णके परामर्शानुसार नन्दजी सदलबल मथुरा जानेकी तैयारी करने लगे। राजा कंसको नज़र देनेके लिये, घृत और मक्खनके घड़े भरकर रखे गये। सवारीके लिये गाड़ियाँ सजाई जाने लगीं तथा अन्यान्य हित-मित्रोंके लिये भी सौगात आदिका प्रबन्ध होने लगा।

कृष्णके मथुरा जानेका समाचार, समस्त गोकुलमें फैल गया। इससे गोप-गोपियोंको अत्यन्त चिन्ता होने लगी। कृष्णने अपने प्रेमपूर्ण व्यवहारोंके कारण, गोकुल-वासियोंके हृदयोंमें घर बना लिया था। इधर कंसकी निष्ठुरता भी उनसे छिपी न थी। इसके सिवा उन्हें यह भी खबर लग गई थी, कि कृष्ण और बलराम वसुदेवजीके पुत्र हैं। इसलिये मथुरा जानेपर फिर ये गोकुल आवेंगे या नहीं, इसमें भी सन्देह है। इस

लिये गोपियोंको बड़ी चिन्ता होने लगी। प्यारे कृष्णके भावी वियोगका स्मरणकर, उनका चित्त व्याकुल होने लगा। वे अपने सरल-स्वभावके अनुसार तरह-तहरकी बातें सोचने लगे। कोई कंसकी निष्ठुरताकी चर्चा करने लगा, कोई अक्रूरको 'क्रूर' कहकर कोसने लगा, कोई कंसका निमन्त्रण स्वीकार करनेके लिये नन्दजीको दोषी बनाने लगा और कोई कृष्ण-वियोगका सारा दोष विधाताके मत्थे मढ़ने लगा।

[उत्तरार्द्ध]

१
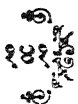
कृष्णका मथुरा-दर्शन

कल चतुर्दशी है। मल्लयुद्धके लिये केवल एक दिन बाकी रह गया है। मथुरावासी बड़ी उत्सुकता पूर्व्वक समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। दूर-दूरसे दलके दल दर्शक, दंगल देखनेके लिये आये हैं। कारण यह है, कि आर्य्यावर्तके विख्यात पहलवान, चाणूर और मुष्टिक भी कुश्ती लड़ने वाले हैं। राजा कंसने उपयुक्त स्थानपर एक विशाल मण्डपमें सुन्दर अखाड़ा बनवाया है। अखाड़ेके निकट ही राजाके बैठनेके लिये एक सुन्दर मञ्च बना है। उसकी एक ओर राज-महिषियों तथा सम्भ्रान्त पुर-महिलाओंके बैठनेका स्थान है और दूसरी ओर मन्त्रियों तथा सामन्तोंके बैठनेके लिये बहुतसे छोटे-बड़े मञ्च बने हैं। निमन्त्रित व्यक्तियों और दर्शकोंके बैठनेके लिये, उनकी पदमर्य्यादाके अनुसार अलग-अलग स्थान बने हैं। समागत व्यक्तियों और दर्शकोंकी सुविधाका विशेष खयाल किया गया है। रंग-विरंगके झालरों, ध्वजाओं और पताकाओं द्वारा मण्डप सजाया गया है। मण्डपकी चारों

ओर चार वृहत् तोरण-द्वार बने हैं। इन द्वारोंकी शोभा और सजा-वटका वर्णन करना, बड़ा कठिन काम है। महाराज कंसके आज्ञा-नुसार बड़े निपुण कारीगरों द्वारा यह मण्डप बनवाया गया है।

कृष्ण-बलराम अपनी गोपमण्डलीके साथ, इससे पहले ही मथुरा पहुँच गये हैं। आज वे नगरके परिदर्शनके लिये निकल-नेवाले हैं। राजपथोंमें दर्शकोंकी अपार भीड़ लगी है। लोग बड़ी उत्सुकता पूर्व्वक कृष्णको देखनेके लिये खड़े हैं। शान्ति-रक्षक सिपाही कंसके भृत्य होनेपर भी, बड़ी नम्रता और भद्रता पूर्व्वक शान्ति-रक्षा कर रहे हैं। स्त्रियां अपनी-अपनी अटारियोंपर बैठी हुईं, अद्भुत गोपकुमारोंके आनेकी बाट जोह रही हैं। जहां सुनिये वहीं कृष्ण और बलरामकी चर्चा हो रही है।

कुछ दूरपर अपनी गोपमण्डलीके साथ कृष्ण और बलराम दीख पड़े। एक साथ ही लाखों समुत्सुक आँखें उनकी ओर दौड़ गईं। प्रकृतिकी गोदमें पले हुए वसुदेवके पुत्रोंकी अनुपम शोभा देखकर, मथुरावासी विमुग्ध हो गये। मत्त गजेन्द्र तुल्य विक्रमशाली कमलाक्ष कृष्ण और बलदेवकी युवक मूर्त्ति देखकर, दर्शकोंके मनमें एक साथ ही प्रेम और भक्तिका सञ्चार हो आया। आँखों और कानोंका विवाद मिट गया। दोनों कुमारोंकी कमनीय कान्ति, क्षत्रियोचित निर्भीकता और स्वाभाविक प्रसन्न-ताने सिद्ध कर दिया, कि ये अवश्य ही वसुदेवके ही पुत्र हैं। साधारण गोपकुमारोंमें यह अद्भुत रूप, बल और तेज कहाँ? अहा, दुरात्मा कंस इन्हीं अमूल्य नर-रत्नोंको नष्ट करनेके लिये, कितने

धोबीका ऊटपटांग उत्तर सुनकर कृष्णको बड़ा क्रोध हुआ। इधर धोबी भी अपनी ढिठाईसे बाज न आया। अन्तमें विवाद यहांतक बढ़ा, कि श्रीकृष्णने उसे पटककर मार ही डाला! यह देख, उसके साथी कपड़ोंकी गठरियां फेंक, प्राण लेकर घरकी ओर भागे। कृष्णने सब वस्त्र गोपोंको लुटा दिया।

गर्वित धोबीका गर्व चूर्ण कर, कृष्ण आगे बढ़े और विविध राजपथोंमें भ्रमण करते हुए मथुराकी सैर करने लगे। रास्तेमें एक कोरीने कुछ वस्त्र और एक मालीने फूलोंकी मालाएँ लाकर, कृष्ण-बलरामकी सेवामें अर्पण कीं। कोरी और मालीका विशेष आग्रह देखकर, कृष्णने कृतज्ञता पूर्व्वक उनका प्रेमोपहार ग्रहण किया।

राजमहलके पास पहुँच, उन्होंने एक अत्यन्त रूपवती किन्तु कुबड़ी स्त्रीको देखा। उसका विचित्र कुण्ड देखकर कृष्णके साथी हँस पड़े। परन्तु कृष्णको उसपर बड़ी दया आई। उन्होंने उसे निकट बुलाकर, उसका नाम-धाम आदि पूछा। वह सुन्दरी कूबड़ी राजा कंसकी दासी थी। हाल-चाल पूछकर श्रीकृष्णने अपने दैवबल द्वारा उसका कूबड़ सीधाकर दिया। (१)*

श्रीकृष्णका अपूर्व्व रूप देखकर, वह कूबड़ी उनपर अत्यन्त मोहित हो गई। उसकी स्पर्द्धा देखकर कृष्ण हँस पड़े (२)

---

(१) आजकल इस बातपर बहुत लोग विश्वास नहीं करते।

(२) कूबड़ीकी कहानी हमने विष्णुपुराणके आधारपर लिखी है। श्रीमद्भागवतमें और ब्रह्मवैवर्त्तके अनुसार कृष्णने उसे पटरानी बना लिया था।

तरह तरहकी अपूर्व्व वस्तुएँ देखते हुए, कृष्ण और बलराम एक विशाल मन्दिरके पास पहुँचे। पूछनेपर मालूम हुआ, कि इस मन्दिरमें किसी देवताकी मूर्त्ति नहीं, वरं एक बड़ासा धनुष रखा है। यह सुनकर उनका कुतूहल और भी बढ़ गया। उन्होंने मन्दिरमें जाकर उस धनुषको देखा तथा हाथसे उठाकर उसकी परीक्षा करने लगे। धनुषके रक्षकोंने बहुत समझाया, कि इस असाधारण धनुषको कोई व्यवहार नहीं करता। यह केवल पूजा करनेके निमित्त यहां रखा गया है। परन्तु कृष्ण यह इतराज़ क्यों सुनने लगे। उन्होंने धनुषपर रौंदा चढ़ाकर ऐसा झटका दिया, कि उसके दो टुकड़े हो गये। इसपर पुजारी तथा धनुषके रक्षक बिगड़कर मारपीट करनेपर उतारू हो गये। परन्तु कृष्ण और बलराम आदिके सामने ठहर न सके। इन दोनों वीरोंने क्षण भरमें उन्हें मारकर भगा दिया।

इसके उपरान्त दर्शनीय स्थानोंको देखते-भालते सन्ध्या समय वे अपने निवस स्थानपर लौट आये।

दंगल.
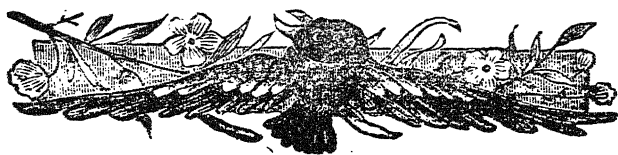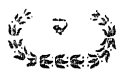
श्रीकृष्ण और बलराम द्वारा धनुष भङ्ग आदिकी खबर-पाकर, कंसकी चिन्ता यहांतक बढ़ी, कि उसे नींद न आई। सारी रात करवटें बदलता और उन्हें मार-डालनेकी तदबीरें सोचता रह गया। प्रातःकाल होते ही दंगलकी तैयारी आरम्भ हुई। देखते-देखते विशालमण्डप दर्शकोंसे परिपूर्ण हो गया। राजा कंस भी अपने मन्त्रियों सहित आकर अपने निर्दिष्ट स्थानपर बैठ गया। अमीर-उमरा, सरदार-सामन्त अपने-अपने स्थानोंपर आकर बैठ गये। वसुदेव और देवकी भी अपने भाग्यको कोसते हुए, उदास भावसे आकर यथास्थान बैठ गये। उस समय उनके मनकी जो अवस्था थी, उसका वर्णन नहीं हो सकता। नाना प्रकारकी आशंकाओंसे उनका चित्त व्याकुल हो रहा था। आज उनकी बहुत दिनोंकी पोषित आशालता मुरझा रही थी। जिस प्यारे पुत्रको बचानेके लिये उन्होंने भादोंकी अन्धेरी उस रातमें, उमड़ी हुई यमुनाकी परवाह न की थी और जानपर खेलकर, उसे मथुरासे गोकुल पहुँचाया

था और इतने दिनोंतक उसे छिपा रखा था ; उसीकी आज न जाने क्या दशा होनेवाली है ! कौन जानता है, कि कुटिल हृदय कंसने क्या सोच कर, इन दोनों बालकोंको बुलाया है ! वसुदेव और देवकी इस तरह सोच रहे थे, इतनेमें कृष्ण और बलराम गोपमण्डलीके साथ आ पहुँचे।

कंसने पहले ही निश्चय कर लिया था, कि जब कृष्ण मण्डपमें प्रवेश करने लगें, तब उनके ऊपर कुवलियापीड़ नामक मतवाला हाथी छोड़ दिया जाये और जनतामें प्रचारित कर दिया जाये, कि हाथीने स्वयं बिगड़कर उन्हें कुचल डाला है। जिस समय कृष्ण मण्डप-द्वारके पास पहुँचे, उसी समय महावतका इशारा पाकर, हाथी भी विकट-चिंघाड़ मारता हुआ दौड़ा। हठात् हाथीका बिगड़ना देखकर लोग घबरा गये, चारों ओर विषम खलबली मच गई। लोग अपनी-अपनी जानें बचानेके लिये इधर-उधर भागने लगे। हाथी झूमता हुआ कृष्ण और बलरामकी ओर झपटा। देखनेवाले "हाय ! हाय !" कहकर चिल्ला उठे। वसुदेव और देवकी पत्थरकी मूर्त्तिकी भांति बाह्यज्ञान विहीन होकर बैठे रह गये। नन्द और गोपगण बेतरह रो पड़े। परन्तु कृष्ण और बलराम निडर भावसे खड़े रहे। मानों दो सिंह, उन्मत्त गजराजके समीप आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। गोपमण्डली भी अपनी लाठियाँ, तलवारें और बर्छे लेकर डट गई। जब हाथी समीप आया, तब कृष्ण और बलराम क्षुधितसिंहकी भांति उसपर टूट पड़े और अपने विषम अस्त्राघातोंसे उसे व्याकुल करने लगे।

हाथी बार बार चिंघाड़ें मारता हुआ, इधरसे उधर भागने लगा। यहां तक, कि महावतके बार बार उत्तेजित करनेपर भी वह आगे न बढ़ा। इधर इन दोनों महावीरोंने उसका शरीर क्षत-विक्षत कर दिया। बेचारा हाथी अपनी जान लेकर भाग खड़ा हुआ और अन्तमें गिरकर मर गया। कृष्ण और बलरामका विचित्र साहस और अपूर्व अस्त्र—कौशल देखकर, लोग दंग रह गये। चारों ओरसे लोग उनकी बहादुरीकी प्रशंसा करने लगे। वसुदेव और देवकीके चेहरेपर प्रसन्नता दिखाई देने लगी। नन्दजीने दौड़कर दोनों बच्चोंको छातीसे लगा लिया। कंसका चेहरा फक् हो गया। मानों रही सही आशा भी जाती रही। साथ ही साथ कृष्ण और बलराम उसे कालकी भांति विकराल दिखाई देने लगे।

थोड़ो देरके बाद फिर चारों ओर शान्ति हुई। नन्दजीने राजाके सामने जाकर अभिवादन किया और नजराना पेश किया। इसके बाद अपने निर्दिष्ट स्थानपर जाकर बैठ गये। समयोचित बाजोंके साथ पहला जोड़ छोड़ा गया। कुश्ती होने लगी। एक पर एक कई जोड़ छोड़े गये और अपना अपना दाँव-पेच दिखाकर वाह-वाही पाने लगे। इस तरह कई पहलवानोंकी कुश्ती हो जानेपर, चाणूर नामक एक नामी पहलवान कृष्ण और बलदेवके निकट आकर कहने लगा,—"राजाने तुमलोगोंके बल-बिक्रमका हाल सुना है। वे तुम्हारे बाहुबलकी परीक्षा लिया चाहते हैं। राजाकी आज्ञाका पालन करना प्रजाका धर्म है। इसलिये तुम

मेरे साथ कुश्ती लड़कर राजाको प्रसन्न करो और बलराम मुष्टिकके साथ लड़ें। मैंने सुना है, कि तुमने वृन्दावनमें गायें चराते हुए, अपने गोपबन्धुओंके साथ खूब कुश्ती लड़ी है तथा दाँव भी अच्छा जानते हो। तुम्हारा शरीर देखनेसे भी मालूम होता है, कि तुम अच्छे लड़नेवाले हो। इसलिये तुम्हारे साथ दो हाथ लड़नेकी मेरी भी बड़ी इच्छा होती है।

कृष्णने हँसते हुए कहा—"हमलोग वनचर बालक हैं। लड़ना-भिड़ना क्या जानें। भोजपति कंसजीका यह अनुग्रह है, कि हमें कुश्ती लड़नेका आदेश दे रहे हैं। उनकी आज्ञा शिरोधार्य्य कर, हम बड़ी प्रसन्नतासे लड़नेको प्रस्तुत हैं। परन्तु हम लड़के हैं, हमारा जोड़ भी हमारे उपयुक्त ही होना चाहिये।"

चाणूर—इतने बड़े हट्टेकट्टे नवजवान होकर, लड़के क्यों बनते हो? इससे तो मालूम होता है, कि टाल-मटोल कर रहे हो।

कृष्ण—खैर, कोई हर्ज नहीं। तुममेंसे जिसकी इच्छा हो प्रसन्नता पूर्व्वक आकर हमसे लड़ सकता है।

यह कहकर, दोनों भाई कुश्ती लड़नेके लिये तैयार हो गये। कंस मनही-मन प्रसन्न हुआ। उसे विश्वास था, कि चाणूर और मुष्टिक अवश्य ही कृष्ण और बलरामको निहत कर सकेंगे। परन्तु जनताको यह विषम जोड़ अच्छा नहीं लगा। एक ओर हाथीकी भाँति विशाल शरीरवाले दो पहलवान और दूसरी ओर कोमल अङ्गवाले कृष्ण और बलराम! जनता राजा कंसके

इस अधर्मपूर्ण कार्य्यकी निन्दा करने लगी। सभामें बड़े-बड़े विद्वान और बुद्धिमान मौजूद हैं, परन्तु कोई इस अनुचित कार्य्यका प्रतिवाद नहीं करता; यह और भी आश्चर्य्यकी बात है! मालूम होता है, कि राजा इन नवयुवकोंका प्राण लेनेके लिये ही, इन्हें चाणूर और मुष्टिकसे लड़ाना चाहता है! इस तरहकी बातें सोचकर, जनता अत्यन्त उद्विग्न होने लगी। परन्तु जो लोग धर्म और अधर्मपर विश्वास रखते थे, उन्हें पूरी आशा थी, कि कृष्ण और बलराम अवश्य ही विजयी होंगे। क्योंकि अधर्म और अन्यायकी सदैव हार हुआ करती है। अन्यायीको ईश्वर अवश्य ही कठोर दण्ड देता है। मालूम होता है, कि अभिमानी कंसका गर्व, खर्व करनेके लिये, परमात्माने इन दोनों युवकोंको यहाँ भेजा है। देखो, दोनों युवक सिंहकी भाँति चाणूर और मुष्टिककी ओर देख रहे हैं। उनके चेहरेसे कैसी वीरता और निर्द्वन्दता टपक रही है!

इस तरह आपसमें तर्क-वितर्क करती हुई, जनता इस मल्ल युद्धका परिणाम देखनेके लिये उत्सुक होने लगी।

३
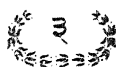
कंसकी मृत्यु

जिस तरह सिंह-शावक मदमत्त गजराजपर आक्रमण करता है, उसी तरह कृष्ण और बलराम भी चाणूर और मुष्टिकपर टूट पड़े। कुश्ती होने लगी। एक दूसरेको धराशायी करनेके लिये, नाना प्रकारके दाँव-पेच लगाने लगे। चाणूर और मुष्टिक जो पेंच लगाने लगे, कृष्ण और बलराम अनायास ही उसका प्रतिकार कर अपना बचाव करने लगे। बड़ी देरतक युद्ध होता रहा। चाणूर और मुष्टिककी समझमें आ गया, कि ये दोनों युवक साधारण गोप-कुमार नहीं हैं। कुश्तीका कोई दाँव-पेच ऐसा नहीं, जिसका प्रतिकार इन्हें मालूम न हो। इन दोनों युवकोंका शरीर देखनेमें तो अत्यन्त कोमल मालूम होता है, परन्तु वास्तवमें वज्रकी तरह कठोर है। चाणूर और मुष्टिक अपने असीमबल और कौशल द्वारा कितने ही विख्यात पहलवानोंको पछाड़ चुके हैं। परन्तु आजतक उन्हें इस तरहके लड़नेवाले नहीं मिले थे। न्याय युद्ध द्वारा कृष्ण और बलरामको परास्त करना, दुस्साध्य समझ

कर चाणूर और मुष्टिकने घुस्सों और मुक्कोंसे मारना आरम्भ किया। कृष्ण और बलरामने भी जवाब दिया। दोनों ओरसे भीषण घुस्सेबाजी होने लगी। एक दूसरेकी चोट बचाता हुआ, मरमस्थल ताककर घुस्सा मारने लगा। चाणूर और मुष्टिककी यह युक्ति भी खाली गई। घुस्सेबाजीमें भी दोनों भाई चौकस निकले।

बड़ी देरतक मारपीट होनेके बाद, कृष्ण चाणूरको पछाड़ कर उसकी छातीपर चढ़ बैठे। उसी तरह बलरामने भी मुष्टिकको धर दबाया। यह देख सभामें आनन्द-कोलाहल मच गया। चारों ओर कृष्ण और बलरामकी प्रशंसा होने लगी। दोनों नवयुवकोंके भीषण आघातोंसे चाणूर और मुष्टिकके शरीर की हड्डियाँ चूर हो गई थीं। इसलिये गिर जानेपर फिर उनमें उठनेकी ताकत न रह गई! वही गिरना उनका अन्तिम गिरना हुआ!

कृष्ण और बलरामका पराक्रम देखकर, गोपमण्डली आनन्दसे अधीर होकर नाचने लगी। जनता उनके बल-विक्रमकी प्रशंसा करने लगी। नन्दजीने निकट आकर दोनों लड़कोंको छातीसे लगा लिया। वसुदेव और देवकीने मनही-मन भगवानको धन्यवाद दिया।

चाणूर और मुष्टिकका परास्त होना देखकर, कंसका चेहरा उदास हो गया। निराशाकी भीषण मूर्ति उसकी आँखोंके सामने नाचने लगी। वह मनही-मन विचार करने लगा, कि अब क्या करना चाहिये!

इतनेमें चाणूर और मुष्टिकका बदला लेनेके लिये, शल और तोशल नामक दो पहलवानोंने कृष्णपर आक्रमण किया। उस समय फिर कंसके चेहरेपर जरासी प्रसन्नता दीख पड़ी। परन्तु दैवदुर्विपाकने उसे चिरस्थायी नहीं होने दिया। बलवान नव-युवकोंके भीषण अस्त्राघातोंने शल और तोशलको भी यमपुरकी राह दिखाई।

इसपर कृष्णके साथी गोपगण और भी होहल्ला मचाने लगे। कृष्ण-बलरामकी जय-घोषका गगनभेदी निनाद मानों आकाशको विदीर्ण करने लगा। गोपोंकी हर्षध्वनिने कंसके घावपर नमकका काम किया। उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर आज्ञा दी—"इन जंगलियोंको यहाँसे अभी निकाल दो, पाजी नन्दको पकड़कर कैदकर लो तथा वसुदेव और देवकीको फौरन मार डालो। और यदि हमारे पिता उग्रसेन इस काममें बाधा उपस्थित करनेकी चेष्टा करें, तो उन्हें भी मार डालो।"

परन्तु उसकी यह आज्ञा अरण्य-रोदनकी भाँति निष्फल थी। कृष्ण और बलरामने अपना अद्भुत वीरत्व दिखाकर, कंसके अनुचरोंके हृदयोंपर ऐसा आतङ्क जमा दिया था, कि किसीको उनके विरुद्ध अङ्गुली उठानेका भी साहस न हुआ। यह अद्भुत दृश्य देखकर, कंस हैरान हो गया। उसकी समझमें नहीं आया, कि अब क्या करना चाहिये।

इधर कृष्णने इसी अवसरपर कंसका भी काम तमामकर देना उचित समझा। इसलिये तीर-वेगसे उछलकर उसके

सिंहासनपर जा पहुँचे। शत्रुको समीप देखकर, कंस भी उठकर तलवार संभालने लगा, परन्तु कृष्णने उसे इतना अवसर नहीं दिया। उन्होंने बड़ी फुर्तीसे झपटकर उसकी चोटी पकड़ ली। राज मुकुट कृष्णके चरणोंपर गिर पड़ा। चोटी कृष्णके हाथों में आ जानेसे, कंस विवश हो गया। इसके अतिरिक्त कृष्णकी असीम और अलौकिक शक्तिकी कथायें सुनकर, पहलेसे ही उसके मनमें आतङ्क छा गया था। हठात् काल समान कृष्णको देख कर, वह अत्यन्त भयभीत हो गया था। कृष्णने उसे घसीट कर सिंहासनसे नीचे गिरा दिया और कूद्कर उसकी छातीपर चढ़ बैठे। जनता काठकी पुतलियोंकी भाँति चुपचाप बैठी हुई, यह तमाशा देखने लगी। कंसने व्रजमण्डल-वासियोंपर जो घोर अत्याचार किया था, उसके कारण किसीको उससे सहानुभूति न थी। सभी मन-ही-मन उसकी निधन-कामना कर रहे थे। शायद इसीलिये इस समय किसीने उसकी सहायता न की। वरन् सभी मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न होने लगे। इधर कृष्णने उसकी छातीपर चढ़कर उसके मर्मस्थानमें घुस्से और मुक्के मारना आरम्भ किये। कृष्ण-शरीरके गुरुभार तथा घूसोंकी मारसे कंसका प्राणपखेरू, देहपिंजरको छोड़कर उड़ गया। देखते-देखते व्रजमण्डलके अत्याचारी राजसत्ताकी इति-श्री हो गई! जिसके प्रचण्ड प्रतापसे मेदिनी कांपती थी; बड़े बड़े रणधीरोंने जिसके बाहुबलका लोहा मान लिया था, बड़े बड़े बुद्धिमान जिसके सामने सिर झुकाते थे, उसे एक

सामान्य गोप-कुमारने घुस्सों और मुक्कोंसे मार डाला और जिन सहायकोंके वलपर कंस अपनेको अजेय समझता था, वे चुपचाप ताकते ही रह गये ! किसीने उसकी मददके लिये क़दम तक न वढ़ाया !! हाय विधि विड़म्बना !!!

मथुरा-वासियोंकी यह उदासीनता देखकर, कंसके सहोद-रोंको वड़ा ही क्रोध हुआ। उन्होंने कंसके अनुचरोंकी घोर निन्दा की और अपने भाईका वदला लेनेके लिये स्वयं कृष्ण और वलरामकी ओर दौड़ पड़े। यह देखकर वलरामजी अपनी गोपमण्डली सहित उनका सामना करनेके लिये डट गये। दोनों ओरसे भयङ्कर मारपीट आरम्भ हुई। परन्तु विजय लक्ष्मी कृष्ण और वलरामपर अत्यन्त प्रसन्न थी, इस समय मानों कोई शक्ति उनके सामने ठहर नहीं सकती थी। वलरामकी गोपवाहिनीने अनायास ही कंसके भाइयोंको भी धराशायीकर दिया। यह देखकर कंसके अन्यान्य हिमायती, भयभीत होकर भाग गये।

४
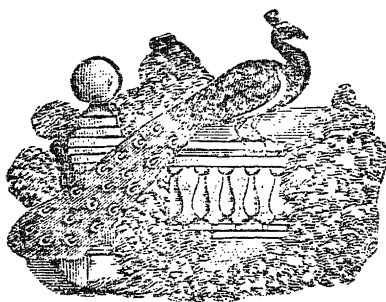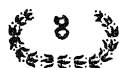
मिलन.

जब अत्याचारीके अत्याचारोंकी मात्रा अपनी सीमा-पर पहुँच जाती है, तब उसके नाशका समय उपस्थित हो जाता है। उस समय वह अपने बचावके लिये जितनी तदबीरें करता हैं, उनका फल विपरीत ही होता है। ठीक यही दशा कंसकी भी हुई। उसने कृष्ण और बल-रामको मरवानेके लिये कितनी ही तदबीरें कीं; कितने ही फरेब रचे; परन्तु कुछ फल न हुआ और अन्तमें उसकी युक्ति ही उसके विनाशका कारण हुई! जिस तरह रावणने काल-रूपिणी सीताको जानबूझकर अपने घर बुलाया था, उसी तरह कंसने भी मल्ल-युद्धके बहाने, कालरूप कृष्ण और बलरामको आमन्त्रित किया था!

अस्तु, दुरात्मा कंसने निर्दोष वसुदेव और देवकीपर जो घोर अत्याचार किये थे, उनका स्मरणकर, उसे बधकर डालनेपर भी कृष्णका क्रोध शान्त न हुआ। पुराणोंमें लिखा है, कि वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसकी लाश घसीटते हुए* यमुना किनारे ले गये।

---

* मथुरामें एक नाला है, उसे कंस नाला कहते हैं। पुराणोंमें लिखा है, कि कंसकी लाश घसीटनेके कारण ही यह नाला बन गया था।

कृष्ण-मिलन ।

अपने बिछुड़े हुए प्यारे पुत्रोंको पाकर वसुदेव और देवकीने जो आनन्द प्राप्त किया उसका वर्णन करना हम जड़ लेखनीका काम नहीं ।

राजा कंस और उसके भाइयोंकी मृत्युके कारण, समस्त रनिवासमें घोर हाहाकार मच गया। कंसकी रानियां और उसके भाइयोंकी स्त्रियां फूट-फूटकर रोने लगीं। यह कारुणिक दृश्य देखकर, कंसके पिता उग्रसेन भी रोने लगे। यद्यपि कंसने अपने जीवनकालमें उग्रसेनको बड़ा कष्ट दिया था, राजसिंहासन छीनकर, उन्हें बन्दी बना रखा था--वृद्ध उग्रसेन उसकी दुष्टतासे ऊब उठे थे, तथापि उसकी मृत्युसे उन्हें बड़ा ही शोक हुआ! वे "हा पुत्र! हा पुत्र!!" कहकर रोने लगे।

कंसकी लाश यमुना-किनारे छोड़कर, श्रीकृष्ण पुनः मल्लमण्डपकी ओर लौटे। वहां वसुदेव और देवकी अत्यन्त उत्सुकता पूर्व्वक उनकी बाट जोह रहे थे। कृष्ण और बलदेवने आकर माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। वसुदेवने सजल नयनोंसे दोनों पुत्रोंको छातीसे लगा लिया और बार-बार उनका मस्तक सूँघने लगे। इसके बाद दोनों कुमारोंने माता देवकीके चरणोंमें प्रणाम किया। देवकीने भी आनन्द-अधीर होकर, पुत्रोंको कलेजेसे लगाया और स्नेह पूर्व्वक उनके शिरोंपर हाथ फेरने लगीं। दीर्घकालके उपरान्त अपने बिछड़े हुए, प्यारे पुत्रोंको पाकर, वसुदेव और देवकीने जो आनन्द प्राप्त किया, उसका सम्यक् वर्णन करना, इस जड़ लेखनीका काम नहीं। कुछ देरके बाद आनन्द-उद्वेग शान्त होनेपर, कृष्णने कहा,—"माता-पिताकी सेवा करना पुत्रका प्रधान कर्त्तव्य है। परन्तु दुःख है, कि इतने दिनोंतक हमलोग उससे वञ्चित रहे। आप लोगोंको

हमारे कारण सुखके बदले दुःख ही अधिक हुआ, यह हमारे लिये बड़े दुर्भाग्यकी बात है! जो पुत्र उपयुक्त होकर भी, धन या शरीरसे पिता-माताकी सेवा नहीं करता, वह नर्क-गामी होता है। हमारे जीवनके इतने दिन व्यर्थ ही बीत गये। शक्तिमान होकर भी हम कंसके डरसे आप लोगोंकी सेवा नहीं कर सके। आशा है, कि हमारी परवशताका ख्यालकर आप हमें क्षमा करेंगे।"

कृष्णका कथन सुनकर, वसुदेव अत्यन्त पुलकित हुए। उन्होंने पुत्रको हृदयसे लगा लिया। उनकी आखें आनन्दाश्रुसे परिपूर्ण हो गईं। मुँहसे एक शब्द भी न निकल सका।

एक ओर अपने खोये हुए पुत्र-रत्नोंको पानेके कारण, वसुदेव और देवकीके हृदयोंमें आनन्दकी हिलोरें उठ रही थीं और दूसरी ओर पुत्र-शोक-सन्तप्त उग्रसेन और उनकी स्त्री अथाह शोक-सागरमें निमग्न हो रही थीं। एक ही समय दर्शकोंके हृदयोंमें दो विपरीत भावोंका उदय हो रहा था।

कंसके पिता-माता तथा उसकी स्त्रियोंका कातर क्रन्दन सुनकर, कृष्णका कारुणिक हृदय उमड़ आया। आँखोंसे आँसू बह चले। उन्होंने तुरन्त उग्रसेनके पास जाकर, उन्हें सान्त्वना देनेकी चेष्टा की।

कृष्णने उन्हें समझाते हुए कहा—"नानाजी, मामा कंसकी मृत्युसे आपका शोकाकुल होना स्वाभाविक ही है। परन्तु मथुरा राज्यकी प्रजाकी भलाईके लिये, उनका इस संसारसे उठ जाना

भी, अच्छा ही हुआ। उनके शासन-कालमें निरीह और निर्दोष प्रजाको जो कष्ट था, वह आपसे छिपा नहीं है। अपनी निष्ठुर प्रकृति और उद्धत स्वभावके कारण, वे सबके अप्रियपात्र बन गये थे। उन्होंने अपने कृतकर्म्मोंका ही फल पाया है। मैं तो केवल उपलक्ष मात्र हूँ। संसारमें कोई अत्याचारी राजा बहुत दिनोंतक टिक नहीं सकता। अन्तमें उसका पाप ही उसके विनाशका कारण होता है। इसके अतिरिक्त अत्याचारी राजतन्त्रका समूलोच्छेद्कर डालना, प्रजाका प्रधान कर्त्तव्य है। इसीलिये मैंने राजा कंसको निहत किया है। मैंने केवल प्रजाकी भलाईके लिये ही ऐसा किया है, किसी प्रकारके स्वार्थकी सिद्धिके लिये नहीं। अतएव आप मुझे क्षमा कीजिये और शोक छोड़कर, मृत मामाके अन्त्येष्टि सत्कारका प्रबन्ध कीजिये।"

कृष्णके विनम्र अथच पाण्डित्यपूर्ण वचनोंसे, राजा उग्रसेनको बहुत कुछ सान्त्वना प्राप्त हुई। वे धैर्य्य धारणकर पुत्रोंके श्राद्ध आदिका आयोजन करने लगे।

५

श्रीकृष्णकी उदारता.

कंस आदिका श्राद्ध-कार्य्य समाप्त हो जानेपर, सरदार-सामन्तोंने देखा, कि राज-सिंहासन सूना है। विना राजाके प्रजाकी रक्षा नहीं हो सकती। इसलिये शीघ्र ही किसी उपयुक्त व्यक्तिको राज-सिंहासनपर बैठाना चाहिये। कुछ लोगोंने श्रीकृष्णको ही राजा बनाना चाहा। क्योंकि उन्होंने कंसको मारकर, मथुरा-राज्यकी प्रजाका, विशेष उपकार किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने बाहुबल द्वारा दुष्ट कंसको मारकर, उसका राज्य जीत लिया है। इसलिये वेही उसके अधिकारी हैं। अथवा यदि वे चाहें, तो अपने पिता वसुदेवको राजा बना सकते हैं।

वास्तवमें यह कृष्णकी कठोर परीक्षाका समय था। एक ओर मथुराके राजसिंहासनका प्रलोभन; तिसपर समस्त प्रजा और सरदार-सामन्तोंका आग्रह और दूसरी ओर न्याय और धर्म्म। उदार हृदय कृष्णने न्याय और धर्म्मका ही पक्ष लिया। ऐश्वर्य्यका प्रलोभन उन्हें क्षणभरके लिये भी विचलित न कर सका। उन्होंने अत्यन्त उदारता पूर्व्वक, इस प्रस्तावको अस्वीकार

किया और उग्रसेनसे जाकर कहा,—"आप राजसिंहासन-अधिकार पूर्व्वक प्रजाका पालन करें। मथुराका राज-सिंहासन आपहीका है। आपके मौजूद रहते, किसी दूसरोंको उसका अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता।"

उग्रसेनने कहा,—"मैं बूढ़ा हुआ। इसलिये राजकाजके झमेलेमें पड़ना उचित नहीं समझता। इस समय तुम्हीं इस राज्यके उत्तराधिकारी हो। क्योंकि तुमने अपने बाहुबल द्वारा इसे विजय किया है। अतएव तुम स्वयं इस राज्यसिंहासनपर अधिकारकर प्रजाका पालन करो। तुम्हें राज-सिंहासनपर अधिष्ठित देखकर, मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।"

कृष्णने कहा—"नानाजी, मैं तो पहले ही निवेदन कर चुका हूँ, कि मैंने राज्य पानेकी लालसासे कुछ नहीं किया है। मेरा इसमें कुछ भी स्वार्थ नहीं है। दूसरी बात यह है, कि हमलोग राजा ययातिके वंशज हैं। उनके अभिशापके कारण हमारे वंशका कोई व्यक्ति राजा नहीं हो सकता। यदि मैं राजा ययातिके बचनकी अवहेलना कर, राज-सिंहासनपर अधिकार करूंगा, तो मुझे दोषका भागी बनना पड़ेगा। अतएव मुझे क्षमा कीजिये। मैं किसी तरह इस गुरुतर कार्य्यके उपयुक्त नहीं हूँ। आप स्वयं राजसिंहासनपर आरोहण करें और हमें अपना चिर सेवक समझकर कृपा बनाये रखें। यही मेरे लिये यथेष्ट है। मैं आजीवन आपके आदेशोंका पालन किया करूँगा।"

श्रीकृष्ण चन्द्रके बहुत समझाने-बुझानेपर, अन्तमें वृद्ध

उग्रसेनने मथुराका शासन-भार ग्रहण करना स्वीकारकर लिया। कृष्णका अद्भुत त्याग और धर्म्म-भीरुता देखकर, मथुरा-वासियोंने विशेष प्रसन्नता प्राप्त की। कंसको विजय करनेपर कृष्ण यदि चाहते, तो अनायास ही राजसिंहासनपर अधिकार कर सकते थे, क्योंकि न्यायतः वे उसके अधिकारी भी थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। अतएव मथुरा-वासियोंने उनके असीम शौर्य्या-वीर्य्यके साथ ही उनकी बुद्धिमत्ता और उदारताकी भी विशेष प्रशंसा की। समस्त मथुरा-मण्डलमें श्रीकृष्णके सुयशका गीत गाया जाने लगा।

यथासमय राजा उग्रसेनने राजसिंहानपर पुनः आरोहण किया। उस दिन मथुराकी प्रजाने खूब आनन्द मनाया। कंसके अत्याचारोंसे जो प्रजा मथुरा छोड़कर अन्यत्र जा बसी थी, वह फिर लौटा ली गई। कृष्णके उद्योगसे मथुरामें फिर शान्तिका राज्य स्थापित हुआ। प्रजा सुख पूर्व्वक निवास करने लगी।

६
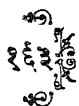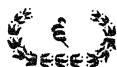
नन्दजीकी विदा.

नन्दजीको मथुरा आये कई दिन बीत चुके थे, इसलिये अब वे वृन्दावन जानेके लिये विशेष उत्सुक होने लगे। एक दिन कृष्णको अपने पास बुलाकर बोले, कि अब यहाँसे चलना चाहिये। क्योंकि तुह्मारी मातायें चिन्तित होती होंगी। अब अपने नानासे आज्ञा लेकर शीघ्र चलो। तुम्हारे बिना वृन्दावन सूना हो गया होगा। गोप-गोपियाँ प्रतिदिन तुम्हारी बाट जोहती होंगी। तुम्हारी प्यारी गायें और छोटे-छोटे बछड़े तुम्हारे बिना चरना भूल गये होंगे। इस लिये अब तुम्हारा यहाँ अधिक दिन ठहरना उचित नहीं है।

परन्तु कृष्णने कुछ दिन मथुरामें ठहरकर, अपने पिता-माताकी सेवा करनेका विचार कर लिया था; इसलिये फिर वृन्दावन लौट चलनेका प्रस्ताव सुनकर, वे बड़े पेशोपेशमें पड़े। इसके सिवा, कृष्ण यह भी समझते थे, कि उनके जीवनका उद्देश्य कुछ और ही है। आजन्म वृन्दावनमें रहकर गायें चराने से उस महत् उद्देश्यकी पूर्ति नहीं हो सकती। इधर नन्द

और यशोदाका निष्काम प्रेम भी किसी प्रकार उपेक्षनीय न था। इसीसे वृन्दावन लौटनेकी बात सुनकर, कृष्ण बड़ी दुविधामें पड़े और हठात् नन्दजीको कुछ उत्तर न दे सके।

उन्हें चुप देखकर नन्दजीने कहा,—"चुप क्यों हो ? जाओ, शीघ्र अपने नानाजीसे कहो, कि अब हम लोगोंको अपने घर जानेकी आज्ञा दीजिये। बेटा, मेरा मन घबरा रहा है। अब मुझे यहाँ एक क्षण भी ठहरना अच्छा नहीं लगता।"

यद्यपि इस समय कृष्णके सामने कठिन समस्या उपस्थित थी। वे कभी सरल हृदय नन्द और यशोदाके अलौकिक स्नेहका स्मरण करते थे, और कभी अपने चिर दुःखी पिता-माताका खयाल करते थे। परन्तु उन्होंने अधिक सोच-विचारमें ही समय नष्ट करना उचित नहीं समझा। कठिन कर्त्तव्यके कशाघातने उन्हें नन्दजीके सामने अपना उद्देश्य स्पष्ट रूपसे व्यक्त कर देनेके लिये बाध्य किया। उन्होंने अत्यन्त विनम्र स्वरसे कहा—"पिता, आज तक आपने और माता यशोदाने हमलोगोंको अपने आश्रयमें रखकर बड़ा सुख दिया है। महात्मा गर्गजीके स्पष्ट कहनेपर भी आपने यह नहीं सोचा है, कि ये लड़के हमारे नहीं है। हमलोगोंके दुर्दिनमें आशातीत सहायता प्रदानकर, आपने जो उपकार किया है, वह जन्म-जन्मान्तरमें भी याद रहेगा। मैं सहस्र जन्ममें भी आपके उपकारोंका बदला चुकानेमें समर्थ नहीं हो सकता। साथही मेरे पिता-माता भी आपके चिर ऋणी रहेंगे। क्योंकि उनके डूबते हुए वंशकी रक्षाकर, आपने उनका
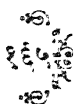
अशेष उपकार किया है। दैव-विडम्बनामें पड़कर हमारे पिता-माताने आजतक जो कष्ट सहन किया है, वह आपसे छिपा नहीं है। आपहीके अनुग्रह और दयासे उनकी विपद् दूर हुई है। अतएव आप कृपाकर हमें कुछ दिन, उनके पास रहकर, उनकी सेवा करनेकी आज्ञा दें। आप जाकर यशोदा माताको भी समझा दीजियेगा। स्नेहमयी माताने, सच्ची जननीसे भी बढ़कर, मेरा पालन किया है। निस्सन्देह मैं उनसे कभी उऋण नहीं हो सकता। लड़कपनके अल्हड़पनके कारण मैंने उन्हें सताया है। परन्तु उन्होंने मुझे प्रेमपूर्व्वक क्षमा प्रदान किया है। हाय, उस क्षमामयी, दयामयी और स्नेहमयी मातासे अलग रहनेकी बात सोचते हुए, मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। परन्तु लाचार हूँ, कठिन कर्त्तव्यके कारण, मैं उनके प्रति ऐसा निठुर व्यवहार कर रहा हूं। परन्तु आप यह निश्चय जानियेगा, कि यद्यपि प्रकट रूपसे मैं आप लोगोंसे अलग होता हूं; परन्तु अन्त:करणसे सदैव आपके निकट मौजूद रहूँगा। वृन्दावनकी गोपियोंपर मैंने घोर अत्याचार किया है। उनकी मटुकियाँ तोड़ी हैं। उनका दही-दूध नष्ट किया है, उन्हें बार बार लाञ्छित और अपमानित किया है। परन्तु उनलोगोंने मेरे समस्त उपद्रवोंको सहनकर, मुझे क्षमा किया है। उनका वह अटूट प्रेम, वह अलौकिक दया और वह निश्छल स्नेह कभी भूलनेकी वस्तु नहीं। आप उनको समझा दीजियेगा, कि कृष्ण केवल कर्त्तव्य पालन करनेके लिये तुमसे अलग

हुआ है। यद्यपि उसका शरीर तुमलोगोंसे अलग है, परन्तु मन सतत तुम्हारे पास ही है। तुम्हारे उपकारोंको—तुम्हारे प्रेम-पूर्ण व्यवहारोंको वह जीवनकी अन्तिम घड़ीतक याद रखेगा।"

कृष्णके इन निठुर वचनोंने नन्दजीको व्याकुल कर दिया। उनकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बह चली। वे प्यारे कृष्णको कलेजेसे लगाकर, फूट-फूट कर रोने लगे। निरीह नन्दजीने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था, कि कृष्ण उन्हें छोड़कर मथुरामें रह जायेंगे। यद्यपि गर्गजीने उनसे कह दिया था, कि कृष्णका जन्म पृथिवीका भार उतारनेके निमित्त हुआ है। साथ ही साथ उन्होंने यह भी सङ्केत कर दिया था, कि यह तुम्हारा पुत्र नहीं है। परन्तु सरल हृदय नन्दको वह बात याद न थी। वे कृष्णको अपना ही पुत्र समझते थे। अत्यन्त वात्सल्यताके कारण उन्होंने कभी इस बातपर विचार भी नहीं किया था, कि ये लड़के किसके हैं। इस समय कृष्णके मुँहसे उपर्युक्त बातें सुन कर उनका भ्रम दूर हो गया। परन्तु कृष्णने उन्हें जिस अटूट प्रेम-बन्धनमें बाँध लिया था, वह शिथिल नहीं हुआ। यही कारण था, कि कृष्णकी बातें सुनकर, नन्द अत्यन्त अधीर हो गये। यद्यपि उन्होंने कृष्णको वृन्दावन ले जानेका फिर आग्रह नहीं किया, परन्तु उन्हें छोड़कर जाना भी उनके लिये दुष्कर हो गया !

कृष्णकी निठुरता देखकर, श्रीदाम और सुवल आदिको भी बड़ा आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने कृष्णको वृन्दावन चलनेके लिये

बहुत समझाया: बहुत आग्रह किया, परन्तु कोई फल न हुआ। अन्तमें बाल-सहचरोंने यहांतक कह दिया, कि पितामाताकी सेवा तो एक बहाना मात्र है, वास्तवमें तुम राज्यके लोभमें पड़कर हम लोगोंसे अलग हो रहे हो। तुमने कंसको मारकर उग्रसेनको राज-गद्दीपर बैठाया है। अब उनके बाद खुद राजा बननेकी लालसासे, यहाँ रहना चाहते हो। सुन्दर वस्त्राभूषण और स्वादिष्ट भोजनके लोभमें पड़कर, तुम वृन्दावन भूले जा रहे हो, यह अच्छा नहीं करते। हमलोग तुम्हारे साथी मात्र हैं, सम्भव है, कि हमलोगोंके प्रति तुम्हारा कुछ भी कर्त्तव्य न हो, परन्तु नन्द और यशोदा, जिन्होंने तुम्हें पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है, उनके प्रति क्या तुम्हारा कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है? स्नेहमयी जननी यशोदाको भूल रहे हो! कृष्ण! वास्तवमें तुम बड़े कठोर हो! अथवा यों कहिये, कि नाम और शरीरके रंगकी भाँति तुम्हारा हृदय भी 'कृष्ण' है। यदि राजा बननेकी इच्छा है, तो चलो वृन्दावन। हम लोग तुम्हें राजा बनायेंगे। तुम्हारी आज्ञाओंका पालन करेंगे और तुम जो कहोगे, वही करेंगे।

सरल हृदय गोपकुमारोंकी भर्त्सना सुनकर, इस विषादके अवसरपर भी कृष्णको हँसी आ गई। उन्होंने सुबल और श्रीदामको गलेसे लगाकर कहा—"मेरे प्यारे साथियो, तुम्हारा सहज स्नेह—पवित्र प्रेम मैं भूला नहीं हूँ, भूलूंगा भी नहीं। तुम्हारे साथ गायें चराकर, वृन्दावनमें मैंने जो सुख पाया है,

जो अलौकिक आनन्द उठाया है, वह भी भूल नहीं सकता! वास्तवमें तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है। तुम्हें छोड़ते हुए मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। तुमसे विलग होनेकी इच्छा नहीं होती। परन्तु लाचार हूँ। यदि अब भी अपने दुःखी पिता-माताकी सेवासे वञ्चित रहूंगा, तो मुझे अधर्म होगा। अतएव तुम क्षमा करो और प्रसन्नता पूर्व्वक, मुझे अपना कर्त्तव्य पालन करनेकी अनुमति दो। परम रमणीय वृन्दावनमें, तुम्हारे साथ गायें चरानेमें, जो आनन्द प्राप्त हुआ है, उसके सामने मथुराका राज-सिंहासन कोई चीज़ नहीं है। तुम भूलकर भी न सोचना, कि मैं राज-सिंहासनके लोभमें पड़ा हूँ! माता यशोदाके दिये, मक्खन और रोटियोंमें जो स्वाद मिल चुका है, वह राजसी भोगमें नहीं मिल सकता। वह काली कमली धारण करनेमें जो शोभा थी, वह पीताम्बर और नीलाम्बरमें कहाँसे होगी! इसलिये अच्छे भोजन और वस्त्रके लोभमें आकर, मैं मथुरा रहना नहीं चाहता। प्यारे भाइयो, वृन्दावन यहाँसे बहुत दूर नहीं है। तुमलोग जब चाहोगे, तभी आकर मुझसे मिल सकोगे। इसलिये तुमलोगोंसे विनीत प्रार्थना है, कि मुझे यहाँ रहने दो और व्रजवासियोंको जाकर समझा दो, कि वे मेरे लिये चिन्ता न करें।"

इसी प्रकारकी बहुतसी बातें कहकर, कृष्णने अपने प्यारे बाल-सहचरोंको समझाया-बुझाया। इसके बाद नन्दजीको भी समझा-बुझाकर शान्त किया। कृष्णके अतिरिक्त राजा उग्रसेन

और वसुदेवने भी उन्हें समझाते हुए कहा,—"ये लड़के आपहीके हैं। क्योंकि आपने इन्हें पाला-पोसा है। ये जबतक जीते रहेंगे, तबतक कभी आपकी सेवासे मुँह न मोड़ेंगे। आप हमपर कृपा करके, इन्हें कुछ दिनके लिये यहाँ छोड़ जायें।"

बलरामजीने कहा,—"बाबा, हमलोग आपको कभी नहीं भूलेंगे और सदैव आपके पास आते-जाते रहेंगे। मथुरासे वृन्दावन केवल तीन कोसकी दूरीपर है। आप जब इच्छा करेंगे, तभी हमसे मिल सकेंगे। आप किसी बातकी चिन्ता न कीजिये।"

लोगोंके बहुत समझाने-बुझानेपर, नन्दजी कुछ शान्त हुए। इसके बाद उनके बिदाईकी तैयारी होने गली। वसुदेवजीने बहुतसा धन-रत्न और वस्त्राभूषण लाकर, भेंट स्वरूप उनके आगे रखा। राजा उग्रसेन और वसुदेव आदिके बहुत आग्रह करने-पर, नन्दजीने उन चीजोंको लेना स्वीकार किया। इसके बाद वे दोनों कुमारोंको छातीसे लगाकर, रोते हुए वृन्दावनकी ओर चले। कृष्ण, बलराम तथा वसुदेव आदिने बहुत दूरतक साथ आकर उनको पहुँचाया। सुबल और श्रीदाम आदि कतिपय गोप, कृष्णको छोड़कर किसी प्रकार भी वृन्दावन जानेके लिये तैयार न हुए। अन्तमें लाचार कृष्णने उन्हें अपने पास रख लिया।

रोते-धोते तीन कोसका रास्ता प्रायः दिनभरमें तैकर, शामको नन्दजी अपने घर पहुँचे। बेचारी यशोदा दुग्धवती गायकी भाँति, अपने प्यारे कृष्णकी बाट जोह रही थी! नन्दजीके

साथ कृष्ण और बलरामको न देख, वह अत्यन्त व्याकुल हो गई और फूट-फूटकर रोने लगी। उसने कहा,—"हमारे प्यारे बच्चोंके बदलेमें यह धन-रत्न लेकर, तुमने न जाने उन्हें कहाँ खो दिया। तुमने बड़ी भूल की। हाय! वहाँ हमारे बच्चे कैसे होंगे! उन्हें कौन खिलाता-पिलाता होगा!!"

इसी तरहकी बहुतसी बातें कहकर, भोली यशोदा विलाप करने लगी। नन्दजीने आदिसे अन्ततक सब बातें कहकर, बड़ी मुशकिलसे यशोदाको समझा-बुझाकर शान्त किया।

थोड़ी देरमें यह खबर सारे वृन्दावनमें फैल गई। कृष्ण और बलरामके बिना वहाँ बड़ा कुहराम मच गया! नन्द और उपनन्द आदिने बड़ी मुश्किलसे लोगोंको समझा-बुझाकर शान्त किया। यद्यपि उनलोगोंके समझाने-बुझानेसे, वृन्दावनवासी सब बातें समझ गये, परन्तु कृष्णके बिना उनके हृदयको किसी तरह सन्तोष न हुआ। गोप-गोपियोंका वह अपूर्व्व आनन्द और उत्साह, जो कृष्णके रहनेके समय था, सदाके लिये चला गया। वृन्दावनकी वह प्राकृतिक शोभा और सुन्दरता न जाने कहाँ तिरोहित हो गई।

७
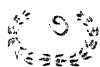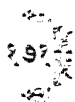
उपनयन और शिक्षा

नन्दजीको विदाकर वसुदेवने राजा उग्रसेनकी आज्ञा लेकर, कृष्ण और बलरामके उपनयन-संस्कारकी तैयारी की। यदुवंशियोंके पुरोहित पण्डित गर्ग-जीकी आज्ञाके अनुसार, उपनयन-संस्कारकी समस्त सामग्री मंगाई गई। हित-मित्रों तथा सगे-सम्बन्धियोंको निमन्त्रित कर, शुभ मुहूर्त्तमें बड़ी धूम-धामके साथ, विधिपूर्व्वक यह शुभ कर्म सम्पन्न किया गया।

इसके उपरान्त दोनों कुमारोंको विद्या-शिक्षाके लिये किसी योग्य गुरुके पास भेजनेका विचार होने लगा। उन दिनों अवन्तिकापुर निवासी महर्षि सान्दीपनि, सब शास्त्रोंके विद्वान थे। समस्त देशमें उनकी विद्या-चर्चाकी बड़ी ख्याति थी। सर्व-सम्मतिसे निश्चय हुआ, कि विद्या-शिक्षाके लिये कुमारोंको सान्दीपनिजीके पास ही भेजा जाये। क्योंकि अन्यान्य उपयोगी विद्याओंके अतिरिक्त, सान्दीपनिजी शस्त्र-विद्याके भी अच्छे ज्ञाता थे और क्षत्रियोंके लिये शस्त्र-विद्याका जानना परमावश्यक था। इसीसे यथासमय रथारोहण कर, कृष्ण और बलरामने सान्दी-

पनि ऋषिके आश्रमकी यात्रा की। रास्तेमें उन्हें सुदामा नामक एक ब्राह्मणकुमार मिला। पूछनेपर मालूम हुआ, कि उसने भी विद्या पढ़नेकी इच्छासे ही, घर छोड़ा है और किसी सुयोग्य अध्यापकके निकट रहकर, विद्योपार्जन करना चाहता है। कृष्णने दयार्द्र होकर, उसे भी रथपर बिठा लिया।

कई दिनोंके बाद, ये लोग सान्दीपनि मुनिके आश्रममें पहुँचे। मुनिने बड़ी प्रसन्नतासे इन्हें अपनी छात्र-मण्डलीमें भर्त्तीकर लिया और बड़े प्रेमसे पढ़ाने लगे। कृष्णने अपनी असाधारण मेधा-शक्तिद्वारा बहुत थोड़े समयमें * कितनी ही विद्यायें पढ़ लीं। ऐसा अद्भुत मेधावी छात्र सान्दीपनि मुनिको कोई नहीं मिला था। मुनि जो कुछ पढ़ा देते थे, उसे श्रीकृष्ण शीघ्र ही मुखस्थ कर डालते थे। कृष्णका विद्याप्रेम और विलक्षण स्मृति-शक्ति देखकर, मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्हें ज्ञात हो गया, कि इस छात्रमें अवश्य ही कोई दैवी शक्ति है। एक न एक दिन यह अवश्य ही संसारमें सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति गिना जायेगा। ऐसे सुयोग्य और धी-शक्ति-सम्पन्न छात्रसे कौन अध्यापक प्रसन्न नहीं

* पुराणोंमें लिखा है, कि कृष्णने केवल चौसठ दिनमें ही सारी विद्यायें पढ़ ली थीं। परन्तु आजकल लोग इस बातपर विश्वास नहीं करते। महाभारतमें लिखा है, कि श्रीकृष्णने हिमालयमें दस वर्षतक तप किया था। कतिपय विद्वानोंके मतानुसार यह तपकाल ही उनकी शिक्षाका समय था और विद्या शिक्षाको ही पौराणिक भाषामें 'तप' कहा गया है। जो हो, यह सभी स्वीकार करते हैं, कि कृष्ण अपने समयके सर्वश्रेष्ठ विद्वान थे और उस समयमें प्रचलित सभी विद्याओंके पण्डित थे। ले०—

होता? कृष्णकी ज्ञानलिप्सा उत्तरोत्तर बढ़ती देखकर, मुनि भी बड़े आग्रह और स्नेहसे पढ़ाने लगे। फलतः थोड़े ही समयमें कृष्ण बहुतसी विद्याओंके पण्डित हो गये।

इसी बीचमें एक और घटना हो गई। एक दिन मुनिके आश्रममें ईंधन नहीं था। उन्होंने कृष्ण और सुदामाको वन-मेंसे लकड़ी तोड़ लानेकी आज्ञा दी। गुरुकी आज्ञा पाकर दोनों मित्र, प्रसन्नता पूर्व्वक वनमें गये और प्रचुर ईंधन संग्रहकर, लौट-नेके लिये तैयार हुए। इतनेमें मूसलाधार वर्षा होने लगी। लाचार दोनोंको उसी जंगलमें, एक वृक्षके नीचे रात काटनी पड़ी। प्रवल शीत और क्षुधाके कारण कृष्ण व्याकुल हो गये। गुरुजीने चलनेके समय सुदामाको कुछ चने देकर कहा था, कि जब भूख लगे, तब कलेवा कर लेना। परन्तु लोभवश सुदामाने चने कृष्णको न दिये। जब स्वयं धीरे-धीरे चने खाने लगा, तब कृष्णने कहा—"भाई सुदामा, बड़ी भूख लगी है।"

सुदामा—वही हाल तो इधर भी है।

कृष्ण—यार, तुम तो कुछ खा रहे हो।

सुदामा—नहीं तो!

कृष्ण—तो यह पटर-पटरकी आवाज़ कहांसे आ रही है?

सुदामा—शीतके कारण दाँत कड़कड़ा रहे हैं।

मित्रका सर्वथा मिथ्या उत्तर सुनकर, कृष्ण चुप हो गये। वे जानते थे, कि सुदामा गुरुपत्नीके दिये हुए चने चबा रहा है। परन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। यद्यपि यह एक साधारण

घटना थी, परन्तु इससे भी कृष्णकी उदारता और गम्भीरता प्रकट हुई। पीछेसे सुदामा भी मनही-मन अत्यन्त लज्जित हुआ। अस्तु।

कुछ दिनोंके बाद पढ़ना समाप्तकर कृष्णने अपने गुरुसे गुरु-दक्षिणा मांगनेकी प्रार्थना की। सान्दीपनि मुनिको दृढ़ विश्वास हो गया था, कि कृष्ण अद्भुत शक्तिशाली महापुरुष हैं। इनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। अतः उनकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने कहा—

"बेटा! मुझे धनकी आवश्यकता नहीं है। मेरे एक मात्र पुत्रको समुद्र तटवासी शंख नामक एक असुर पकड़ ले गया है। यदि तुम्हारी इच्छा गुरु-दक्षिणा प्रदान करनेकी हैं, तो मेरे पुत्रको ला दो।"

गुरुके आदेशानुसार कृष्णने अपने भाई बलरामके साथ तुरन्त ही समुद्र तटकी यात्रा की और अपने बाहुबल द्वारा, अति बलवान शंखासुरको परास्तकर, मुनि-बालकका उद्धार किया।*
अपने बिछड़े हुए पुत्रको पाकर, मुनि तथा उनकी पत्नीने कृष्ण और बलरामको भूरि-भूरि आशीष प्रदानकर विदा किया।

गुरु-आश्रमसे लौटनेपर मथुरा-वासियोंने बड़े प्रेमसे कृष्णका स्वागत किया। घर-घर आनन्दोत्सव मनाया गया। कृष्णने अपने परम प्रिय बन्धु उद्धवको वृन्दावन भेजकर, नन्द-यशोदा आदि

---

* पुराणोंमें लिखा है, कि सान्दीपनि ऋषिके लड़केको स्वयं यमराज उठा ले गये थे और कृष्णने यमपुर जाकर उसका उद्धार किया था।

घटना थी, परन्तु इससे भी कृष्णकी उदारता और गम्भीरता प्रकट हुई। पीछेसे सुदामा भी मनही-मन अत्यन्त लज्जित हुआ। अस्तु।

कुछ दिनोंके बाद पढ़ना समाप्तकर कृष्णने अपने गुरुसे गुरु-दक्षिणा मांगनेकी प्रार्थना की। सान्दीपनि मुनिको दृढ़ विश्वास हो गया था, कि कृष्ण अद्भुत शक्तिशाली महापुरुष हैं। इनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। अतः उनकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने कहा--

"बेटा! मुझे धनकी आवश्यकता नहीं है। मेरे एक मात्र पुत्रको समुद्र तटवासी शंख नामक एक असुर पकड़ ले गया है। यदि तुम्हारी इच्छा गुरु-दक्षिणा प्रदान करनेकी हैं, तो मेरे पुत्रको ला दो।"

गुरुके आदेशानुसार कृष्णने अपने भाई बलरामके साथ तुरन्त ही समुद्र तटकी यात्रा की और अपने बाहुबल द्वारा, अति बलवान शंखासुरको परास्तकर, मुनि-बालकका उद्धार किया।* अपने बिछड़े हुए पुत्रको पाकर, मुनि तथा उनकी पत्नीने कृष्ण और बलरामको भूरि-भूरि आशीष प्रदानकर विदा किया।

गुरु-आश्रमसे लौटनेपर मथुरा-वासियोंने बड़े प्रेमसे कृष्णका स्वागत किया। घर-घर आनन्दोत्सव मनाया गया। कृष्णने अपने परम प्रिय बन्धु उद्धवको वृन्दावन भेजकर, नन्द-यशोदा आदि

* पुराणोंमें लिखा है, कि सान्दीपनि ऋषिके लड़केको स्वयं यमराज उठा ले गये थे और कृष्णने यमपुर जाकर उसका उद्धार किया था।

गोप-गोपियोंको भी अपने लौटनेकी खबर दिलवाई। उद्धवने कई दिनोंतक वृन्दावनमें रहकर, कृष्ण-विरह-सन्तप्त गोप-गोपियोंको बहुत समझाया। उद्धव आध्यात्मिक विद्वान थे। उन्होंने गोप जातिको—विशेषतः गोपियोंको आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करनेकी बड़ी चेष्टा की। परन्तु कृष्णके विमल प्रेममें पगी गोप जातिपर, उद्धवके उन आध्यात्मिक उपदेशोंका बहुत कम प्रभाव पड़ा। अन्तमें मथुरा लौटकर, उन्होंने कृष्णसे गोप-गोपियोंके अटल अनुरागकी खूब प्रशंसा की।

८
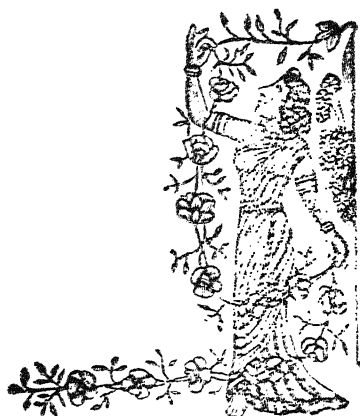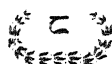
पाण्डव-परिचय.
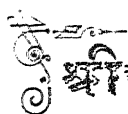
श्रीकृष्णकी बुआ अर्थात् वसुदेवकी सहोदरा कुन्ती देवीका विवाह हस्तिनापुरके कुरुवंशी राजा विचित्र वीर्य्यके पुत्र राजा पाण्डुसे हुआ था। कुन्तीके युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्ज्जुन, तीन पुत्र तथा उनकी सौत माद्रीके नकुल और सहदेव, दो पुत्र थे। ये ही पांचो पाण्डव कहलाते थे। राजा पाण्डुके मरनेपर उनके भाई धृतराष्ट्र सिंहासनासीन हुए। परन्तु वे जन्मान्ध थे। इसलिये उनके सौ पुत्रोंमें, सबसे बड़ा पुत्र दुर्योधन ही अधिकतर राज-कार्य्य सँभालता था। दुरात्मा दुर्योधन अत्यन्त क्रूर, दुष्कर्मी और पापी था। अपने होनहार चचेरे भाइयोंका बल-वीर्य्य देखकर उसके मनमें सदैव जलन हुआ करती थी और वह उन्हें मार डालनेका अवसर ढूंढ़ा करता था। उसका छोटा भाई दुःशासन, उसका मामा शकुनि और राजा धृतराष्ट्रके सारथीका पुत्र कर्ण आदि उसके अन्तरङ्ग मित्र और सहायक थे। ये सदैव पाण्डवोंका अनिष्ट चिन्तन किया करते थे। कुन्तीके मध्यम पुत्र भीमसेन बड़े

बलवान, विक्रमशाली और शौर्य्यवान थे। खेल-कूदके समय आवश्यकता पड़नेपर, वे अनायास ही दुर्योधनके भाइयोंको पछाड़कर, उनकी छातीपर चढ़ बैठते थे। इसीलिये दुर्योधन भीमसेनको सदैव क्रूर दृष्टिसे देखता था। उसने उन्हें मारडालनेके लिये एक बार विष खिला दिया था। परन्तु, 'जाको राखै साइयाँ, मारि सकै नहिं कोइ। बार न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होइ।' इस कहावतके अनुसार परमात्मने पाण्डवोंकी रक्षा की और किसी तरह भागकर उन्होंने अपने प्राण बचाये।

इसी तरह दुर्योधन प्रत्यक्ष तथा परोक्ष भावसे, सदैव पाण्डवोंके विरुद्ध साज़िशें किया करता था। राजा धृतराष्ट्र यद्यपि अपने भतीजोंको पुत्रवत् मानते थे, तथापि कभी कभी दुर्योधनकी बातोंमें आकर, उसके किये हुए अन्यायोंका समर्थन करने लगते थे। इसके अतिरिक्त वे अन्धे होनेके कारण भी, इन बातोंसे बहुधा अनभिज्ञ थे। राजा धृतराष्ट्रकी सभामें, उनके चाचा भीष्म, अस्त्रविद्याके आचार्य्य द्रोण और परम नीतिज्ञ महात्मा विदुर आदि कितनेही परम विद्वान, धार्मिक और नीतिकुशल पुरुष विद्यमान थे, परन्तु कपटी दुर्योधनके सामने किसीकी कुछ नहीं चलती थी। वह अवसर पाते ही इनलोगोंकी आंखोंमें धूल झोंककर पाण्डवोंको तंग किया करता था।

धीरे-धीरे दुर्योधनके अत्याचारोंकी मात्रा बहुत बढ़ गई। यहाँतक नौबत आई, कि बेचारे पाण्डवोंको अपनी माता कुन्तीके

साथ घरबार छोड़कर, वनमें चला जाना पड़ा और नाना प्रकारकी विपत्तियां भोगनी पड़ीं।

अपने फुफेरे भाई पाण्डवोंके संकटका समाचार सुनकर श्रीकृष्णको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने स्वयं हस्तक्षेपकर, कौरवों और पाण्डवोंके इस विवादको मिटा देनेका विचार किया। परन्तु उचित अवसर न पानेके कारण, इस विचारको कार्य्यमें परिणत न कर सके। इसलिये उन्होंने सब बातोंका पता लगानेके लिये, यादव सरदार अक्रूरजीको हस्तिनापुर भेज दिया। अक्रूरसे यह भी कह दिया, कि वहाँ कुछ दिन रहकर सब बातोंकी पूरी जांच करना और राजा धृतराष्ट्रसे मिल कर उन्हें समझाना, कि पितृहीन पाण्डवोंको कष्ट न दें। अपने असदाचारी लड़कोंको मना कर दें। क्योंकि उनके जीते जी यदि पाण्डव कष्ट पावेंगे, तो उनके लिये बड़ी बदनामीकी बात होगी। आशा है, कि वृद्धावस्थामें इस तरहके कलङ्कसे बचनेके लिये वे अवश्य मेरी प्रार्थना सुनेंगे।

श्रीकृष्णके आदेशानुसार अक्रूर हस्तिनापुरमें कई महिने रहे और पाण्डवोंकी माता कुन्ती, महात्मा विदुर और पितामह भीष्मसे मिलकर, पहले सब बातोंकी पूरी जांच-पड़ताल की। इसके बाद राजा धृतराष्ट्रसे मिलकर श्रीकृष्णका सन्देशा सुनाया।

राजा धृतराष्ट्रने इसके लिये श्रीकृष्णके प्रति खूब कृतज्ञता प्रकाश की और प्रतिज्ञा की, कि भविष्यमें मैं पाण्डवोंको किसी

प्रकारका कष्ट न होने दूंगा। अबतक जो कुछ हुआ है, वह मेरी अजानकारीमें हुआ है। उसके लिये में अत्यन्त दुःखित हूं।

इसके बाद हस्तिनापुरसे लौटकर अक्रूरने सब समाचार श्रीकृष्णको सुना दिया। दुर्योधनकी क्रूरताकी कहानी सुनकर श्रीकृष्ण समझ गये, कि यह विवाद सहजहीमें न मिटेगा। इस समय दुराचारी दुर्योधन, विरोधका जो बीज बो रहा है, उसका विषमय फल एक दिन समस्त आर्य्यावर्तको चखना पड़ेगा।

९
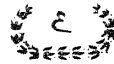
जरासन्धके आक्रमण.

मृत कंसका ससुर, मगध देशका प्रबल प्रतापी राजा जरासन्ध, उन दिनों आर्य्यावर्तका सार्वभौम नृपति समझा जाता था। अपने बाहुबल, युद्ध कौशल तथा विश्वविजयिनी महती सेना द्वारा, उसने देशके प्रायः सभी प्रादेशिक नृपतियोंको अपने अधीन कर लिया था।

जरासन्धकी दो लड़कियाँ कंससे व्याही थीं। श्रीकृष्ण द्वारा कंसके मारे जानेका संवाद पाकर, वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और यदुवंशका समूलोच्छेदकर देनेकी इच्छासे, तेईस अक्षौहिणी*

---

* अक्षौहिण्यामित्यधिकैः सप्तत्यष्टाभिः शतैः।
संयुक्तानि सहस्राणि गजानामेकविंशतिः॥
एवमेव रथानान्तु सख्यानं कीर्त्तितं बुधैः।
पञ्चषष्टि सहस्राणि षट्शतानि दशैव तु॥
संख्यातास्तुरगास्तज्ज्ञैर्विना रथ्यैस्तुरङ्गमैः।
नृणां शतसहस्रन्तु सहस्राणि नवैव तु॥
शतानि त्रीणि चान्यानि पञ्चाशच्च पदातयः॥ इत्यमरः।

अर्थात्—जिस सेनामें २१८७० हाथी, २१८७० रथ, ६५६१० घोड़े और १०९३५० सिपाही होते हैं वह अक्षौहिणी कहलाती है। उसकी संयुक्त संख्या २१८७०० होती है।
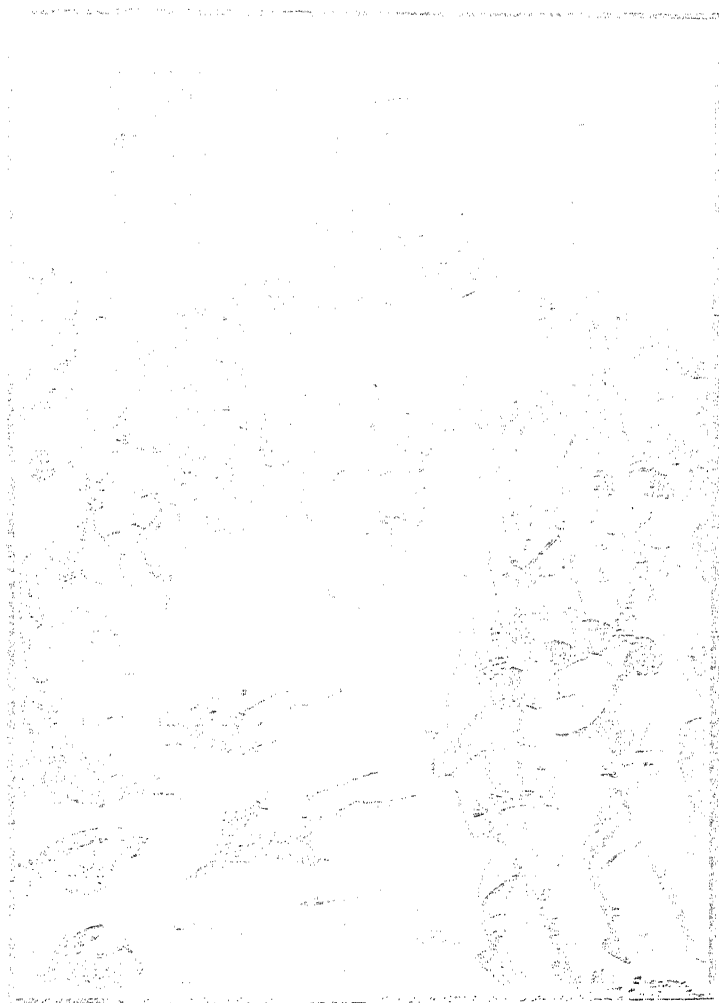
सेना लेकर मथुरापर चढ़ आया। यदुवंशियोंकी सेना बहुत थोड़ी थी। युद्धकला-विशारद तेईस अक्षौहिणी सैनिकोंका मुकाबिला करना और जान-बूझकर आगमें कूद पड़ना, उनके लिये बराबर था। इसलिये मथुरामें बड़ी बड़ी सनसनी फैली। लोग अत्यन्त भयभीत होकर, कृष्णके पास आये। कृष्णने सबको आश्वासन देकर विदा किया और यदुवंशियोंकी छोटीसी सेनाके नायक बन, अत्यन्त निर्भीकता पूर्व्वक समराङ्गणमें आकर शत्रुके सामने डट गये। दोनों ओरसे तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ। अपनी जाति तथा जन्मभूमिकी रक्षाके लिये कृष्ण और बलराम प्राण-पणसे युद्ध करने लगे। अपने सेना नायक श्रीकृष्णकी उत्साहवाणी सुनकर, यादवोंकी सेना भी जी तोड़कर युद्ध करने लगी। देखते देखते समरभूमि रुण्ड-मुण्डमय हो गई। चारों ओर मानों रक्त की नदियां बहने लगीं।

अपने अद्भुत युद्ध-कौशल द्वारा कृष्ण और बलरामने जरा-सन्धके दाँत खट्टे कर दिये। इस लड़ाईमें उसके अगणित सैनिक तथा हाथी-घोड़े काम आये। अन्तमें हार कर उसे मैदान छोड़ देना पड़ा। उस समय बलरामने उसे पकड़ लेना चाहा था, परन्तु कृष्णने ऐसा नहीं करने दिया!

मुट्ठीभर यादवोंसे हारकर, जरासन्ध लज्जित तो हुआ, परन्तु हताश न हुआ और कुछ दिनके बाद ही एक महती सेना लेकर फिर मथुरापर चढ़ आया। कृष्णने फिर मार भगाया। इस तरह उसने मथुरापर सत्रह बार आक्रमण किये और बराबर

मुंहकी खाता गया। इधर बार-बार लड़ते-लड़ते यादव भी अत्यन्त क्लान्त हो गये थे। अथच जरासन्धके पुनराक्रमणका भय भी बना ही रहा। इसलिये श्रीकृष्णने मथुरा छोड़कर, किसी सुरक्षित स्थानमें जाकर बसनेका विचार किया। कारण यह था, कि मथुराकी भूमि समतल थी। थोड़ीसी सेना लेकर जरासन्धकी रण-मद-मत्त सेनाका बार-बार मुकाबला करनेमें बड़ी कठिनता पड़ती थी। दूसरे, युद्धके आतङ्कसे मथुराकी प्रजा भी बहुत घबरा गई थी। इसलिये युद्ध-विद्या-विशारद श्रीकृष्णने किसी ऐसे स्थानपर जाकर बसनेका विचार किया, जो बसवासके अतिरिक्त लड़ाईके लिये भी उपयुक्त हो। इसी विचारसे उन्होंने वर्त्तमान गुजरात प्रान्तके अन्तर्गत, काठियावाड़ नामक स्थानके निकट द्वारकापुरी नामका एक विशाल और सुन्दर नगर निर्माण कराया और मथुरा छोड़कर समस्त यदुवंशियोंके साथ वहां जाकर रहने लगे। यह स्थान पहले कुशस्थली नामसे विख्यात था और इसकी तीन ओर समुद्र तथा सामनेकी ओर रैवतक नामक प्रर्वत, मानों सतर्क सन्तरीकी भांति सिर उठाये उसकी रक्षाके लिये खड़ा था। रैवतक प्रर्वतपर खड़े होकर, शत्रुओंपर बाण-वर्षा करनेके लिये भी यह स्थान अत्यन्त उपयुक्त था। इसीसे कृष्णचन्द्रने यहीं एक सुदृढ़ दुर्ग भी बनवाया।

अभी श्रीकृष्णकी द्वारकापुरी अच्छी तरह आबाद भी न हो पाई थी; कि इतनेमें राजा जरासन्धने अट्ठारहवीं बार फिर मथुरापर चढ़ाई की। अबकी वह अकेला न था। यवनोंका

अधिपति कालयवन* नामक एक और प्रबल प्राक्रान्त राजा अपनी विशाल वाहिनी सहित, जरासन्धकी सहायताके लिये मथुरापर चढ़ आया था। वास्तवमें श्रीकृष्ण बार-बार युद्धकर देशकी जन-संख्या नष्ट करनेके पक्षपाती नहीं थे। केवल अपनी जाति तथा जन्म-भूमिकी रक्षाके लिये ही, उन्होंने सत्रह बार जरासन्धको धर्म-युद्धमें परास्त किया था। परन्तु इस तरह बार-बार नरहत्या कराकर, देशकी जन-संख्या घटाना, उन्हें किसी तरह अभीष्ट न था। इसके सिवा बार-बार लड़ते रहनेके कारण, यादवोंकी छोटीसी सेना अत्यन्त क्लान्त हो पड़ी थी। अतएव अबकी बार समरकला-विशारद कृष्णने सेना लेकर सरे मैदान शत्रुका मुकाबला करना उचित न समझ, कौशल द्वारा उसे विनष्ट कर डालनेका विचार किया। फलतः एक दिन बिना कोई हथियार लिये, चुपचाप कालयवनके शिविरमें जाकर उसके सामने खड़े हो गये। हठात् श्रीकृष्णको सामने उपस्थित देखकर, कालयवन पहले तो अत्यन्त विस्मित हुआ। फिर सँभल कर उन्हें पकड़ लेनेके लिये उठ खड़ा हुआ। श्रीकृष्ण आदर्श महापुरुष थे। समयोचित अन्यान्य विद्याओंके अतिरिक्त

---

*पुराणोंसे पता चलता है, कि प्राचीन कालमें भारतके कतिपय स्थानोंमें यवनोंका राजत्व था। इतिहासविदोंका अनुमान है, कि प्राचीन ग्रीकोंको ही यहांके लोग यवन कहा करते थे। स्वर्गीय बंकिमचन्द्रजी चटर्जीके मतानुसार शक, हूण और ग्रीक आदि सभी हिन्दुएतर जातियाँ यहां यवन ही कहलाती थीं।

व्यायाम-कलामें भी उन्होंने यथेष्ट निपुणता प्राप्त की थी। कालयवनको उठते देखकर, समझ गये, कि यह मुझे पकड़ना चाहता हैं। अतएव बड़ी फुर्तीसे उसके शिविरसे बाहर निकल आये। हाथमें आये हुए शत्रुको इस तरह निकल जाते देखकर, कालयवन अत्यन्त कुपित हुआ और कृष्णको पकड़ लेनेके लिये उनका पीछा करने लगा। कृष्ण भागने लगे। इस तरह भागते भागते वे गन्धमादन पहाड़की कन्दरामें घुस गये। उनका पीछा करता हुआ काल यवन भी उसी कन्दरामें आ पहुँचा। उस अन्धकार पूर्ण गिरिगह्वरमें मुचकुन्द* नामक एक ऋषि घोर निद्रामें पड़े खर्राटें ले रहे थे। कालयवन उन्हींको कृष्ण समझ पैरोंसे ठोकर मारता हुआ, कहने लगा—"पापी यादव, प्राण बचानेके लिये यहां साधु बनकर सोया है। यह नहीं जानता, कि तेरा काल तेरे सिरपर नाच रहा है?"

---

* पुराणोंमें लिखा है, कि मुचकुन्द सुप्रसिद्ध मान्धातावंशीय नृपति थे। देवताओंका पक्ष लेकर उन्होंने असुरोंसे बहुत दिनोंतक घोर युद्ध किया था। अन्तमें जब स्वामी कार्तिकका आविर्भाव हुआ, तब देवताओंने राजा मुचकुन्दको धन्यवाद देकर कहा,—"आपने हमलोगोंकी बड़ी सहायता की। अब आप विश्राम कीजिये। क्योंकि अब स्वामी कार्तिक ही हमारी मददके लिये यथेष्ट हैं।" मुचकुन्दने कहा—"अच्छी बात है। मैं अब अपने घर जाता हूं।" यह सुनकर देवता बोले--"आपके खान्दानमें इस समय कोई नहीं है। अतएव आपका घर जाना वृथा है।" यह सुनकर मुचकुन्द बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने कहा—"अच्छा तो मैं लड़ते-लड़ते बहुत थक गया हूं। आप मुझे कोई ऐसा स्थान बताइये, जहां जाकर विश्राम कर सकूं।"

निश्चिन्त सोये हुए, मुचकुन्दने चौंककर देखा, कि सामने एक विशालकाय असुर खड़ा है और उन्हें ठोकरोंसे वार-वार मार रहा है। उसे देखते ही मुनि क्रोधके मारे आगवबूला हो गये। क्रोधके कारण उनके नेत्रोंसे विषम अग्नि-ज्वाला निकलकर काल-यवनको दग्ध करने लगी और देखते-देखते उसकी विशाल देह भस्मीभूत हो गई!

इस तरह श्रीकृष्णने कौशलसे काल-यवनका नाश करा दिया। अपने राजाके मरनेकी खवर पाकर, उसके सेनाध्यक्षने दुःखित होकर मथुरासे अपना घेरा उठा लिया। काल-यवनकी सेनाके कूच करने वाद, जरासन्धने फिर मथुरापर धावा बोल दिया। परन्तु कृष्णने अवकी वार उसका मुकावला करना उचित न समझा। उन्होंने मथुरा छोड़नेकी तैयारी तो पहले ही कर ली थी। अतएव जरासन्धकी चढ़ाई की खवर पाकर वे वलराम सहित भागकर प्रवर्षण पहाड़पर छिप गये। जरासन्धने उन्हें वहुत तलाश किया; परन्तु जव पता न लगा, तव उस पहाड़की

देवताओंने कहा—"आप गन्धमादन पहाड़की कन्दरामें जाकर आराम कीजिये। यदि कोई आपके आराममें खलल डालेगा, तो वह तुरन्त जलकर खाक हो जायेगा।" देवताओंके आदेशानुसार मुचकुन्द गन्धमादनकी गुफामें आकर विश्राम करने लगे। कृष्णको यह बात मालूम थी। इसीसे उन्होंने कालयवनको मुचकुन्दके पास ले जाकर उसे भस्म कराया।

परन्तु श्रीकृष्ण चरित्रपर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेवाले इस कथाको पौराणिक गप्प कहते हैं। उनके मतानुसार श्रीकृष्णने निर्ज्जन स्थानमें ले जाकर स्वयं काल-यवनको मारा था।

चारों ओर आग लगाकर वापस चला आया। उसे पूर्ण विश्वास था, कि कृष्ण आदि उसमें जलकर भस्म हो गये होंगे।

१०
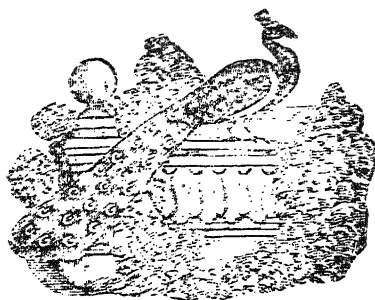
मथुरासे द्वारकापुरी आकर श्रीकृष्ण, राजा उग्रसेन तथा अन्यान्य यादवों सहित सुख पूर्व्वक रहने लगे। अत्यन्त सुरक्षित होनेके कारण जरासन्धने द्वारकापर आक्रमणकर श्रीकृष्णको विजय करनेका विचार छोड़ दिया। उनकी असीम शक्ति, विचित्र बुद्धिमत्ता और सुयशकी सुख्याति आर्य्यावर्तके कोने-कोनेमें परिव्याप्त हो गई। इसी दरमियानमें आनर्त देशके अधिपति राजा रैवतने अपनी सुशीला कन्या रेवतीसे बलरामजी-का विवाह कर दिया। यह शुभ कार्य्य बड़े समारोह और धूम-धामसे समाप्त हुआ।

इसके कुछ दिन बाद श्रीकृष्णने सुना, कि विदर्भ देशका कोई ब्राह्मण उनके नामकी एक चिट्ठी लेकर आया है। श्रीकृष्णने कौतूहलवश उसे अपने निकट बुलाया, और बड़े आदरसे उसका कुशल आदि पूछकर, आनेका कारण पूछा। ब्राह्मणने कहा,—"विदर्भ देशकी राज्यकन्या रुक्मिणीने मुझे आपके पास भेजा है। उन्होंने आपकी सेवामें यह पत्र भेजा है। इसे पढ़कर आप सब बातें जान सकेंगे।"

वर्त्तमान मध्यभारतके निकट बरार नामक एक प्रान्त है।

प्राचीन कालमें यह प्रान्त विदर्भ देशके नामसे विख्यात था और भीष्मक नामक एक राजा यहाँ राज्य करते थे। राजा भीष्मककी कन्या राजकुमारी रुक्मिणी बड़ी सुन्दरी, सुशीला और गुणवती थी। श्रीकृष्णकी अद्भुत रूपराशि और गुणशीलकी सुख्याति सुनकर, बिना देखे ही उसने अपना तनमन उनपर निवछावर कर दिया था।

यद्यपि राजकुमारी रुक्मिणी मनही-मन श्रीकृष्णको अपना हृदय सौंप चुकी थी और उसके पिता-माता भी इससे सहमत थे, परन्तु उसका बड़ा भाई राजकुमार रुक्मी इसके विपरीत था। वह अपनी बहनका विवाह राजा जरासन्धके सेनापति चेदिराज शिशुपालसे करना चाहता था। उसने राजा भीष्मकसे कहा,—"श्रीकृष्णके जाति-पाँतिका कोई ठिकाना नहीं। पहले वह नन्दगोपका लड़का कहलाता था, अब वसुदेवका पुत्र बना है। अभीतक निश्चय नहीं हो सका, कि वास्तवमें वह किसका लड़का है। यदि उसे यदुवंशी मान भी लें, तो भी कुल-मर्य्यादामें वह हमारी समता नहीं कर सकता। क्योंकि हमलोग सदासे यदुवंशियोंकी कन्यायें व्याहते आये हैं। ऐसी दशामें यदि यदु-वंशमें रुक्मिणीका विवाह होगा, तो हमलोगोंकी बड़ी निन्दा होगी। इसके सिवा चेदीके राजा शिशुपाल बड़े विख्यात वीर और प्रबल प्राक्रान्त नृपति जरासन्धके सेना नायक हैं। उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेसे हमलोगोंका गौरव बढ़ेगा।"

राजकुमार रुक्म राजा भीष्मकका बड़ा लड़का और राज्यका

उत्तराधिकारी था, अधिकांश राजकार्य्य भी उसीकी सम्मतिके अनुसार हुआ करते थे। इसलिये राजाने उसकी बात मान ली और शिशुपालके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेको राजी हो गये। यथा समय राजा शिशुपालके पास दूत भेजकर, विवाहकी बात-चीत भी पक्की कर ली गई।

इस संवादने रुक्मिणीको अत्यन्त चिन्तित कर दिया। क्योंकि वह मनही-मन श्रीकृष्णको वरण कर चुकी थी। अब दूसरे किसीको पति बनाना उसके लिये असम्भव था। हिन्दू-कन्या अपने दृढ़ संकल्पसे कैसे विचलित हो सकती थी? परन्तु उपाय क्या था? विवाहकी बातचीत पक्की हो चुकी थी। दिन नियत हो चुका था। बड़ी धूम-धामसे तैयारी भी आरम्भ हो चुकी थी। बड़ी चिन्ता और सोच-विचारके बाद रुक्मिणीने श्रीकृष्णकी शरण लेना ही उचित समझा। वह श्रीकृष्णकी अलौकिक शक्तिकी कथा सुन चुकी थी। उसे दृढ़ विश्वास था, कि यदि वे इच्छा करेंगे, तो किसी न किसी तरह अवश्य ही उसका उद्धार करेंगे; अन्यथा उसके धर्मकी रक्षा नहीं हो सकती। इसके बाद उसने अपने पुरोहितको बुलाकर कहा—"विप्रदेव, इस समय मैं बड़े धर्म्म-सङ्कटमें पड़ी हूँ। आप कृपा कर मेरी एक चिट्ठी लेकर द्वारकापुरीमें श्रीकृष्णचन्द्रके पास जाइये और कहिये, आपकी दासी रुक्मिणी अपना तन-मन आपके चरणोंमें अर्पण कर चुकी है। परन्तु उसके अभिभावकगण उसकी इच्छाके विपरीत, उसे शिशुपालको सौंपना चाहते हैं।

आप सर्व शक्तिमान हैं। जिस तरह बन पड़े, इस महान् सङ्कटसे अबला दासीका उद्धार कीजिये। नहीं तो नारी-धर्मकी रक्षाके लिये आत्महत्याके सिवा, उसके पास अब कोई दूसरा उपाय नहीं रहा है।"

रुक्मिणीका अतुलनीय रूप-लावण्य और अलौकिक गुण-गरिमाकी सुख्याति इससे पहलेही कृष्णके कानोंतक पहुँच चुकी थी। फलतः उसे पत्नीरूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषा भी उनके हृदयमें उत्पन्न हो चुकी थी। इसीलिये रुक्मिणीका पत्र पढ़कर तथा ब्राह्मणके मुँहसे उसका वृत्तान्त सुनकर, उन्होंने अविलम्ब विदर्भ देशकी यात्रा कर दी। उनके चले जानेके बाद, कुछ चुने हुए सैनिकोंके साथ राजा उग्रसेनने, बलदेवको कृष्णकी सहायताके लिये भेजा।

अब देर नहीं है। विवाहकी सब तैयारियां हो चुकी हैं। राजा शिशुपालने सदलबल आकर, विदर्भ देशकी राजधानी कुण्डिनपुरमें डेरा डाल दिया है। बेचारी रुक्मिणीके हृदयमें चिन्ताकी तरंगें उठती और विलीन हो रही हैं। अभी तक ब्राह्मण देवता कोई खबर लेकर नहीं आये। क्या प्राणनाथ कृष्णने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी? अथवा बूढ़ा ब्राह्मण उनके पासतक पहुँच ही नहीं सका? मैंने सुना है, कि श्रीकृष्णचन्द्र बड़े दयालु हैं; सङ्कटापन्नोंकी रक्षाके लिये ही, उन्होंने अवतार धारण किया है। परन्तु मालूम होता है, कि विधाता मेरे प्रतिकूल हैं। इसी-लिये इतनी प्रार्थना करनेपर भी प्रभुने मेरी सुधि नहीं ली। इसी

तरहकी बातें सोचती हुई, रुक्मिणी बड़ी उत्सुकता पूर्वक अपने पुरोहितके लौटनेकी राह देख रही थी। एक-एक क्षण उसे एक-एक युगके समान प्रतीत होता था। ज्यों-ज्यों विवाहका समय निकट आता जा रहा था, त्यों-त्यों उसकी व्याकुलता बढ़ती जाती थी। इसी समय पुरोहितने आकर खबर दी, कि श्रीकृष्णचन्द्र सदलबल आ गये। यह सुनकर आनन्दसे रुक्मिणीकी हृदयवल्लि यों उछलने लगी, मानों सूखते हुए धानके खेतपर स्वातीकी बूँदें बरस गईं! अभी क्षण भर पहले विषाद्-का जो तूफ़ान उसके हृदयमें उठ रहा था, वह आनन्दमें परिणत हो गया। उसने ब्राह्मण देवताको प्रचुर धन-रत्न देकर विदा किया।

कुछ देरके बाद ही सारे नगरमें खबर फैल गई, कि द्वारकासे श्रीकृष्ण और बलराम भी आ पहुँचे हैं। यह खबर पाकर राजा भीष्मक अपने मन्त्रियोंको साथ लेकर, श्रीकृष्णसे जाकर मिले और उनके ठहरनेका यथोचित प्रबन्ध किया। उसी समय राजा शिशुपाल और उसके सहायक जरासन्धको भी, श्रीकृष्णके आनेका समाचार मालूम हो गया। वे समझ गये, कि श्रीकृष्ण अवश्य इस विवाहमें विघ्न उपस्थित करने आये हैं। अतः हम-लोगोंको सावधान रहना चाहिये।

रुक्मिणीने अपने पत्र द्वारा श्रीकृष्णको पहले ही सूचित कर दिया था, कि विवाहके कुछ समय पहले मैं अपनी कुल-प्रथाके अनुसार, अम्बिका भवानीके पूजनके निमित्त मन्दिरमें जाऊँगी।

आप उसी समय वलपूर्व्वक मुझे हरण कर लीजियेगा। श्रीकृष्ण सतर्कता सहित उस समयकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जिस समय कुमारी रूक्मिणी अपनी सहेलियों सहित, गाती-वजाती अम्विका देवीके मन्दिरके निकट पहुंची, उसी समय श्रीकृष्णने उसे उठाकर अपने रथपर बैठा लिया। सारथीने तुरन्त अति वेगसे रथको हाँक दिया। सारथीके अनवरत कशाघात करनेके कारण, रथके घोड़े हवासे वातें करने लगे। देखते-देखते रथ वहुत दूर निकल गया।

इसी समय सारे शहरमें यह खवर फैल गई, कि श्रीकृष्णने वलपूर्व्वक रूक्मिणीको हरण कर लिया। शिशुपाल और रूक्मी आदि इस खवरको सुनकर अतीव क्रुद्ध हुए। श्रीकृष्णको हराकर, अपनी वहनको छीन लेनेकी इच्छासे, रूक्मीने महती सेना लेकर तुरन्त ही उनका पीछा किया। इधर वलराम भी अपनी सेना सहित उसके मुकावलेके लिये तैयार थे। दोनों दलोंमें मुठभेड़ हुई। घोर घमासान आरम्भ हुआ। रूक्मीकी सेना प्राणपणसे लड़ती हुई, कृष्णके रथका पीछा करने लगी। वलराम भी उसे निवारण करते हुए, रथकी रक्षाके लिये अग्रसर होने लगे। अन्तमें कृष्ण भी ठहर गये और रथ सहित रूक्मिणीको अलग रखकर मैदानमें आकर डट गये। दोनों ओरसे तुमुल संग्राम होने लगा। कृष्णको उपस्थित देखकर, यादव सेना और भी उत्साहित होकर लड़ने लगी। इस युद्धमें रूक्मीके वहुत वीर काम आये। यहांतक, कि थोड़ी देरके वाद ही उसकी सेना तितर-

वितर हो गई। परन्तु वीरवर रूक्मी पूर्ववत् मैदानमें डटा रहा और कृष्णपर आक्रमण करनेका मौका ढूँढ़ने लगा। इतनेमें कृष्णने अपने तीक्ष्ण वाणोंसे उसकी तलवार काट दी। उसी समय अन्यान्य सैनिकोंने उसे पकड़ लिया। रूक्मीके पकड़ जाते ही, उसकी सेनाके पांव उखड़ गये और अवशिष्ट सैनिक मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। इधर श्रीकृष्ण उसे पकड़कर रथके निकट लाये। भाईकी दुर्दशा देखकर, रूक्मिणीने उसे छोड़ देनेका अनुरोध किया। उसके साथ ही वलरामजीने भी छोड़ देना ही उचित समझा। फलतः श्रीकृष्णने उसे मुक्त कर दिया।

इसके बाद निर्विघ्न रूपसे द्वारका पहुँचकर, श्रीकृष्णने प्रच- लित विधिके अनुसार रूक्मिणीका पाणिग्रह किया।* इस अवसरपर द्वारका-वासियोंने खूब आनन्द मनाया। घर-घर मंगलाचार हुआ। कई दिनोंतक द्वारकापुरीमें खूब चहल-पहल रही।

कुछ कालोपरान्त रूक्मिणी देवीने एक अत्यन्त सुरूपवान पुत्र रत्न प्रसव किया। इस बालकका नाम प्रद्युम्न रखा गया। प्रद्युम्न कामदेवकी भांति सुन्दर—मानों साक्षात् कामदेवका अवतार ही था। वल-वीर्य्य और विद्या-बुद्धिमें अपने पिताके

---

* इस प्रकार कन्या हरण कर जो विवाह होता है, उसे शास्त्रकारोंने राक्षस विवाह कहा है। प्राचीनकालमें इस तरहका विवाह हिन्दुओंमें प्रचलित था।

तुल्य था। पुराणोंमें लिखा है, कि प्रद्युम्नको लड़कपनमें शम्बर नामक एक असुर पकड़ ले गया था। उसके मिलनेकी कोई आशा नहीं थी। चारों ओर ढूँढ़-खोजकर लोग निराश हो चुके थे। अन्तमें कई वर्षोंके वाद वह स्वयं आ गया।

११
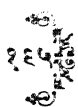
स्यमन्तकमणि और श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण यादवोंके परम हितैषी और नेता थे। बलराम, कृतवर्मा और अक्रूर आदि सभी प्रधान यादव उनका सम्मान करते और उनके वशीभूत थे। श्रीकृष्ण भी सदैव उनकी मंगल-कामना किया करते थे। समदर्शीकी भांति सबको एक दृष्टिसे देखते थे। राजा उग्रसेनका राज्यशासन कृष्णके उद्योगसे समस्त यादवोंकी इच्छानुसार ही परिचालित होता था। अपने स्वजातियोंके प्रति एक आदर्श महापुरुषका जो कुछ कर्त्तव्य होना चाहिये, वह सभी श्रीकृष्ण अच्छी तरह प्रतिपालित करते थे। परन्तु इतना होनेपर भी कुछ लोग कृष्णके द्वेषी थे। श्रीकृष्णका अखण्ड सम्मान उनकी आंखोंमें सदैव खटकता रहता था! यद्यपि उनके वल-विक्रमके प्रभावके कारण, इन द्वेषियोंकी दाल नहीं गलती थी, तथापि वे अपनी क्रूरतासे वाज नहीं आते थे और अवसर पाते ही कृष्णको कलङ्कित करनेकी चेष्टा किया करते थे।

द्वारकामें सत्राजित नामक एक यादव रहता था। उसके

पास स्यमन्तक नामका एक अति मूल्यवान मणि था *। कभी कभी सत्राजित वह मणि अपने गलेमें पहनकर निकला करता था। एक दिन वह मणि गलेमें पहनकर, राजा उग्रसेनके दर-बारमें आया। कृष्णके कुछ मित्रोंने कृष्णसे कहा, कि यह मणि राजा उग्रसेनके उपयुक्त है। यदि आप कहेंगे, तो सत्राजित राजाको दे देगा।

यद्यपि श्रीकृष्ण सत्राजितसे इस तरहका प्रस्ताव करना नहीं चाहते थे, परन्तु उनके मित्रगण उन्हें इसके लिये वाध्य करने लगे। अगत्या एक दिन श्रीकृष्णने सत्राजितको देखकर कहा— "तुम्हारे पास जो मूल्यवान मणि है, वह राजा उग्रसेनके योग्य है। अतएव तुम उसे राजाकी नजर कर दो। इससे राजा तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होंगे और तुम्हारा गौरव भी बढ़ेगा।" परन्तु सत्राजितने राजाको मणि देना स्वीकार न किया और कृष्णने भी फिर उसके लिये अधिक अनुरोध-उपरोध न किया।

घर आकर सत्राजितने यह बात अपने भाई प्रसेनसे कही। उसके मनमें यह आशंका उत्पन्न हो गई थी, कि शायद श्रीकृष्ण बल-पूर्व्वक मणि छीन लेंगे। प्रसेन कृष्णका द्वेषी था। भाईका कथन सुनकर, उसे भी विश्वास हो गया, कि कृष्ण अवश्य ही मणि ले लेनेकी चेष्टा करेंगे। अतएव उसने उसे अपने भाईसे लेकर स्वयं धारण किया। प्रसेन सत्राजितकी

---

* पुराणोंमें लिखा है, कि सत्राजितने अपनी तपस्या द्वारा सूर्य्यको प्रसन्न कर वह मणि प्राप्त किया था।

अपेक्षा अपनेको अधिक बलवान समझता था। उसने सोचा, कि यदि मणि मेरे पास रहेगा, तो कृष्ण उसे लेनेका साहस न कर सकेंगे।

संयोगवश एक दिन प्रसेन उस मणिको गलेमें पहनकर, शिकार खेलनेके लिये वनमें गया। परन्तु फिर वापस न आया। इससे सत्राजितने अनुमान कर लिया, कि अवश्य ही कृष्णने प्रसेनको मारकर मणि छीन लिया है। उसने एक दिन यह बात अपनी स्त्रीसे कही। उसकी स्त्रीने अन्यान्य स्त्रियोंमें इसका जिक्र किया। इस तरह बात धीरे-धीरे सारे शहरमें फैल गई। लोग नाना प्रकारके तर्क-वितर्क करने लगे। किसीने श्रीकृ-ष्णको दोषी ठहराया और किसीने उन्हें वृथा कलङ्कित करनेके लिये, सत्राजितको अपराधी बतलाया। अन्तमें कृष्णने भी सुना, कि सत्राजित उन्हें प्रसेनकी हत्याकर मणि चुरा लेनेका कलङ्क लगाता है। इस प्रकारका मिथ्या लोकापवाद कृष्णके लिये अत्यन्त असह्य हुआ। फलतः वे अपनेको इस मिथ्या कलङ्कसे बचानेकी तदबीर सोचने लगे। एक दिन अपने चन्द साथियों सहित श्रीकृष्ण उस वनमें गये, जहां प्रसेन शिकार खेलने गया था। वहां जानेपर मालूम हुआ, कि किसी हिंसक जन्तुने प्रसेनको मार डाला है। प्रसेनका विकृत शव मिला, परन्तु मणिका कोई पता न लगा। अन्तमें बड़े अनुसन्धानके बाद वह मणि एक भालू* की मांदमें मिला। श्रीकृष्णने भालूको मारकर मणि

* पुराणोंमें लिखा है, कि वनमें एक व्याघ्रने प्रसेनको वध किया था

प्राप्त किया और द्वारका आकर उसे सत्राजितके हवाले कर दिया।

सत्राजितका खोया हुआ मणि उसे मिल गया और कृष्णपर जो मिथ्या कलङ्क लगा था, वह भी मिट गया। परन्तु इस घटनाके कारण यादवोंमें एक और ही विवाद खड़ा हो गया।

मणि पाकर कृष्णचन्द्रपर वृथा कलङ्क लगानेके कारण सत्राजित अत्यन्त लज्जित और भयभीत हो गया था। उसने इस गुरुतर अपराधके लिये, कृष्णके चरणोंमें गिरकर क्षमा प्रार्थना की और दण्डस्वरूप अपनी रूपवती कन्यासे उनका विवाह भी कर दिया। सत्राजितकी कन्या सत्यभामा असाधारण रूपवती

और उस मणिको मुंहमें लेकर भागा जा रहा था, इतनेमें रामावतारके समयका जाम्बवान नामक भालूने उसे देखा और व्याघ्रको मारकर मणि ले लिया। जब श्रीकृष्ण मणिका पता लगानेके लिये वनमें गये, तब पद-चिन्ह द्वारा मालूम हो गया, कि प्रसेनको व्याघ्रने मारा है और व्याघ्रको भालूने मारा है। इस अनुमानके अनुसार भालूके पदचिन्होंका अनुसरण करते हुए, वे उसकी मांदमें पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने देखा, कि जाम्बवान सोया है और एक दासी उसकी लड़की जाम्बवतीको पालनेमें झुला रही है। पालनेमें झूलती हुई बालिका मणि लेकर खेल रही है। कृष्णने जाकर जाम्बवानको जगाया। दोनोंमें कुश्ती होने लगी। सत्ताईस दिनके बाद श्रीकृष्णने बूढ़े भालूको परास्त किया। श्रीकृष्णका बल-विक्रम देखकर जाम्बवान समझ गया, कि ये रामचन्द्रके अवतार हैं। फिर तो उसने बड़ी माफी मांगी और मणिके साथ अपनी पुत्री जाम्बवतीको कृष्णको समर्पण कर दिया।
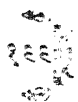
थी। कृष्णके प्रियपात्र, अक्रूर, महावीर कृतवर्मा और शतधन्वा उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा बहुत दिनोंसे कर रहे थे। परन्तु जब सत्राजितने अपनी कन्याका* विवाह कृष्णसे कर दिया, तबसे तीनों यादव अपनेको अपमानित समझकर सत्राजितको मार डालनेकी साजिश करने लगे। अक्रूर और कृतवर्म्माने शत-धन्वासे कहा—"तुम सत्राजितको मारकर उसकी मणि चुरा लो। यदि श्रीकृष्ण उसका पक्ष लेंगे तो हमलोग तुम्हारी सहायता करेंगे।"

शतधन्वा राजी हो गया और सत्राजितकी हत्याकर मणि चुरानेके अवसरकी प्रतीक्षा करने लगा। एक दिन श्रीकृष्णके कहीं अन्यत्र चले जानेपर, उसने निस्तब्ध रात्रिमें सोते हुए सत्रा-जितको वधकर मणि चुरा लिया। यद्यपि शतधन्वाने यह दुष्कर्म्म अत्यन्त गुप्त रूपसे किया था, परन्तु पाप छिपता नहीं। कुछ दिनके बाद ही लोगोंको इस गुप्त साजिशका पता लगा। सत्यभामा अपने पिताकी हत्या करनेवालेको, उसके दुष्कर्म्मका समुचित फल प्रदान करनेके लिये, श्रीकृष्णको बार-बार पीड़ित करने लगी। फलतः बलरामजीसे परामर्शकर श्रीकृष्णने शत-धन्वाको मार डालनेका विचार किया। यह खबर पाकर पापी शतधन्वा अत्यन्त भयभीत हुआ और पूर्व्व प्रतिश्रुतिके अनुसार कृतवर्मा और अक्रूरसे सहायता मांगने लगा। परन्तु इन लोगोंने

---

* किसी किसी पुराणमें लिखा है, कि सत्राजितकी तीन लड़कियां थीं और तीनों कृष्णको ब्याही गईं।

श्रीकृष्णके विरुद्धाचरण करनेका साहस न किया और साफ साफ कह दिया, कि हमलोग श्रीकृष्णसे शत्रुता नहीं करेंगे। तुम अपने बचावकी कोई दूसरी तद्‌वीर सोचो।

लाचार होकर शतृधन्वाने मणि अक्रूरके आगे फेंक दिया और स्वयं एक द्रुतगामी घोड़ेपर सवार होकर, द्वारकासे भाग चला। रथपर चढ़कर कृष्ण और बलरामने भी उसका पीछा किया। परन्तु उसका घोड़ा इनके रथकी अपेक्षा अधिक तेज जाता था। इसलिये बहुत दूर जानेपर उसे पकड़ न सके। द्वारकासे कई कोस दूर निकल जानेपर, शतृधन्वाका घोड़ा मर गया, इस लिये वह पैदल दौड़ने लगा। उसे पैदल भागते देखकर, श्रीकृ-ष्णने रथ परित्यागकर दिया। क्योंकि रथपर सवार होकर, पैदल भागनेवाले मनुष्यका पीछा करना, उन्होंने न्याय-संगत न समझा।

अस्तु, कुछ दूर जाकर श्रीकृष्णने शतृधन्वाको पकड़ लिया और तीक्ष्ण तलवारसे उसकी गर्दन उतार ली। परन्तु मणि उसके पास नहीं मिला। श्रीकृष्णने आकर बलदेवसे मणि न मिलनेकी बात कही। परन्तु उन्होंने विश्वास न किया। उन्हें विश्वास हो गया, कि श्रीकृष्ण, मणिका एक मात्र अधिकारी बननेकी इच्छासे, झूठ बोल रहे हैं। इसलिये अत्यन्त नाराज़ हो बलरामने कहा,—"कृष्ण! तुम्हें धिक्कार है। मैं नहीं जानता था, कि तुम इतने लोभी हो गये। खैर, अब तुम द्वारका जाओ। मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा।" यों कहकर बलरामजी उसी

समय विदेह नगर चले गये और तीन वर्षतक द्वारका नहीं आये।

इधर मणि लेकर अक्रूर भी द्वारका छोड़कर भाग गये थे। परन्तु कुछ दिनोंके बाद कृष्णने उन्हें अभय देकर बुला लिया और एक दिन समस्त यादव सरदारोंके सामने उनको बुला कर कहा, कि सत्राजितका स्यमन्तक मणि तुम्हारे पास है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूं। मैं उसे लेना नहीं चाहता। परन्तु कुछ लोग मुझपर सन्देह करते हैं। इसलिये मैं चाहता हूँ, कि तुम सबके सामने यह बात स्वीकार कर लो, कि मणि मेरे पास है। अक्रूरने सोचा, यदि मैं अस्वीकार करूँगा, तो कृष्ण अवश्य इस बातको प्रमाणित करनेकी चेष्टा करेंगे, इसलिये उन्होंने सबके सामने सब बात सचसच स्वीकार कर ली। सत्यभामा तथा बलरामकी इच्छा थी, कि मणि अक्रूरसे ले लिया जाये, परन्तु न्याय-निष्ठ श्रीकृष्णने ऐसा करना अनुचित समझा। *

* हरिवंशमें लिखा है, कि श्रीकृष्णने स्यमन्तक मणि स्वयं ले लिया था।

यद्यपि कुटिल मति दुर्योधन पाण्डवोंको हेय बनानेकी चेष्टा सदैव किया करता था, तथापि वे अपनी धार्मिकता, योग्यता, सरलता, सहनशीलता और सहिष्णुता आदि सद्‌गुणोंके कारण, जनसाधारणकी सहानुभूति प्राप्त करनेमें सफलता प्राप्त करते जाते थे। यह बात दुर्योधनको अत्यन्त असह्य होने लगी। उसने सोचा, कि यदि ये लोग इसी तरह प्रजाके प्रियपात्र बने रहेंगे, तो एक न एक दिन अपना पैतृक राज्य ले लेनेमें भी समर्थ हो जायेंगे। अतएव कोई ऐसी तद्‌बीर होनी चाहिये, जिसमें ये शीघ्र ही नेस्तोनाबूद हो जायें। यही सोचकर उसने अपने पिता धृतराष्ट्रसे जाकर कहा, कि पाण्डवोंके प्रति प्रजाकी सहानुभूति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। यदि हमलोग अभीसे सावधान न हो जायेंगे, तो भविष्यमें यह राजसिंहासन हाथसे निकल जायेगा और आपकी सन्तान पाण्डवोंकी अधी-नतामें परमुखापेक्षी बनकर रहेगी। अतएव अपने भावी वंश-

धरोंके कल्याणके लिये, शीघ्र किसी उपायसे यह कण्टक दूर करनेकी चेष्टा कीजिये।

पुत्रका कथन सुनकर राजा धृतराष्ट्रने कहा—"पाण्डव मेरे सगे भतीजे हैं। यह राज्य भी उन्हींका है। इसके अतिरिक्त वे निष्कपट भावसे मेरी यथोचित भक्ति करते हैं। ऐसी अवस्थामें उनपर किसी प्रकारका अत्याचार करना उचित नहीं है। यदि हमलोग उनपर किसी प्रकारका अत्याचार करेंगे, तो प्रजा अवश्य ही उनका साथ देगी। उस समय राज्यकी रक्षा मुशकिल हो जायगी।"

दुर्योधन बोला—"अपने भावी वंशधरोंकी भलाईके लिये, अपनी सन्तानोंको गुलामीसे मुक्त करनेके लिये, यदि आप युधिष्ठिर आदिको कुछ धन-सम्पत्ति देकर अलग कर देंगे, तो इसमें कुछ भी अनुचित न होगा। रही प्रजाकी असन्तुष्टिकी बात, सो मैं ठीक कर लूंगा। आप इन बातोंकी चिन्ता न करें।"

इस तरहकी बहुतसी उलटी-सीधी बातें समझाकर, कपटी दुर्योधनने अपने सरल हृदय पिताको राजी कर लिया। निश्चय हुआ, कि कुछ सम्पत्ति देकर, युधिष्ठिर आदिको कुछ दिनोंके लिये 'वारणावत' भेज दिया जाये। इस परामर्शके अनुसार एक दिन राजा धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरको अपने पास बुलाकर, वारणावत नगरकी शोभाका वर्णन करते हुए कहा, कि मैं कुछ दिनोंके लिये तुमलोगोंको वहां रखना चाहता हूं। वहां रहनेके लिये

एक सुन्दर मकान भी बनवा दिया गया है। तुम अपनी माताके साथ शीघ्र ही वहां चले जाओ।

सरल हृदय युधिष्ठिरने चुपचाप यह आज्ञा स्वीकार कर ली। उन्होंने यह पूछा भी नहीं, कि क्यों आप हमलोगोंको वारणावत भेज रहे हैं। अपनी अत्यन्त सरलता और धर्मपरायणताके कारण, उन्होंने मानों राजाकी दुरभिसन्धिको समझकर भी न समझा।

इधर दुराचारी दुर्योधनने अपने परम विश्वासी अनुचर पुरोचनकी अधीनतामें कतिपय चतुर कारीगरोंको वारणावत भेजकर, पाण्डवोंके रहनेके लिये लाख* आदि आग्नेय पदार्थोंके

---

* सुप्रसिद्ध मुसलमान विद्वान हजरत ख्वाजा हसन नज़ामी दहलवीने अपनी विख्यात पुस्तक 'कृष्णबीती' में 'लाखा मण्डप' या 'लाखा महल' का जिक्र करते हुए लिखा है, कि वर्त्तमान मेरठ नगरसे प्रायः सोलह-सत्रह मील दूर 'बरनावा' और 'बनौली' कस्बोंके निकट कृष्णा नदीके तटपर एक बहुत बड़ा टीला नजर आता है। उसके सामने ही एक बहुत बड़ा मैदान है। यहीं वह मशहूर लाखा महल था, जिसे दुर्योधनने पाण्डवोंके रहनेके लिये बनवाया था। सहृदय भावुक ख्वाजा साहबने कईबार जाकर उस विलुप्त प्राय स्मृति चिन्हको देखा है। ख्वाजा साहब लिखते हैं,—इस टीलेकी सबसे ऊंची चोटीपर एक दरगाह बनी हुई है, जिसमें हजरत मखदूम बदरूद्दीन चिश्तीका मजार (कब्र) है। यह मजार आजसे छः सौ वर्ष पहलेकी बनी हुई है। टीलेके निकट जो मैदान है, वह भी समतल भूमिकी अपेक्षा ऊंचा है। उसे देखनेसे प्रतीत होता है, कि यहां किसी जमानेमें अवश्य ही कोई बड़ी इमारत रही होगी। प्रमाण स्वरूप ख्वाजा

संयोगसे एक सुन्दर महल तैयार कराया और पुरोचनसे कह दिया था, कि जब ये लोग निश्चिन्तता पूर्व्वक वहां रहने लगें, तब सुयोग देखकर किसी दिन उस महलमें आग लगा देना, जिसमें ये वहीं जलकर भस्म हो जायें।

चाचाके आज्ञानुसार, एक दिन समस्त परिजनोंसे मिल-मिलाकर, पाण्डवोंने प्रसन्नता पूर्व्वक वारणावत नगरकी यात्रा की। जानेके समय महात्मा विदुरने॰ यावनी भाषामें, दुर्योधनकी साजिशका हाल युधिष्ठिरको अच्छी तरह समझा दिया और यह भी कह दिया, कि उस महलके मध्यभागमें एक खम्भेके नीचे मैंने एक गुप्त सुरंग भी बनवा दी है। विपत्तिके समय तुमलोग उसी सुरंगसे भागकर अपना प्राण बचा सकते हो। विदुरने जो कुछ कहा था, उसे युधिष्ठिरने भीमसेनको भी समझा दिया था।

इसके बाद वारणावत पहुँचकर पाण्डव उसी लाखवाले महलमें रहने लगे। दुर्योधनका अनुचर पुरोचन उन्हें जलाकर भस्म कर देनेका मौका देखने लगा। परन्तु इससे पहले ही एक दिन भीमसेन, उस घरको फूँक कर अपनी माता और भाइयोंके साथ विदुरके बताये हुए सुरंगसे निकल भागे। संयो-

साहबको वहां डेढ़ फीट गोल और प्रायः ३ इञ्च माटी ईंटें मिली थीं। लाखा महलके इस भग्नावशेषसे प्रायः डेढ़ मीलपर हिन्दुओंका तीर्थस्थान 'बाणगंगा' है।

॰ महात्मा विदुर धृतराष्ट्र तथा पाण्डुके सौतेले भाई थे। इनका जन्म एक दासीके गर्भसे हुआ था। ये धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदिके परम पण्डित, पाण्डवोंके हितैषी और विख्यात भगवद्भक्त थे।

गवश उस रातको वहां एक निषाधकी स्त्री अपने पाँच लड़कोंके साथ ठहरी हुई थी। पापी पुरोचनके साथ वह भी जल गई ! वारणावत-वासियोंको उस स्त्रीके ठहरनेकी खबर बिलकुल न थी। इसलिये आग बुझ जानेपर, पुरोचनके अतिरिक्त पांच और लाशें मिलनेपर उन्होंने समझा, कि अवश्य ही पुरोचनने ही यह गर्हित कर्म किया है और परमात्माकी इच्छासे पाण्डवोंके साथ स्वयं भी जल गया है !

इस दुर्घटनाका समाचार सुनकर, श्रीकृष्णको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने स्वयं वारणावत जाकर, इस बातकी जांच करनेका विचार किया। परन्तु इतनेमें शतधन्वाने मणिके कारण बेचारे सत्राजितकी हत्याकर डाली। इसलिये श्रीकृष्ण-को वारणावतकी यात्रा, कुछ कालके लिये, स्थगित रखनेके लिये बाध्य हो जाना पड़ा।

मणिवाले विवादकी निष्पत्ति होते ही, उन्होंने फिर वहां जानेकी तैयारी की। इतनेमें पाञ्चालपति महाराज यज्ञसेन द्रुपदने अपनी कन्या द्रौपदीके स्वयंवर-सभामें पधारनेके लिये निमन्त्रण भेजा। महाराज द्रुपदका निमन्त्रण पाकर श्रीकृष्ण सदलबल पाञ्चाल नगर चले गये और उधर हीसे वारणावत जाकर पाण्डवोंका संवाद लेनेका भी विचार पक्का कर लिया। इधर पाण्डव भी ब्रह्मचारी वेशमें घूमते-फिरते स्वयंवर-सभा देखनेकी इच्छासे पाञ्चाल नगरमें ही उपस्थित थे।

नगरके बाहर एक बड़े मैदानमें सभामण्डप बना था।

आर्य्यावर्तके प्रायः सभी बड़े-बड़े भूपालोंके अतिरिक्त, राजा धृत-राष्ट्रका पुत्र दुर्योधन भी कर्ण आदि प्रधान अनुचरोंके साथ, इस स्वयंवर-सभामें मौजूद था। उधर दर्शकोंकी मण्डलीमें ब्रह्मचारी वेषधारी पाण्डव भी बैठे हुए तमाशा देख रहे थे।

सबके उपस्थित हो जानेपर राजा द्रुपदके पुत्र युवराज धृष्ट-द्युम्नने उठकर आमन्त्रित भूपालोंको सम्बोधन कर कहा—"समागत नरेन्द्रवृन्द! इस सभाके मध्य भागमें जो ऊंचा खम्भा दिखाई दे रहा है, उसके सिरेपर एक चर्ख़ीके सहारे एक मछली लटका दी गई है और वह उस चर्ख़ीके साथ-साथ अनवरत घूम रही है। उस घूमती हुई मछलीकी परछांई, खम्भेके नीचे रखी हुई तेलकी कड़ाहीमें साफ़ दिखाई देती है। जो कोई धनुर्विद्या-विशारद मनुष्य तेलकी कड़ाहीमें मछलीका प्रतिविम्ब देखता हुआ, अपने सुतीक्ष्णवाणसे खम्भेके ऊपर घूमती हुई मछलीकी आँख छेद सकेगा वही राजकन्याका पाणि ग्रहण करनेका अधिकारी होगा।"

युवराज धृष्टद्युम्नकी सूचनाके अनुसार कितने ही राजाओं तथा राजकुमारोंने लक्षभेद करनेकी चेष्टा की, परन्तु विफल मनोरथ होकर लौट आये। अन्तमें दुर्योधनका इशारा पाकर उसका साथी कर्ण, जो उन दिनों विख्यात धनुर्धारी समझा जाता था, लक्ष्य भेद करनेके लिये उठा। उसे उठता देखकर राजकुमारी द्रौपदीने कहा, कि यह सारथीका पुत्र है, इसलिये यदि यह लक्ष्यभेद कर लेगा, तो भी मैं इससे विवाह न करूँगी। यह सुनते ही कर्ण लज्जित होकर बैठ गया।

कर्णके बैठ जानेपर अर्जुनने उठकर लक्ष्यभेद कर दिया। राजकुमारी द्रौपदीने प्रसन्नता पूर्व्वक विजयमाल उनके गलेमें पहना दिया।

श्रीकृष्ण यह दृश्य देखकर, अत्यन्त आनन्दित हुए। उन्होंने ब्राह्मणमण्डलीमें बैठे हुए ब्रह्मचारी वेषधारी पाण्डवोंको पहले ही पहचान लिया था और बलदेवजीसे भी कह दिया था।

इतने क्षत्रिय राजाओंके होते हुए, एक भिक्षुक ब्राह्मणका विजयी होना देखकर, राजसभामें खलबली मच गई। उपस्थित राजाओंके लिये यह बात अत्यन्त असह्य होने लगी। उन लोगोंने बलपूर्व्वक कन्या छीन लेनेके विचारसे, अर्ज्जुनपर आक्रमण कर दिया। यह देखकर वीरवर पाण्डव भी बाणसरासन लेकर, युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। सारी सभामें कोलाहल मच गया। राजाओंका यह अन्याय देखकर, श्रीकृष्णने राजाओंको सम्बोधन कर कहा,—"भूपालवृन्द! धर्मतः यह ब्रह्मचारी ही राजकन्याका अधिकारी है। आपलोग अन्याय पूर्व्वक इससे झगड़ा कर रहे हैं। इसलिये अब आप शान्त हो जायं। निष्प्रयोजन लड़ाई करना उचित नहीं।"

श्रीकृष्णके विचित्र बल-विक्रम और धार्मिकताका प्रभाव प्रायः समस्त देशमें फैल चुका था। इसलिये उनकी बात टालनेका किसीने साहस न किया। उनके बीचबचाव करते ही सारा झगड़ा तै हो गया।

स्वयंवर समाप्त हो जानेपर अन्यान्य राजे-महाराजे अपने
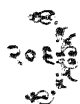
अपने स्थानोंपर चले गये, परन्तु श्रीकृष्ण नहीं गये। उन्होंने अपनी बुआ कुन्ती देवी और फुफेरे भाइयोंसे मिलकर, उनकी दुरावस्थाका हाल सुना। निरपराध पाण्डवोंपर कौरवोंके अत्याचारोंकी कथा सुनकर, वे अत्यन्त दुखी हुए और इस घोर अन्यायका प्रतिकार करनेकी तद्वीर सोचने लगे। इधर राजा द्रुपद अर्जुन* के साथ द्रौपदीके विवाहकी तैयारी करने लगे। इसलिये कृष्णको वहां कुछ दिन और ठहर जाना पड़ा। विवाहोत्सवके बाद उन्होंने यौतुक स्वरुप विचित्र वैदुर्य्य मणि, सुवर्ण-आभरण, उत्तमोत्तम वस्त्र, विविध गृह-सामग्री, बहु-संख्यक दासदासी, और कितने ही घोड़े-हाथी तथा रथ आदि पाण्डवोंको प्रदान किये। इस समय पाण्डवोंको इन चीजोंकी बड़ी आवश्यकता थी। क्योंकि वे बड़ी बड़ी दुरावस्थामें थे। युधिष्ठिरने बड़ी प्रसन्नतासे उन चीजोंको ग्रहण किया और श्रीकृष्णकी कृपा तथा सहायतासे, फिर राजोचित ठाटबाटसे रहने लगे। अन्तमें राजा धृतराष्ट्रको पाण्डवोंका पता मिल गया। उन्होंने महात्मा विदुरको भेजकर, उन्हें हस्तिनापुर बुला भेजा।

---

* पुराणोंमें लिखा है, कि द्रौपदीका विवाह पांचों पाण्डवोंसे हुआ था। परन्तु बहुतसे विद्वानोंने इस बातका घोर विरोध किया है और प्रबल प्रमाणों, तथा युक्ति-तर्कों द्वारा सिद्धकर दिया है, कि द्रौपदी केवल अर्जुनकी स्त्री थी।

१३

श्रीकृष्णकी अन्यान्य स्त्रियां.

महाराज द्रुपद तथा श्रीकृष्णसे परामर्श लेकर, पाण्डवोंने विदुरके साथ हस्तिनापुरकी यात्रा की। विछड़े हुए पाण्डवोंको पाकर, हस्तिनापुर-वासियोंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। इसके बाद धृतराष्ट्रने आधा राज्य देकर, उन्हें खाण्डव प्रदेशमें जाकर रहनेकी आज्ञा दी। पाण्डवोंने प्रसन्नता पूर्व्वक यह आज्ञा स्वीकार कर ली और खाण्डव प्रान्तके निकट इन्द्रप्रस्थ*नामक सुन्दर नगर बसाकर, सुख पूर्व्वक रहने लगे। श्रीकृष्णभी उनके साथ थे।

---

* पाण्डवोंका इन्द्रप्रस्थ नगर वर्त्तमान दिल्लीके निकट था। इस समय उसका स्मृति-चिन्ह भी विलुप्त हो गया है और उसी स्थानपर 'पुराना किला' नामक एक किला मौजूद है। कहते हैं, कि सम्राट् अकबरके पिता हुमायूं शाहने जिस समय दिल्ली बसाई थी, उस समय वहां एक प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष मौजूद था, उसीकी नींव पर हुमायूंने यह किला बनवाना आरम्भ किया था। परन्तु इतनेमें शेरशाह अफ़गानने दिल्लीपर चढ़ाई (सन् १५४०) कर दी। हुमायूं हारकर ईरानकी ओर भाग गया। इसलिये उसका वह किला अधूरा ही रह गया! हुमायूंके बाद शेरशाहने भारतपर

एक दिन श्रीकृष्ण और अर्ज्जुन शिकार खेलनेके लिये, वनमें गये। वहां यमुना नदीके तटपर उन्हें एक अत्यन्त रूपवती कन्या दीख पड़ी। अर्ज्जुनने उसके निकट जाकर, पूछा,—"तुम कौन हो? इस निर्ज्जन स्थानमें अकेली क्यों फिरती हो?"

कन्याने कहा—"मेरा नाम कालिन्दी है। मैं सूर्य्यकी पुत्री हूँ और पिताका आदेश लेकर यहीं रहती हूँ। मैंने श्रीकृष्ण-चन्द्रसे विवाह करनेकी प्रतिज्ञा की है और इसी उद्देश्यसे तप कर रही हूं।"

अर्ज्जुनने यह शुभ संवाद श्रीकृष्णको सुनाया। उन्होंने उसी समय कालिन्दीसे मिलकर बात-चीत की और इन्द्रप्रस्थ लाकर विधिपूर्व्वक उसका पाणिग्रहण किया। अन्तमें वर्षा-काल बीत जानेपर द्वारका चले आये।

अवन्ती नगरमें विन्द और अनुविन्द नामके दो राजे रहते थे। उनकी बहन मित्रविन्दाने स्वयंवरमें श्रीकृष्णपर मोहित होकर, विजयमाल उनके गलेमें डाल दिया। परन्तु वे दोनों दुर्योधनके वशीभूत थे। इसलिये उन्होंने अपनी बहनको श्रीकृ-ष्णसे विवाह करनेको मना किया। इसपर श्रीकृष्ण बल पूर्व्वक

कब्जा कर दिल्लीको अपनी राजधानी बनाया और उसके अधूरे किलेको पूरा कर उसका नाम 'दीनपनाह' रखा। उस किलेके अन्दर उसने एक मसजिद बनाई थी, जो अबतक मौजूद है। इसके सिवा वहीं उसने 'शेरमंजिल' नामकी एक दूसरी इमारत भी बनवाई थी, जिसे आजकल 'शेरमण्डल' कहते हैं।—लेखक।

मित्रविन्दाको हर लाये और द्वारका आकर विधि पूर्व्वक उसका पाणि ग्रहण किया।

अयोध्याके राजा नग्नजितने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी, कि जो महापुरुष एक ही बारमें मेरे निर्दिष्ट किये हुए सात बैलोंको नाथ सकेगा, उसके साथ मैं अपनी लड़की व्याह दूंगा। यह खबर पाकर कितने राजे तथा राजकुमार आये। परन्तु उन भीषणकाय बैलोंकी सूरत देखते ही, हिम्मत हारकर लौट गये। एकबार श्रीकृष्णजी अयोध्या पहुँचे और कौशल द्वारा बातकी बातमें सातों बैलोंको एक ही रस्सीमें नाथ डाला। यह देखकर नग्नजित अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपनी कन्या नग्नजितासे उनका विवाह कर दिया।

इसके अतिरिक्त श्रीकृष्णने दो और कन्याओंसे भी विवाह किया था। इनमें एकका नाम भद्रा था। यह जयनगर निवासी राजा ऋतुसुकृतिकी कन्या थी और दूसरीका नाम लक्ष्मणा था, जो मद्रदेशके नृपतिकी कन्या थी। इन दोनोंने स्वयंवरमें श्रीकृष्ण-पर मोहित होकर, उनके गलेमें जयमाल पहना दिया था। इस तरह श्रीकृष्णने कुल आठ कन्याओंसे विवाह किया था। उनके नाम ये थे—रुक्मिणी, जाम्बवन्ती, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्र-विन्दा, सत्या, भद्रा, और लक्ष्मणा।*

---

* श्रीकृष्णकी आठ स्त्रियोंके नाम हमने श्रीमद्भागवतके अनुसार लिखा है। अन्यान्य पुराणोंमें जो नाम लिखे हैं, वे इनसे नहीं मिलते और संख्या भी बढ़ जाती है।—लेखक।

१४
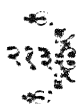
नरक-वध.

कामरूप प्रदेशकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुरका राजा नरक या भौम बड़ा बलवान, क्रूर और अन्यायी था। उसने अपने आसपासके राजाओंको जीतकर, अपनी राज्य-सीमाकी वृद्धिके साथ ही सोलह हज़ार कुँवारी कन्याओंको जबर्दस्ती पकड़कर, अपने किलेमें कैद्कर लिया था और देव-ब्राह्मणोंको भी बड़ा दुःख देता था। एक बार राजा नरकने अपनी विजयिनी सेना लेकर, देवराज इन्द्रकी राजधानी-पर चढ़ाई कर दी और उन्हें परास्तकर उनका महामूल्यवान राज-छत्र तथा उनकी माताका अद्भुत कुण्डल छीन लाया। बेचारे देवेन्द्र नरक द्वारा अपनी राजधानीसे विताड़ित होकर, श्रीकृष्णकी शरणमें आये और अपनी विपत्तिका हाल कहकर, सहायताकी प्रार्थना करने लगे। दुष्टोंका दमनकर शिष्टोंकी सहायता करना कृष्णके जीवनका प्रधान उद्देश्य था। इसलिये देवेन्द्रकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने तुरन्त ही प्राग्ज्योतिषपुरपर चढ़ाई कर दी।

राजधानीपर श्रीकृष्णके चढ़ आनेका संवाद पाकर, नरक

राजाने अपने सेनापति मुरको उनके मुकाबलेके लिये भेजा। वह अपनी महती सेना लेकर प्रबलवेगसे श्रीकृष्णपर चढ़ दौड़ा। दोनों ओरसे घोर-घमासान आरम्भ हुआ। बड़ी देरतक लड़ाई होनेके बाद, श्रीकृष्णने मुरको मार डाला। उसके मरनेपर स्वयं नरक श्रीकृष्णसे लड़ने आया और अन्तमें वह भी मारा गया। इसके बाद श्रीकृष्णने कैदखानेमें जाकर सोलह हज़ार बन्दिनी कुमारियोंको मुक्त किया * और नरकके पुत्र भगदत्तको उसका पैतृक राज सौंप कर, इन्द्रके यहां चले गये।

इस युद्धके समय उनकी प्यारी पत्नी सत्यभामा उनके साथ थीं। उन्होंने पारिजात-पुष्प पानेकी प्रार्थना की थी। इसीलिये श्रीकृष्णजी उन्हें साथ लेकर इन्द्रपुरी गये और इन्द्रका छत्र आदि, जो नरकने छीन लिया था, उन्हें प्रदान किया और पारिजात लेकर पुनः द्वारका लौट आये।

---

* पुराणोंमें लिखा है, कि श्रीकृष्णने उन सोलह हजार कन्याओंसे स्वयं विवाह कर लिया। परन्तु महाभारतमें इसका कोई जिक्र नहीं है।

१५

बाण-पराजय.

सुप्रसिद्ध भगवद्भक्त महात्मा प्रह्लादके वंशमें, बाण नामक एक महा बलवान राजा था। उसकी परम रूपवती कन्या ऊषा स्वप्नमें श्रीकृष्णजीके पौत्र अनिरुद्धको देखकर, उनपर आसक्त हो गई थी और खाना-पीना भूलकर दिनरात अनिरुद्धकी ही चिन्ता करने लगी थी। ऊषाकी यह दशा देखकर, उसकी अभिन्न हृदया सखी चित्रलेखा बहुत दुखी हुई। उसने एक दिन उसे एकान्तमें ले जाकर, उसकी उदासीका कारण पूछा। ऊषाने अपने अद्भुत स्वप्नका वृत्तान्त चित्रलेखाको सुनाकर कहा—"सखी, एक बार हरगौरीने मुझसे कहा था, कि तेरा पति तुझे स्वप्नमें मिलेगा। उनका कथन सत्य हुआ। जिस पुरुषको मैंने स्वप्नमें देखा है, उसे अपना हृदय अर्पणकर चुकी हूँ। अतएव अब मैं उसके सिवा किसी दूसरे पुरुषकी पत्नी नहीं हो सकती। परन्तु समझमें नहीं आता, कि वह रूपवान पुरुष कौन है और मुझे कैसे मिल सकेगा। जिस दिनसे स्वप्नमें मैंने उस अनुपम मूर्त्तिको देखा है, उसी दिनसे दिन रात चिन्ता-सागरमें डूबी रहती हूँ। उस युवककी कमनीय

कान्ति दिन-रात मानों आँखोंके आगे नाचा करती है। बहुत चेष्टा करनेपर भी मैं उसे भूल नहीं सकती।"

'यथा नाम तथा गुण' के अनुसार चित्रलेखा चित्रकलामें बड़ी निपुण थी। दिन-रात अच्छे अच्छे चित्र अङ्कित करना और देशके विख्यात पुरुषोंका चित्र संग्रह करना, उसका प्रधान काम था। नर-नाग, देव-पितर और गन्धर्व-किन्नर आदिके असंख्य सुन्दर-सुन्दर चित्र चित्रलेखाके अलबममें मौजूद थे।

अपनी सखी ऊषाकी मर्मव्यथाका हाल सुनकर, चित्रलेखाने उसे आश्वासन देकर कहा—"सखी ऊषा, तू इतनी चिन्ता न कर, धैर्य्य-धारण कर। मैं यथासाध्य तेरे चितचोरका पता लगाऊँगी। संसारके सुरूपवान पुरुषोंके असंख्य चित्र मेरे पास मौजूद हैं। एकबार तू उन चित्रोंको देख ले। सम्भव है, उन्हींमेंसे किसीको तूने स्वप्नमें देखा हो।"

यह कहकर चित्रलेखाने अपनी चित्रोंकी पिटारी लाकर ऊषा-के सामने रख दिया और उसमेंसे एक एक चित्र निकाल कर उसे दिखाने लगी। अन्तमें उसने श्रीकृष्णका चित्र दिखाया। उस चित्रको देखते ही ऊषा अत्यन्त प्रसन्न हुई। बोली—"जिस मनोहर युवकको मैंने स्वप्नमें देखा है, वह निसन्देह इसी वंशका है। अतएव इस वंशके जितने चित्र तेरे पास हों, उन्हें चुनकर निकाल दे।"

चित्रलेखाने कृष्णके सभी पुत्रों और पौत्रोंका चित्र निकाल-कर अपनी सखीको दिखाया। उनमेंसे अनिरुद्धका चित्र देखकर

ऊषाने कहा,—"बस यही मेरे जीवनधन प्रियतमका चित्र है। परन्तु हाय! इनसे मेरी भेंट कैसे होगी?"

चित्रलेखाने ऊषाको धीरज देकर कहा,—"यह चित्र यदुवंशावतंस श्रीकृष्णजीके पौत्र अनिरुद्धका है। अब तू कोई चिन्ता न कर। मैं उनसे तुझे मिला दूँगी।"

चित्रलेखा कोई साधारण स्त्री न थी। चित्रकलाके सिवा उसमें और भी कितने अद्भुत गुण मौजूद थे। एक दिन वेश बदल कर वह द्वारका पहुँची और रातको शय्या समेत अनिरुद्धको, शायद आकाशयानपर चढ़ाकर उड़ा लाई।

वाणके महलोंमें अनिरुद्ध और ऊषा गन्धर्व-विधिसे विवाह कर आनन्द मनाने लगे। बहुत दिनोंतक इस बातकी किसीको खबर न हुई। परन्तु इस तरहकी बात कबतक छिपी रह सकती थी। चार महीनेके बाद अन्तमें वाणको पता लग ही गया, कि ऊषाके महलमें कोई पुरुष टिका है। इस संवादके सुनते ही, वह क्रोधके मारे आग-बबूला हो गया और अनिरुद्धको पकड़वाकर कैद कर लिया। बेचारी ऊषाने अपने पतिको मुक्त करनेकी बड़ी चेष्टा की; संकोच, सम्भ्रम भूलकर भरी सभामें अनिरुद्धके निकट जा बैठी। मानों सत्याग्रह करनेपर उतारू हो गई। इसका फल यह हुआ, कि वाणने अनिरुद्धको प्राण-दण्ड तो नहीं दिया, परन्तु कैद कर रखा।

इधर एकाएक शय्या समेत अनिरुद्धके गायब हो जानेसे सारे द्वारका नगरमें हलचल मच गई थी। श्रीकृष्णने ढूँढ़-खोज

करनेमें कोई त्रुटि न की। परन्तु जब कहीं कुछ पता न चला, तब लाचार होकर बैठ गये। इतनेमें एक दिन देवर्षि नारदजी घूमते फिरते आ पहुँचे। उन्हें अनिरुद्धके कैदकी बात मालूम थी। उन्होंने सारी कथा श्रीकृष्णसे कही और यह भी बता दिया, कि वाण महावलवान और पराक्रमी है, वह सीधी तरहसे अनिरु-द्धको कदापि न छोड़ेगा।

नारदजीकी जबानी सारी कहानी सुनकर, श्रीकृष्णने यदु-वंशियोंकी महती सेना लेकर वाणकी राजधानी शोणितपुरपर चढ़ाई कर दी। श्रीकृष्णके वलपौरुषकी बात किसीसे छिपी न थी। इसलिये उनकी चढ़ाईकी खबर पा, वाणके मन्त्रियोंने उसे वहुत समझाया, कि आप अनिरूद्धको रिहाई देकर श्रीकृष्णसे सुलह कर लें। परन्तु महा अभिमानी वाणको यह बात पसन्द न आई। वह श्रीकृष्णका आक्रमण रोकनेके लिये अपनी सेना लेकर तुरन्त मैदानमें आकर डट गया। दोनों सेनाओंमें भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। वाण भगवान शंकरका परम भक्त था, इसलिये इस युद्धका समाचार पाकर, वे भी अपनी प्रेत वाहिनी लेकर वाणकी मदद करने आये। घोर घमासान होने लगा। अन्तमें वाणका पक्ष निर्वल देखकर, शङ्करजीने बीच-बचाव कर दिया। वाणका प्राण बच गया।

इसके वाद उसने शास्त्र-विधिके अनुसार अनिरूद्ध और ऊषाका विवाहकर दिया। विजयका डंका वजाते हुए पौत्र तथा पौत्र-वधूके साथ श्रीकृष्ण द्वारका आये।

१६
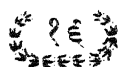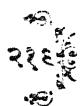
कृष्ण और पुण्डरीक.

श्रीकृष्णकी अलौकिक क्षमता और उनका अद्भुत कार्य्य कलाप देखकर, लोग उन्हें ईश्वरका अवतार समझने लगे थे। वे जहाँ कहीं जाते थे, वहीं उनकी पूजा होती थी और लोग अवनत शिर हो उनके आदेशोंका पालन किया करते थे। श्रीकृष्णकी ऐसी प्रतिपत्ति देखकर कन्तित प्रदेशके पुण्डरीक नामक राजाके मनमें बड़ी ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उसने श्रीकृष्णके वेश-भूषाकी नकल की और अपनेको ईश्वरका अवतार कहने लगा। वसुदेवके पुत्र होनेके कारण लोग श्रीकृष्ण को 'वासुदेव' कहते हैं। सो पुण्डरीक भी अपनेको वासुदेव कहने लगा। यहांतक कि धीरे-धीरे बहुतसे मनुष्योंको उसने अपना अनुयायी बना लिया और जहांतहां बल प्रयोग द्वारा सर्व साधारणसे अपना पैर पुजवाने लगा। कुछ दिनोंके बाद उसकी स्पर्द्धा इतनी बढ़ गई, कि वह अपनेको असली वासुदेव और श्रीकृष्णको नक़ाल बनाने लगा।

एक दिन उसने द्वारकामें दूत भेजकर श्रीकृष्णसे कहला भेजा, कि मैं वासुदेव हूँ, पृथिवीका भार उतारनेके लिये मैंने

अवतार धारण किया है। तुम वृथा मेरी नकलकर हास्यास्पद बन रहे हो। तुम्हें चाहिये, कि यथासाध्य शीघ्र अपना वेशभूषा परित्याग कर वासुदेव कहाना छोड़ दो और मेरी शरणमें आकर क्षमा प्रार्थना करो, नहीं तो मैं बल पूर्वक तुम्हें इसके लिये बाध्य करूंगा। यदि तुम्हें यह भी स्वीकार न हो, तो आकर मेरे साथ युद्ध करो। पुण्डरीकका उद्दण्डता पूर्ण सन्देशा सुनकर, श्रीकृष्ण हँस पड़े। उन्होंने दूतसे कहा, कि अपने प्रभुसे जाकर कह देना, कि मैं शीघ्र ही उनके प्रति अपना शस्त्रास्त्र छोड़ूंगा और लड़ाईके मैदानमें कुत्ते और शृगालादि उनके शरणागत होंगे।

पुण्डरीकको उसकी उद्दण्डताका उत्तर देकर, श्रीकृष्णने युद्धकी तैयारी कर दी। इधर वह भी लड़ाईकी तैयारी करने लगा। तत्कालीन काशीका राजा उसका प्रधान अनुयायी और मित्र था। इसलिये वह भी उसकी सहायताके लिये तैयार हुआ।

यथासमय दलबल सहित पहुंचकर श्रीकृष्णने पुण्डरीकपर आक्रमण किया।* घोर संग्रामके बाद पुण्डरीक अपने साथी काशिराज सहित समरशायी हुआ। श्रीकृष्ण विजय दुन्दुभी बजाते द्वारका लौट आये।

कुछ कालके उपरान्त काशिराजके पुत्रने अपने पिताकी मृत्युका बदला लेनेके लिये एक राक्षसीको द्वारका भेजा, जो बलदेवजीके हाथोंसे मारी गई थी।

---

* कहीं कहीं लिखा है, कि पहले पुण्डरीकने ही चढ़ाई की थी।
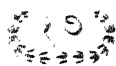
सुभद्रा-हरण

उपर्युक्त घटनाके कुछ दिनोंके बाद, श्रीकृष्णके परम प्रिय मित्र अर्ज्जुनने, भारतके विभिन्न तीर्थस्थानोंमें भ्रमण करते हुए, प्रभास-क्षेत्रमें पदार्पण किया। प्रभास क्षेत्र द्वारकाके निकट ही होनेके कारण, श्रीकृष्ण उनसे जाकर मिले और बड़े प्रेमसे अपने साथ लिवा लाये। द्वारका-वासियोंने बड़े ठाट-बाटसे अर्ज्जुनका स्वागत किया। जिस दिन अर्ज्जुनने द्वारकामें प्रवेश किया, उस दिन वहां खूब आनन्दोत्सव मनाया गया। छोटे बड़े सभी कृष्ण-सखासे मिलकर प्रसन्न हुए। राजा उग्रसेन और वसुदेव आदि गुरुजनोंने अर्ज्जुनको हृदयसे लगाकर आशीर्वाद दिया। समवयस्कोंने प्रेम पूर्व्वक गले लगाया।

इन्हीं दिनों रैवतक पर्वतपर अन्धक और यदुवंशियोंका महान् उत्सव आरम्भ होनेवाला था। इसलिये श्रीकृष्णके अनुरोधसे अर्ज्जुन भी वह उत्सव देखनेके लिये ठहर गये। पहाड़तलीकी विस्तृत तथा सुरम्य भूमिपर, नाना प्रकारके खेल-तमाशेका आयोजन किया गया था। स्थान-स्थानपर मनोहर बाजे बजते

थे। कहीं नृत्य-गीतादि होता था और कहीं अन्यान्य प्रकारके चित्त-विनोद्कारी खेल होते थे। द्वारकावासी आवाल वृद्ध वनिता अपनी अपनी हैसियतके मुताविक, अच्छे वस्त्राभूषण धारण कर, इधरसे उधर टहलते हुए मेला देख रहे थे। झुण्डकी झुण्ड स्त्रियां भी प्रसन्नता पूर्व्वक फिरती हुईं, खेल-तमाशे देख रही थीं। श्रीकृष्ण भी अपने मित्र अर्ज्जुनका हाथ थामे टहल रहे थे और नाना प्रकारकी वातें कर रहे थे। अन्यान्य ललनाओंके साथ श्रीकृष्णकी छोटी वहन परम रूपवती कुमारी सुभद्रा भी सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कर मेला देखने आई थी।

हठात् सर्वाङ्ग सुन्दरी सुभद्राको देखकर, अर्ज्जुनका चित्त चञ्चल हो उठा। वे अनिमिष नयनोंसे उसकी अनुपम सौन्दर्य्य-शोभा देखने लगे। अर्ज्जुनकी विह्वलता देखकर श्रीकृष्णने हँसते हुए कहा—“वाह भाई! वनचारी होकर भी कामके दाममें फंस गये?”

कृष्णकी व्यंगपूर्ण वाणी सुनकर अर्ज्जुन चौंक पड़े और अपनी इस मानसिक दुर्वलताके कारण किञ्चित सङ्कुचित होकर वोले,—“मित्र! वास्तवमें इस सुन्दरी किशोरीका अनुपम रूप देखकर, मन मुग्ध हो गया है! यह किसकी कन्या है?”

श्रीकृष्ण—यह मेरी सौतेली वहन सुभद्रा है।

अर्ज्जुन चुप रह गये। लज्जाके कारण नज़र नीची हो गई। यह देखकर कृष्णने कहा—“तुम्हारे जैसे सुयोग्य और वीर पुरुषसे यदि सुभद्राका विवाह हो जाये, तो कमसे कम मेरे

युधिष्ठिर और कुन्ती देवीने प्रसन्नता पूर्व्वक श्रीकृष्णके प्रस्तावका अनुमोदन किया। बड़े भाई और माताकी अनुकूल अनुमति पानेपर, अर्ज्जुन द्वारकामें ठहरकर उपयुक्त अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे।

इसी बीचमें एक दिन सुभद्रा देव-दर्शनके लिये रैवतक पर्वत-पर गई। उपयुक्त अवसर देखकर अर्ज्जुन भी श्रीकृष्णकी रायसे शिकार खेलनेके बहाने रथपर सवार हो, रैवतककी ओर चले। जिस समय सुन्दरी सुभद्रा देव-दर्शन कर पर्वतकी प्रदक्षिणा करती हुई घरकी ओर लौट रही थी, उसी समय अर्ज्जुनने उसे उठाकर रथपर बैठा लिया और सारथीको शीघ्र रथ चलानेकी आज्ञा दे दी। हवासे बातें करता हुआ रथ इन्द्रप्रस्थकी ओर दौड़ने लगा।

अनुचरोंके मुँहसे अर्ज्जुनकी इस धृष्टताकी खबर सुनकर, वीर यदुवंशी अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उसी समय भयङ्कर रण-भेरी बजने लगी। देखते-देखते सभी वीर यादव एकत्र होकर अर्ज्जु-नको, उसके कृतकर्मका मज़ा चखानेके लिये तैयार हो गये। सारथियोंको शीघ्र रथ तैयार करनेकी आज्ञाएँ दी जाने लगीं। वीर गण युद्ध-सज्जासे सजधजकर तैयार हो गये। यह सब कुछ हो रहा था, परन्तु श्रीकृष्ण चुप थे। उन्हें इस तरह मौन देख कर, बलदेवने कहा—"वीरो, ठहरो, शीघ्रता न करो। जरा कृष्णसे भी पूछ लो, कि उनकी क्या राय है।" इसके बाद उन्होंने श्रीकृष्णको अपने निकट बुलाकर पूछा—

"क्यों कृष्ण! सब कुछ सुनकर भी तुम चुप कैसे हो? इस समय सभी यदुवंशी तुम्हारा मुँह ताक रहे हैं। दुराचारी अर्ज्जुनने हमलोगोंका घोर अपमान किया है। मैं किसी तरह उसको क्षमा नहीं कर सकता। मैं अकेला ही जाकर समस्त कुरुकुलका नाश कर डालूंगा। तुम्हारे ही कारण हमलोगोंने उस कुलपांशुलकी इतनी खातिरदारी की है। अब मालूम हुआ, कि वह इस सेवासत्कारका पात्र नहीं था। शीघ्र बोलो, तुम्हारी क्या राय है?"

इतना कहकर बलदेव चुप हो गये। उस समय समस्त यादव मण्डलीमें सन्नाटा छाया हुआ था। लोग श्रीकृष्णका अभिमत जाननेके लिये उत्सुक हो रहे थे। कृष्णने गम्भीरता पूर्व्वक कहा—"आपलोग वृथा चञ्चल हो रहे हैं। अर्ज्जुनने कोई अनुचित कार्य्य नहीं किया है। क्योंकि कन्या-हरण करना क्षत्रियोंका धर्म है। उसके इस कृत्यसे हमलोग अपमानित नहीं वरन् सम्मानित हुए हैं। कुल, शील, विद्या, बुद्धि और वीरतामें अर्ज्जुन अद्वितीय है। उससे बढ़कर उपयुक्त पात्र सुभद्राको कहां मिलता? इसके लिये हमलोगोंको प्रसन्न होना चाहिये। मेरी तो राय है, कि किसीको भेजकर अर्ज्जुनको लौटा लिया जाये और विधि पूर्व्वक सुभद्राके साथ उसका विवाह कर दिया जाये। वृथा लड़ाई झगड़ा करनेमें कुछ लाभ नहीं है। क्योंकि यदि लड़ाईमें वह आप लोगोंको परास्तकर निकल भागा, तो और भी बदनामी होगी। इसलिये विवाद न कर पाण्डवोंके साथ यह नवीन

सम्बन्ध स्थापित कर लेना ही हमलोगोंके लिये समीचीन होगा।"

सारांश यह, कि बहुत समझा-बुझाकर श्रीकृष्णने बलदेव आदिको शान्त किया। इसके बाद एक धावन भेजकर अर्ज्जुन और सुभद्राको वापस लौटाया तथा शुभ मुहूर्त्तमें बड़ी धूमधामके साथ दोनोंका विवाह करा दिया। विवाहके पश्चात् कुछ दिनोंतक द्वारकामें रहकर अर्ज्जुन अपनी नवोढ़ा वधूके साथ इन्द्रप्रस्थ चले गये।

अर्ज्जुनके चले जानेपर श्रीकृष्ण और बलदेव अपने ज्ञाति कुटुम्बियों सहित, धन, रत्न, वस्त्र, अलंकार, हाथी, घोड़ा और रथ आदि विविध दहेज-सामग्री लेकर इन्द्रप्रस्थ गये। इनलोगोंके आगमनका संवाद पाकर, राजा युधिष्ठिरने अपने भाई नकुल और सहदेवको उनकी अगवानीके लिये भेजा। समस्त इन्द्रप्रस्थ नगर नाना प्रकारके ध्वजा-पताकाओंसे सुसज्जित किया गया। घर-घर आनन्द-मंगल होने लगा। हाट-बाट, गली-कूचोंमें चन्दन मिश्रित सुगन्धित जलका छिड़काव कराया गया। स्वयं पुर द्वारपर आकर राजा युधिष्ठिरने अतिथियोंकी अभ्यर्थना की और अत्यन्त आदर पूर्व्वक ब्राह्मण-मण्डलीके साथ लिवाकर राजमहलमें गये।

बहुत दिनोंतक इन्द्रप्रस्थमें आनन्द पूर्व्वक बिताकर, बलदेव तो सदल बल द्वारका चले आये, परन्तु अर्ज्जुनके पास कुछ दिन रहकर शिकार आदि खेलनेकी इच्छासे श्रीकृष्ण ठहर गये।

१८
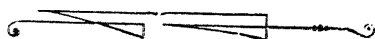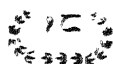
खाण्डव-दाह

राजा युधिष्ठिरकी नई राजधानी इन्द्रप्रस्थके निकट खाण्डव वन नामका एक सुविस्तृत और घनघोर अरण्य था। उसमें कितने ही हिंसक प्राणी, कुछ बनैली जातियाँ और दानव आदि रहते थे। एक बार श्रीकृष्ण अपने मित्र अर्ज्जुनके साथ उसी वनके निकट शिकार खेलनेकी इच्छासे गये थे। यमुना नदीके तटपर इन लोगोंका खीमा पड़ा हुआ था। बहुतसे हिंसक जीवोंका शिकार कर, दोनों मित्र अपने सुन्दर खीमेंमें बैठे हुए वार्त्तालाप कर रहे थे। इतनेमें अरुण वस्त्रधारी तप्तकाञ्चन वर्ण, तेजपुञ्ज एक ब्राह्मण आकर सामने खड़ा हो गया। दिव्य मूर्त्ति ब्राह्मणको देख, कृष्ण और अर्ज्जुनने उठकर उनकी अभ्यर्थनाकी और समादर पूर्व्वक उचित आसन देकर बैठाया। आसन ग्रहण करनेपर ब्राह्मणने कहा—"मेरा नाम अग्नि है। मैं खाण्डव वन जलाना चाहता हूँ। क्योंकि यह विस्तृत उर्व्वरा भूमि बिल्कुल बेकार पड़ी हुई, खूँखार जानवरोंका आवासस्थल बन गई है। मैं इन हिंसक प्राणियोंका नाश कर देना चाहता हूँ।

परन्तु इन्द्र मेरे इस कार्य्यमें वाधा प्रदान करते हैं। इसलिये यदि आपलोग मेरी सहायता करें, तो मैं अनायास ही यह कार्य्य कर सकता हूं। मैं इससे पहले लोकपति ब्रह्माजीके पास गया था। उन्होंने कहा, कि तुम कृष्ण और अर्ज्जुनके पास जाकर सहायताकी प्रार्थना करो। वे दोनों नर-नारायण-स्वरूप हैं। उनकी सहायतासे तुम निश्चय सफलता प्राप्त कर सकोगे। ब्रह्माजीके इस आदेशको शिरोधार्य्य कर, मैं आपलोगोंके निकट साहाय्य-प्रार्थी होकर आया हूँ। आशा है, कि आपलोग इस शुभ कार्य्यमें अवश्य मेरा हाथ बटायेंगे।"

ब्राह्मणकी प्रार्थना सुनकर अर्ज्जुनने कहा—"हमलोग इस कार्य्यमें आपकी सहायता करनेको प्रस्तुत हैं। मेरे पास युद्धके शस्त्रास्त्र भी बहुत हैं। परन्तु इन्द्रका मुकाबला करने लायक धनुष और रथ नहीं है। इसके अतिरिक्त बन्धुवर श्रीकृष्णजीके पास भी इस समय कोई अच्छा अस्त्र-शस्त्र मौजूद नहीं है। यदि आप अस्त्र-शस्त्र और एक अच्छे रथका प्रबन्ध कर सकें, तो हम अभी आपकी सहायता करनेके लिये तैयार हैं।"

यह सुनकर अग्निने वरुणको बुलाकर कहा, कि सोमराजका दिया हुआ, कपिध्वज रथ, गाण्डीव धनुष, अक्षय तुरीण और सुदर्शनचक्र आपके पास मौजूद हैं। कृपाकर आप उन्हें मुझे प्रदान करें। क्योंकि मैं इन महावीरोंकी सहायतासे एक महत् कार्य्य सम्पादन करना चहता हूँ।

अग्निकी प्रार्थनाके अनुसार वरुणने तत्काल सब सामान
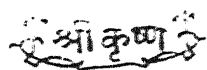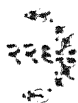
लाकर उन्हें प्रदान किये। अग्निने रथ, धनुष और तरकस अर्जुनको तथा चक्र श्रीकृष्णको प्रदान कर कहा—"ये दिव्यास्त्र बड़े ही अद्भुत हैं। इनकी समता करनेवाले हथियार अभीतक किसी दूसरेके पास नहीं हैं। सुदर्शन चक्रकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है, कि शत्रुओंका संहारकर, यह फिर अपने अधिकारीके पास लौटकर चला आता है।"

उपर्युक्त रथ और हथियार पाकर, श्रीकृष्ण और अर्जुनने प्रसन्नता पूर्व्वक कहा—"अब आप निःशङ्क होकर खाण्डव वन जलाना आरम्भ कर दें। हमलोग वनकी चारों ओर घूमकर निगरानी करेंगे। हमारे रहते-रहते किसीको आपके कार्य्यमें बाधा देनेकी हिम्मत न पड़ेगी।"

दोनों महावीरोंकी सहायता पाकर, अग्निदेव शतशिखा विस्तार पूर्व्वक खाण्डव-दाह करने लगे। श्रीकृष्ण और अर्जुन वनके उभय पार्श्वमें रहकर अग्निके उत्तापसे भागनेवाले हिंसक प्राणियों-का वध करने लगे। यह खबर सुनकर इन्द्र अत्यन्त कुपित हुए और अपनी देववाहिनी लेकर, खाण्डव वनकी रक्षाके लिये तुरन्त चढ़ दौड़े। परन्तु महाबल पराक्रान्त श्रीकृष्ण और अर्जुनके सामने खड़ा रहना सहज काम न था। अन्तमें इन्द्रको हार माननी पड़ी। अग्निने स्वच्छन्दता पूर्व्वक समस्त वन जलाकर खाक कर डाला।*

---

* इस पौराणिक कथापर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेवाले विद्वा-नोंका मत है, कि इन्द्रप्रस्थके निकट खाण्डव वन नामका जो वृहत् अरण्य

खाण्डव वनके दानववंशमें मय नामक एक विश्वविख्यात शिल्पकला-विशारद पुरुष रहता था। जिस समय वनमें आग लगाई गई थी, उस समय उसने श्रीकृष्ण और अर्ज्जुनके पास आकर कहा, कि मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपलोगोंके शरणमें हूं। उसकी प्रार्थना सुनकर अर्ज्जुनने उसे जलनेसे बचा लिया था। इस उपकारके लिये मयने अत्यन्त कृतज्ञता पूर्व्वक कहा--"आपने मेरी रक्षाकर मेरा बड़ा उपकार किया है। मैं उसके प्रत्यु-पकारमें आपकी कौनसी सेवा करूं ?"

अर्ज्जुनने कहा—"परोपकार करना हमारा धर्म है। उसका बदला हम कदापि नहीं ले सकते।"

मय बोला--"परन्तु आपकी कोई सेवा करनेकी मेरी बड़ी इच्छा है। अतः जिस तरह आपने कृपाकर मेरा प्राण बचाया है, उसी तरह यह अभिलाषा भी पूरी कीजिये।"

अर्ज्जुन—यदि नितान्त ही तुम्हारी यही इच्छा है, तो श्रीकृ-ष्णजीका कोई कार्य्य कर दो। मैं अपने किये उपकारके बदले तुमसे कोई कार्य्य कराना उचित नहीं समझता।

था, उसमें नाना प्रकारकी असभ्य जातियां रहती थीं। कृष्ण और अर्ज्जुनने उन जङ्गली जातियोंको जीतकर, उस भूभागको अपने राज्यमें मिला लिया और जङ्गलको जलाकर उसे उपजाऊ भूमि बना दिया। इस भूमिपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये उन्हें कठिन लड़ाइयाँ करनी पड़ी थीं। अन्तमें इनकी विजय हुई और सारे देशमें इनके बलका सिक्का जम गया। इसी बातको पौराणिकोंने अपनी अलङ्कारिक भाषामें वर्णन किया है।
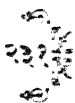
शिल्पी मयका अत्याग्रह देखकर श्रीकृष्णने कहा,—"यदि मेरा कोई कार्य्य कर देनेकी तुम्हारी नितान्त ही इच्छा है, तो राजा युधिष्ठिरके लिये एक ऐसा सभा-भवन बना दो, जिसके टक्करका कोई भवन संसारमें न हो।"

श्रीकृष्णके आदेशानुसार मयने बड़ी दूर-दूरसे आवश्यक सामान संग्रह कर, गगनचर, महाघोर, शुक्तिवर्ण, आयुधधारी आदि आठ हजार कारीगरों और मजदूरोंकी सहायतासे चौदह महीनेमें एक विचित्र सभा-भवन तैयार किया। इस अद्वितीय भवनकी टक्करका भवन उन दिनों त्रिलोकमें भी नहीं था। यह सुविशाल भवन पाँच हज़ार हाथकी परिधिमें था। चारों ओर नाना प्रकारके मनोहर पुष्प-वृक्षोंसे परिपूरित उद्यान लगा था। भवनके निकट ही एक सुन्दर सरोवर बना था। सरोवरकी सीढ़ियाँ स्फटिक पत्थरकी थीं और उनमें रंगविरंगे मणि जड़ित थे। उसके आईनेकी भाँति स्वच्छ सलिलमें लाल, पीली, हरी, नीली और सुनहरी मछलियाँ तैरती फिरती थीं। उस सरोवरका जल इतना साफ़ था, कि उसकी तहकी भूमितक दिखाई पड़ती थी और सहसा कोई समझ नहीं सकता था, कि यह जलपूर्ण स्थान है। सभा-भवनका भीतरी दृश्य और भी विचित्र था। वहांकी सुन्दरता और विचित्रता देखकर बड़े-बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धि चकरा जाती थी। अस्तु।

खाण्डव-दाहके पश्चात् कुछ दिन और इन्द्रप्रस्थमें रहकर श्रीकृष्णने पाण्डवों, कुन्तीदेवी और सुभद्रासे मिलकर द्वारकाके

लिये प्रस्थान किया। पाण्डवोंने प्रेमाश्रु विसर्ज्जन कर बड़े कष्टसे श्रीकृष्णको विदा किया।

१६
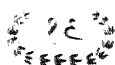
राजसूय यज्ञका परामर्श.

सभा-भवन तैयार हो जानेपर, राजा युधिष्ठिरने एक बृहत् यज्ञानुष्ठान करनेका आयोजन किया। देशके बड़े-बड़े विद्वानों और ऋषि-मुनियोंके अतिरिक्त अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, और कन्नौज आदि प्रदेशोंके नृपतियोंको भी निमन्त्रण भेजा गया। यथा समय बड़ी धूमधामसे यज्ञकी पूर्णाहुतिकर नृपालों सहित राजाने सभा-भवनमें प्रवेश किया। सभाकी शोभा देखकर, उपस्थित राजा और अन्यान्य दर्शक आश्चर्य्यमें पड़ गये। सबने मुक्त कण्ठसे कारीगरोंकी निपुणताकी प्रशंसा की।

श्रीकृष्णकी कृपा और बलवान भाइयोंके बाहुबल द्वारा राजा-युधिष्ठिरका राज्य खूब विस्तृत हो गया था। बहुतसे राजे महाराजे उनका सम्मान करने लगे थे। उनकी न्याय-निष्ठा और धर्म्म-परायणताकी ख्याति सुनकर, देश-देशकी प्रजा भी आकर उनके राम-राज्यमें निवास करने लगी थी। तिसपर इस अनुपम सभा-भवनको देखकर, उपस्थित राजाओंके मनपर उनके ऐश्वर्य्यकी छाप सी पड़ गई!

राजा युधिष्ठिरके यज्ञोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये कतिपय प्रतिष्ठित विद्वानोंके साथ देवर्षि नारदजी भी उपस्थित थे। नारदजी 'रमता योगी' थे। सदैव इधर-उधर भ्रमण कर, भगवद्भक्तिका प्रचार करना उनका प्रधान काम था। उन्होंने संसारमें भ्रमण कर कितने ही राजाओं, देवताओं और असुरोंकी सभायें और उनका ऐश्वर्य्य देखा था। परन्तु ऐसी विचित्रतापूर्ण राजसभा किसीकी न थी। इसलिये नारदजीने इसके निर्माण-कौशलकी बड़ी प्रशंसा की। इसके बाद उन्होंने राजा युधिष्ठिरके बाहु-बल और ऐश्वर्य्यका बखानकर, उनकी शासन-पद्धतिके सम्बन्धमें पूछताछ कर कहा—"राजन्, तुममें राज-शासन करनेकी यथेष्ट योग्यता है। तुम्हारे भाई भी तुम्हारे वशीभूत हैं और तुम्हारा सैन्यबल भी किसीसे कम नहीं है। इसलिये अब तुम एक राजसूय यज्ञका अनुष्ठान कर, सार्वभौम नृपतिकी पदवी धारण कर लो।* तुम्हारे पिताकी भी यही इच्छा थी।"

---

* प्राचीन कालमें यह रिवाज था, कि जो राजा अपनेको सार्वभौम नृपति या सम्राट् पदके उपयुक्त समझता था, वह एक यज्ञ विशेषका आयोजन कर एक घोड़ेके गलेमें विजय-पत्र बाँधकर छोड़ देता था और उसके साथ एक बलवान रक्षक नियुक्त कर देता था। घोड़ा सालभर तक देशके विभिन्न प्रान्तोंमें घूमा करता था। यदि किसी प्रान्तिक राजाको यज्ञानुष्ठानवाले राजाको सम्राट् स्वीकार करनेमें आपत्ति होती थी, तो वह उस घोड़ेको पकड़ लेता था और युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाता था। परन्तु जो राजा उसे सम्राट् माननेके लिये तैयार होता था, वह उसकी वश्यता
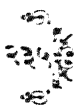
नारदजीका यह प्रस्ताव सबको पसन्द आया। महर्षि द्वैपायन व्यास, मन्त्रि-मण्डल और राजाके चारों भाइयोंने प्रसन्नता पूर्व्वक इस प्रस्तावका अनुमोदन और समर्थन किया। परन्तु राजा युधिष्ठिर बड़े सावधान और धर्मभीरु थे। श्रीकृष्णकी योग्यता और जानकारीपर उन्हें अटल विश्वास था। यद्यपि उनके सभी हितैषियोंने एक स्वरसे उन्हें राजसूय यज्ञ करनेका परामर्श दिया था, परन्तु इससे उन्हें सन्तोष न हुआ। उन्होंने कहा, कि जबतक श्रीकृष्णचन्द्रकी सम्मति न ले लूंगा, तबतक मैं इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं करूंगा। क्योंकि श्रीकृष्णजी राज-नीति और धर्म-नीतिके पूर्ण ज्ञाता हैं। इसके सिवा वे हमारी योग्यताके भी जानकार हैं। इसलिये उनकी अनुमतिके अनुसार कार्य्य करना ही हमारे लिये उचित होगा।

इसके बाद श्रीकृष्णको बुलानेके लिये दूत भेजा गया। उनके आनेपर राजा युधिष्ठिरने पूछा—"हे कृष्ण! मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ। तुम जानते हो, कि यह कार्य्य कितना कठिन है। मेरे सुहृदोंने मुझे यह यज्ञ करनेका परामर्श दिया है। परन्तु तुम्हारी सम्मतिके विना कुछ करना मुझे पसन्द नहीं। कुछ लोग बन्धुताके कारण दोषादोषपर विचार नहीं करते, कुछ लोग किसी स्वार्थके वशीभूत होकर, प्रियवाक्य कहते हैं और कुछ लोग अपना मतलब गांठनेके लिये बढ़ावा दिया करते हैं।

स्वीकार कर लेता था। इस तरह दिग्विजय कर लेनेपर यज्ञारम्भ होता था और सभी अधीन राजे उस दिगविजयीको सम्राट् स्वीकार कर लेते थे।

संसारमें ऐसोंकी ही संख्या अधिक है। इसलिये ऐसे लोगोंकी सलाहसे कोई कार्य्य करना उचित नहीं हैं। तुम काम-क्रोध विवर्जित महात्मा हो, अतएव मुझे उचित परामर्श दो।"

श्रीकृष्णने कहा—"महाराज! आप सर्व गुण-सम्पन्न हैं। राजसूय यज्ञ करना आपके लिये अविधेय नहीं है। आप प्रसन्नता पूर्व्वक यह शुभ अनुष्ठान कर सकते हैं। एक सुयोग्य सम्राट्में जिन गुणोंकी आवश्यकता होती हैं, वे सभी आपमें मौजूद हैं। परन्तु अड़चन है—वह मगध देशका राजा जरासन्ध। उसके जीते जी आप राजसूय यज्ञ करनेमें कदापि कृत्कार्य्य नहीं हो सकेंगे। क्योंकि उसने समस्त आर्य्यावर्तके नृपतियोंको अपने वशमें कर रखा है। जिस तरह सिंह पहाड़ोंकी कन्दराओंमें हाथियोंको वन्द कर देता है, उसी तरह उसने कितनेही राजा और महाराजाओंको अपने यहां कैद कर रखा है।* उसने भी राजसूय यज्ञ करनेकी इच्छा की थी और दिग्विजयकर कितने ही नृपतियोंको वन्दी बना लिया था। उसके भयसे ही हमलोग मथुरा छोड़ द्वारकामें जा बसे हैं। महाराज! यदि आप राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं, तो सबसे पहले जरासन्धको विजय कीजिये। उसको जीत लेनेपर फिर दिग्विजय करनेमें बहुत तवालत नहीं करनी पड़ेगी। क्योंकि जिन राजाओंको

---

* श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि जरासन्धके कैदी राजाओंने श्रीकृष्णके पास दूत भेजकर प्रार्थना की थी, कि आप हमें मुक्त कीजिये। परन्तु महाभारतमें इसका कोई जिक्र नहीं है।

उसने वन्दी कर रखा है, वे छूटनेपर अवश्य ही आपके वशी-भूत होंगे। इसलिये सबसे पहले जरासन्धको जीतनेकी चेष्टा कीजिये, अन्यथा आप कदापि राजसूय यज्ञ सुसम्पन्न नहीं कर सकेंगे। मेरी तो यही राय है, आगे आपकी इच्छा!"

कृष्णका कथन सुनकर राजा युधिष्ठिरने कहा,—"प्रवल प्राक्रान्त राजा जरासन्धको जीतना बड़ाही कठिन कार्य्य है। मुझे तो केवल तुम्हारे ही वाहुवलका भरोसा है। परन्तु जब स्वयं तुम्हीं जरासन्धसे भय करते हो, तब मेरी क्या बिसात है, कि मैं उससे युद्ध करनेका साहस कर सकूं। इसके सिवा लड़ाईमें निरर्थक रक्तपातकी भी सम्भावना है। अपने स्वार्थके लिये तुम्हें, भीमसेनको या अर्ज्जुनको जरासन्धसे लड़नेको भेजना भी मैं उचित नहीं समझता। इसलिये राजसूय यज्ञकर सम्राट् बननेकी अभिलाषा परित्याग करना ही मेरे लिये उचित है।"

जिस समय राजा युधिष्ठिर और श्रीकृष्णमें उपर्युक्त वार्त्ता-लाप हो रहा था। उस समय वहां भीमसेन और अर्ज्जुन भी उपस्थित थे। राजाका हताश होना देखकर, अर्ज्जुनने कहा,—"रक्तपातकी आशंकासे लोक-हितकर कार्य्यसे मुंह मोड़ना उचित नहीं। यज्ञके लिये जरासन्धको जीतकर, निर्दोष वन्दी राजाओंको विमुक्त करनेसे बढ़कर, उत्तम कार्य्य और क्या हो सकता है? परोपकारके लिये युद्ध करना क्षत्रियका धर्म है। साम्राज्यलाभकी इच्छासे हमलोगोंको अवश्य ही युद्ध करना चाहिये।"

कृष्णने कहा,—"अर्ज्जुनका कहना यथार्थ है। जब एक न एक दिन मरनाही है, तब धर्मयुद्धसे पराङ्मुख होना उचित नहीं। अब विचारणीय विषय केवल यही है, कि हमलोग सम्मुख समरमें जरासन्धको जीत सकते हैं या नहीं। बुद्धिमान नीतिज्ञोंका कथन है, कि यदि शत्रु विशेष बलवान हो, तो उसके साथ युद्ध न कर अन्य उपाय द्वारा उसका संहार करना चाहिये। इस लिये मेरी राय है, कि सेना लेकर जरासन्धपर चढ़ाई न की जाये। क्योंकि इसमें हमलोग सफलता भी नहीं प्राप्त कर सकेंगे और निरर्थक नर-नाश भी होगा। इसलिये अर्ज्जुन भीमसेन और मैं, ये ही तीन जांय और कौशल पूर्व्वक एकान्तमें बुलाकर उसपर आक्रमण करें। उस समय वह अवश्य ही हममेंसे किसी एकके साथ युद्ध करेगा। मुझे दृढ़ विश्वास है, कि वह भीमसेनसे ही लड़नेको तय्यार होगा और यह निश्चय है, कि भीमसेन उसे मार डालेंगे। अब, यदि आपको मेरे ऊपर विश्वास है, तो अर्ज्जुन और भीमसेनको मेरे साथ जानेकी आज्ञा दे दीजिये।"

राजा युधिष्ठिरने कहा—"हे अरातिसूदन मधुसूदन! तुम पाण्डवोंके प्रधान आश्रय स्वरूप हो। तुम्हारी ही कृपासे हम इस पदपर पहुंचे हैं। हम तुम्हारे ऊपर विश्वास न करेंगे, तो किसपर करेंगे? जरासन्धको जीतनेके लिये जो तदवीर तुमने सोची है, वह बहुत ठीक है। जब तुम्हारा ऐसा अनुग्रह है, तब जरासन्धका जीतना, राजसूय यज्ञ सम्पन्न कर लेना और सम्राट्

हो जाना कोई बड़ी बात नहीं। तुम जैसा उचित समझो, करो। मैं जानता हूं, कि तुम्हें और अर्जुनको जीतनेवाला इस संसार-में कोई नहीं है। तिसपर यदि महावीर भीमसेन तुम्हारे साथ रहें, तो सब कुछ सम्पन्न हो सकता है। जहां नीति, तेज और शूरता, ये तीन गुण एकत्र हो जाते हैं, वहां अवश्य ही सफलता प्राप्त होती है। फिर जिस सेनाके अधिपति श्रीकृष्ण हों, उसके विजयी होनेमें सन्देह ही क्या है?"

२०

राजा युधिष्ठिरका आदेश पाकर कृष्ण, अर्ज्जुन और भीमसेनने स्नातक ब्राह्मणके वेषमें मगध देशकी यात्रा की। इन तीनों वीरोंकी तेजस्विता देखकर सबको विश्वास हो गया, कि ये लोग अवश्य ही विजय प्राप्त करेंगे। तदनन्तर कितने ही प्रदेशों, पर्वतों और नदियोंको पारकर, ये लोग राजा जरासन्धकी राजधानीके निकट पहुँचे। ये लोग जरासन्धका संहार करनेकी इच्छासे वहां गये थे, इसलिये नगरके सिंह द्वारसे प्रवेश करना अनुचित समझकर, नगरके निकटवाली पहाड़ीके पथसे नगरमें प्रवेश किया।

नगरवासियोंने बड़े आदरसे स्वागत कर, राजा जरासन्धके पास इनके आगमनका संवाद भेजा। राजाने आकर इनके प्रति यथोचित सम्मान प्रदर्शन कर, आगमनका कारण पूछा। श्रीकृष्णने कहा--"इन दोनों स्नातकोंने आज मौनव्रत धारण किया है। आधी रातको इनका व्रत पूरा होगा। उस समय ये आपसे बातचीत कर सकेंगे।" यह सुनकर राजाने अपनी यज्ञशालामें इन लोगोंके ठहरनेका प्रबन्ध करा दिया और

आधी रातको पूजाकी सामग्री लेकर, इनके सामने उपस्थित हुआ। स्नातकोंने उठकर राजाको आशीर्व्वाद दिया। परन्तु पूजा ग्रहण न की।

यह देख जरासन्धको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। उसने कहा—"हे विप्रो! मैं जहां तक जानता हूँ, स्नातक व्रतधारी सभामें जानेके सिवा किसी दूसरे समय पुष्पमाला और चन्दनका व्यवहार नहीं करते। परन्तु इसके विपरीत आपलोगोंने पुष्पमाला, चन्दन और अनुलेपनका व्यवहार किया है। इसके सिवा आप लोगोंका वस्त्र भी लाल है। आकार-प्रकारसे तो आपलोग क्षत्रिय जँचते हैं, परन्तु आप अपनेको ब्राह्मण बता रहे हैं। अब कृपा कर बताइये, कि आप कौन हैं और किस निमित्त यहांतक पधारनेका कष्ट स्वीकार किया है? राजाके सामने सच बोलना ही उचित है। मैंने सुना है, कि आपलोगोंने इस नगरमें सिंह द्वारसे प्रवेश न कर, पर्वतपथसे प्रवेश किया हैं। ब्राह्मण तो वाक्य द्वारा ही वीरता प्रकाश किया करते हैं, परन्तु आपलोगोंने कार्य्यों द्वारा वीरता दिखाई हैं। इसके सिवा आपने मेरी पूजा भी ग्रहण न की। अब आप कृपाकर अपना परिचय प्रदान करें।"

राजा जरासन्धका कथन सुनकर महामति श्रीकृष्णने कहा—"राजन्! आप हमें ब्राह्मण स्नातक समझ रहे हैं, परन्तु ब्राह्मणोंके सिवा क्षत्रिय ओर वैश्य भी तो स्नातक हो सकते हैं। हम क्षत्रिय हैं, विशेष नियमों द्वारा हमें पुष्प-माल्यादि धारण करनेका अधिकार है। क्षत्रिय होनेके कारण हमने अपनी स्वाभा-

विक वीरताका परिचय प्रदान किया है। हमलोगोंने शत्रुके गृहमें प्रवेश किया है, इसलिये सदर द्वार छोड़ दिया है। और इसीलिये आपकी पूजा भी ग्रहण नहीं करते।"

जरासन्ध—मुझे जहांतक स्मरण है, मैंने कभी आपलोगोंका कोई अनिष्ट नहीं किया है। फिर आप मुझे शत्रु क्यों समझ रहे हैं? मालूम होता है, कि आपलोग भ्रममें पड़े हैं!

कृष्णने कहा—"राजन्, तुमने क्षत्रियोंपर घोर अत्याचार किया है। अकारण ही कितने ही क्षत्रिय नरेशोंको पकड़कर वन्दी बनाया है; उनसे शूद्रवत् दासत्व कराते हो। हमें यह भी मालूम है, कि तुम शीघ्र ही उन बन्दी नरेशोंकी हत्या करना चाहते हो। ऐसी दशामें तुम क्योंकर अपनेको निर्दोष समझते हो? निरपराध भूपालोंको तुमने क्यों कैद कर रखा है? क्या यही राजाका धर्म है? हम धार्मिक हैं। धर्म ही हमारा जीवन-प्राण हैं। धर्मकी रक्षा करना हम अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। हमारे जानते हुए तुम अब इतना घोर अधर्म नहीं करने पाओगे। तुम जाति नाशक हो और हमलोग जातिकी रक्षा करना चाहते हैं। और इसीलिये तुम्हारा संहार कर देना चाहते हैं। तुम समझते हो, कि इस पृथिवीपर तुम्हीं सर्वोपरि बलवान हो, इसलिये तुम्हारा भ्रम दूर कर देना, हम अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। तुम्हारे जैसा अन्यायीका शीघ्र संहार कर देनेके निमित्त ही, हम लोग यहां आये हैं। तुमने जिन निरपराध क्षत्रियोंको वन्दी किया है, उन्हें अभी विमुक्त कर दो, या हमसे मल्ल युद्ध करनेके

लिये तैयार हो जाओ। हमलोग सुविख्यात नृपति युधिष्ठिरके आज्ञानुसार तुमसे लड़ने आये हैं। मेरा नाम श्रीकृष्ण है और ये दोनों महाराज युधिष्ठिरके छोटे भाई भीमसेन और अर्ज्जुन हैं। हम तुम्हें बता देना चाहते हैं, कि इस धरातल-पर तुम्हारे जैसे और भी बहुतसे वीर पड़े हैं। तुमने जातिका जो घोर अपमान किया है, उसीका बदला लेनेकी इच्छासे हमलोग यहां आये हैं। हम मृत्युसे नहीं डरते, क्योंकि हमें विश्वास है, कि रणमें प्राण परित्याग करनेवाले क्षत्रिय अक्षय स्वर्ग लाभ करते हैं। बस, अब अधिक विलम्ब न करो, लड़नेके लिये प्रस्तुत हो जाओ या कैदी राजाओंको छोड़कर सुयशके भागी बनो।"

श्रीकृष्णकी वीरत्वपूर्ण वक्तृता सुनकर, जरासन्धने कहा—"हे कृष्ण! मैंने किसी राजाको बिना जीते कैद नहीं किया है, जिसे मैंने सम्मुख समरमें परास्त न कर दिया हो, या जो मुझसे विरोध कर सकता हो, ऐसा मनुष्य इस देशमें कोई नहीं है। विक्रम प्रकाश कर समरभूमिमें शत्रुको परास्तकर, उसके प्रति स्वेच्छानुसार व्यवहार करना क्षत्रियोंका धर्म है। इसमें मैंने कोई अन्याय नहीं किया है। मैं तुम्हारी धमकियोंसे भयभीत होकर या तुम्हारे अनुरोधसे अपने कैदियोंको नहीं छोड़ सकता। यदि तुम मुझसे युद्ध करना चाहते हो, तो बड़ी प्रसन्नताकी बात है। मैं बड़ी खुशीसे इसके लिये तैयार हूं। जिस तरह तुम्हारी इच्छा हो, मुझसे लड़कर अपना हौसला पूरा कर सकते हो। तुम्हारे साथ यदि सेना हो, तो उससे लड़नेके लिये मेरी

सेना तैयार है और यदि मल्ल युद्धकी इच्छा हो, तो मैं खुद तैयार हूँ। तुममेंसे जिसकी इच्छा हो मुझसे लड़ सकता है। तुम तीनों एक साथ ही या वारी वारीसे लड़ना चाहो, तो इसके लिये भी मैं सर्वथा प्रस्तुत हूँ।"

इसके वाद अभिमानी जरासन्धने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—"ये लोग मुझसे युद्ध करना चाहते हैं। यदि मैं मर जाऊं, तो तुमलोग मेरे पुत्र सहदेवको राजा बनाकर उसके आज्ञानुसार कार्य्य करना।"

यह कह जरासन्ध लड़ाईके लिये तैयार हो गया। उसे तैयार देखकर श्रीकृष्णने कहा—"राजन्! आप अपने इच्छानुसार हममेंसे किसी एकको लड़नेके लिये निर्वाचित कर लीजिये।" यह सुनकर जरासन्धने भीमसेनको निर्वाचित किया। भीमसेन श्रीकृष्णकी अपेक्षा अधिक हृष्टपुष्ट और वलिष्ट थे। इसलिये जरासन्धने उन्हींको पसन्द किया। श्रीकृष्ण भी यही चाहते थे।

दोनों वीर ताल ठोंककर अखाड़ेमें उतर पड़े और अपना अपना कौशल प्रदर्शन पूर्व्वक लड़ने लगे। इस तरह तेरह दिनोंतक यह कुश्ती जारी रही। परन्तु कोई किसीको परास्त न कर सका। चौदहवें दिन जरासन्ध थक गया। यह देखकर श्रीकृष्णने भीमसेनसे कहा—"राजा जरासन्ध थक गये हैं। थके हुए शत्रु-पर वार करना उचित नहीं।"

यह सुनकर भीमने कहा,—"परन्तु जरासन्ध बराबर अपने पेंच लगाये जाते हैं, इससे मालूम होता है, कि ये थके नहीं है।"
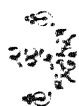
कृष्ण—यदि ऐसी बात है, तो तुम अपना पूर्ण बल एकबार राजाको दिखा दो।

श्रीकृष्णका यह इशारा पाकर, महावीर भीमसेनने जरासन्धको बल-पूर्वक पृथिवीपर इस तरह दे मारा, कि गिरते ही उसका प्राण निकल गया।

जरासन्धके मरते ही सारे नगरमें कोलाहल मच गया। राज्याधिकारियोंने भयभीत होकर श्रीकृष्ण आदिकी वश्यता स्वीकार कर ली। इसके बाद श्रीकृष्णने एक रथ मँगाया और भीम तथा अर्ज्जुनको उसपर सवार करा, स्वयं रथ हाँक कर नगरके बाहरी भागमें, जहां कैदखाना था, गये और बन्दी नरेशोंको मुक्त किया।

बन्धन-विमुक्त नृपालोंने श्रीकृष्णके प्रति अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—"आपने हमलोगोंको कारागारसे विमुक्त कर जो उपकार किया है, उसे हमलोग इस जीवनमें नहीं भूल सकते। अब आप कृपाकर बताइये, कि हमलोग आपकी क्या सेवा करें?"

श्रीकृष्णने कहा,—"आपलोगोंको छुड़ाकर मैंने केवल अपना कर्त्तव्य पालन किया है, तथापि यदि आपलोग मेरा कोई प्रिय कार्य्य करना चाहते हैं, तो राजा युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें सहायता कीजिये, जिसमें धर्मपरायण राजाका यह शुभ अनुष्ठान सुचारु रूपसे सम्पन्न हो। बस, आपलोगोंसे यही मेरी प्रार्थना है।" राजाओंने बड़ी प्रसन्नतासे राजा युधिष्ठिरको यज्ञमें साहाय्य प्रदान करना स्वीकार किया।

इसके बाद मृत राजा जरासन्धके पुत्र सहदेवने अपने पुरोहित तथा अमात्योंके साथ आकर, श्रीकृष्णको प्रणाम किया और बहुतसा धन-रत्न भेंट स्वरूप उनके सामने लाकर रखा। श्रीकृष्णने प्रसन्नता पूर्व्वक उसकी भेंट स्वीकार की और सबके सामने उसे राज्याभिषिक्त कर विदा किया।

इसके बाद भीम, अर्ज्जुन और काराविमुक्त राजाओंके साथ रथारोहण कर श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ पहुँचे। राजा युधिष्ठिरने अत्यन्त सम्मान पूर्व्वक विजयी वीरोंका स्वागत किया और श्रीकृष्णके प्रति अत्यन्त कृतज्ञता प्रकाशित की। कुछ दिनोंतक इन्द्रप्रस्थमें रहकर अन्तमें श्रीकृष्ण द्वारका चले आये।

२१
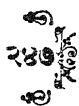
युधिष्ठिरका यज्ञ.

भीमसेन, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेवके दिग्विजयसे निर्विघ्न लौटनेपर, राजसूय यज्ञकी तैयारी होने लगी। एक सुवृहत् यज्ञ-मण्डप तैयार कराया गया। आर्य्यावर्तके सभी नृपालोंके पास दूतों द्वारा निमन्त्रण पत्र भेजे गये। सब तीर्थोंके जलके साथ नाना प्रकारकी हवन-सामग्री एकत्र की गई। दान देनेके लिये वहुतसा सोना, चाँदी, रत्न, भूषण और वस्त्रादि इकट्ठा किये गये। देशके सुप्रसिद्ध विद्वानों और ऋषि-मुनियोंको आदर पूर्व्वक बुलानेकी व्यवस्था हुई। अतिथि-अभ्यागतोंके ठहरनेके लिये कितने ही महल सजाये गये और राजधानीके बाहर कोसोंतक विशाल शिविरकी स्थापना की गई। राजा धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, विदुर, द्रोणाचार्य्य दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण आदि ज्ञातिवर्ग भी समादर पूर्व्वक बुलाये गये।

इस तरह यज्ञका सम्पूर्ण आयोजन सांगोपाङ्ग समाप्त हुआ। इतनेमें अन्यान्य आमन्त्रित भूपालोंके साथ यथासमय श्रीकृष्ण भी प्रचुर धन रत्नादि लेकर सदल बल आ पहुँचे। राजा युधि-

ष्ठिरने बड़े हर्षके साथ उनकी अगवानी की और अत्यन्त आदर पूर्वक बोले,—"हे कृष्ण, केवल तुम्हारे ही अनुग्रहसे मैं इस शुभ कार्य्यमें प्रवृत्त हुआ हूँ। यह तुम्हारी ही कृपाका फल है, कि ससागरा पृथ्वीके भूपालोंने मेरी वश्यता स्वीकार की है और मैं अतुल ऐश्वर्य्यका अधिपति हो सका हूँ। इसलिये मैं चाहता हूँ, कि इस यज्ञमें तुम्हीं दीक्षित हो।"

श्रीकृष्णने युधिष्ठिरकी प्रशंसा करते हुए कहा,—"महाराज, ऐसा न कहिये। आप स्वयं दीक्षित होकर यज्ञकार्य्य सम्पन्न कीजिये, मैं तो आपका सेवक हूँ। मेरे योग्य जो सेवा हो, उसे मैं करनेके लिये तैयार हूं।"

युधिष्ठिर बोले,—"जब तुम मेरे ऊपर अनुग्रहकर यहां उपस्थित हो, तब कार्य्य तो योंही हो जायेंगे।"

यह कह राजाने यज्ञकी समस्त सामग्री यज्ञ-मण्डपमें लाकर रखनेकी आज्ञा दी। परन्तु उनके कहनेसे पहले ही सहदेवने समस्त सामग्री यज्ञमण्डपमें लाकर रखवा दी थी। सब आयोजन हो जानेपर, उपयुक्त व्यक्तियोंको यथायोग्य कार्य्य सौंपे गये। दुर्योधनके भाई दुःशासनको खाने-पीनेकी चीजोंका तत्वधान सौंपा गया, अश्वत्थामाको ब्राह्मणोंकी सेवाका भार दिया गया ; महात्मा कृपाचार्य्य धन-रत्नादिके अध्यक्ष नियुक्त हुए और अन्यान्य प्रधान व्यक्तियोंको दूसरे-दूसरे कार्य्य सौंपे गये। श्रीकृष्णने अपने इच्छानुसार ब्राह्मणोंका पैर धोना और यज्ञकी रक्षाका कार्य्य स्वीकार किया।

इसके बाद यज्ञकर्त्ताकी ओरसे उपस्थित अतिथियोंको अर्घ्य प्रदान करनेका समय आया। पितामह भीष्मने युधिष्ठिरसे कहा,—"यज्ञारम्भसे पहले उपस्थित अतिथियोंमेंसे आचार्य्य, ऋत्विक, सम्बन्धी, स्नातक, राजाओं और अपने प्रिय व्यक्तियोंका यथायोग्य सत्कार करनेका नियम है। इसलिये सत्कारकी सामग्री मंगा लो और इनमें जिसे तुम सर्वश्रेष्ठ समझते हो, पहले उसे अर्घ्य प्रदान कर सत्कार करो। इसके बाद अन्यान्य व्यक्तियोंके प्रति भी यथायोग्य सम्मान प्रदर्शन करो।"

पितामहका आदेश सुनकर महाराज युधिष्ठिर बड़े पशोपेशमें पड़े, क्योंकि सभामें एकसे एक विद्वान, पण्डित, बुजुर्ग और प्रतापी व्यक्ति उपस्थित थे। इनमेंसे किसी एकको सर्वश्रेष्ठ मानकर, सबसे पहले उसीका सम्मान करना बड़ा टेढ़ा काम था। इसलिये उन्होंने पितामहसे पूछा,—"कृपाकर आप ही बताइये, कि मैं सबसे पहले किसका सम्मान करूँ?"

भीष्मने कहा,—"इस सभामें श्रीकृष्ण सूर्य्यकी भाँति चमक रहे हैं; वही सबसे बढ़कर गौरव और सम्मानके पात्र हैं। तुम सबसे पहले उन्हींको अर्घ्य प्रदान करो।"

राजा युधिष्ठिरने 'तथास्तु' कहकर, सहदेवको श्रीकृष्णकी पूजा करनेका आदेश प्रदान किया। यह देखकर चेदीका राजा शिशुपाल अत्यन्त असन्तुष्ट हुआ। यद्यपि शिशुपाल श्रीकृष्णका मौसेरा भाई था, परन्तु जरासन्धके दलका था। इसलिये वह उनसे सदैव द्वेष करता था। इस महती सभामें सबसे पहले

श्रीकृष्णको सम्मानित होते देख, वह क्रोधसे अधीर होकर कहने लगा—"हे युधिष्ठिर! द्रोणाचार्य्य, महाराज धृतराष्ट्र, महाराज द्रुपद, भगवान द्वैपायन आदि महापुरुषोंके रहते हुए, तुम सबसे पहले श्रीकृष्णको अर्घ्य प्रदानकर बड़ा अनुचित कार्य्य कर रहे हो। तुमलोग बालक हो। तुम्हें धर्म-ज्ञान बिल्कुल नहीं है और स्मृति-शक्ति-विहीन वृद्ध भीष्मकी भी मति मारी गई है। इसी लिये इन्होंने कृष्णको ही सर्वश्रेष्ठ समझा है। श्रीकृष्ण न तो राजा है, न विद्वान और न बलवान ही है। फिर नहीं समझमें आता, कि तुमलोगोंने क्यों उसे सबसे श्रेष्ठ मान लिया है। मैं मानता हूँ, वह तुम्हारा रिश्तेदार और प्रियार्थी है, तो महाराज द्रुपद भी तो तुम्हारे रिश्तेदार और हितैषी हैं? फिर उनके मौजूद रहते हुए कृष्णका तुमने क्यों पहले सम्मान किया? इतने विद्वानों, ऋत्विकों और राजे-महाराजोंके उपस्थित रहते हुए, कृष्ण जैसे साधारण व्यक्तिको पूजा देना मानों सबको अपमानित करना है। अन्यायी श्रीकृष्णने अन्याय पूर्व्वक राजा जरासन्धको मरवा डाला है। इसलिये इसका सम्मान करनेवाले राजा युधिष्ठिरकी धार्म्मिकता विनष्ट हो गई है।"

इसके बाद वह श्रीकृष्णको सम्बोधन कर कहने लगा—"हे कृष्ण! राजा पाण्डुके लड़के डरपोक और नीच स्वभावके हैं। उन्हें छोटे-बड़ेका ज्ञान बिल्कुल नहीं है। ऐसी दशामें तुम्हें चाहता था, कि उन्हें समझाते और इस महापुरुष-मण्डलीमें बैठकर सबसे पहले अपनी पूजा न कराते। सच पूछो तो

इससे इन महापुरुषोंका अपमान नहीं हुआ है, वरं पाण्डवों ने सबके सामने तुम्हारी ही दिल्लगी उड़ाई है। जिस तरह क्लीवपुरुषका दार-परिग्रह करना और अन्धेको रूप दिखाना केवल विडम्बना है, उसी तरह असम्मानित व्यक्तिका सम्मान भी विडम्बना ही है।"

इस तरह श्रीकृष्ण, पाण्डवों और पितामह भीष्मका तिरस्कार करता हुआ राजा शिशुपाल क्रुद्ध होकर सभासे उठ गया। युधिष्ठिर उसके पीछे-पीछे जाकर उसे मनाने लगे। उन्होंने कहा—"चेदिराज! तुम भूल करते हो। तुम श्रीकृष्ण को पहचानते नहीं। इसीसे उनके सम्बन्धमें तुम्हारी ऐसी बेतुकी धारणा है। तुम औरोंको धर्मज्ञानविहीन बतला रहे हो, परन्तु स्वयं धर्मकी अवहेलना कर रहे हो। यदि तुम्हें कुछ भी धर्म-ज्ञान होता, तो तुम भीष्म जैसे महापुरुषके सम्बन्धमें ऐसे कटुवाक्य न कहते। इस सभामें बहुतसे विद्वान और योद्धा मौजूद हैं, परन्तु किसीको श्रीकृष्णकी पूजाके सम्बन्धमें आपत्ति नहीं है; इससे प्रमाणित होता है, कि सभी उन्हें श्रेष्ठ समझते हैं। तुम वृथा उन्हें कठोर वाक्य सुना रहे हो। यह तुम्हें उचित नहीं।"

राजा युधिष्ठिरने इसी तरहकी बहुत सी बातें कहकर शिशुपालको शान्त करनेका प्रयत्न किया। परन्तु उसका क्रोध शान्त न हुआ और वह उत्तरोत्तर कृष्णादिको बुरा-भला कहता ही गया। तब भीष्मने कहा,—"हे युधिष्ठिर! शिशुपाल कृष्ण-

विद्वेषी है, उससे अनुनय करना व्यर्थ है। शौर्य्य, वीर्य्य, कीर्त्ति और विद्यामें श्रीकृष्ण इस समय सर्वश्रेष्ठ हैं। समस्त देश उनका सम्मान करता है। यदि राजा शिशुपालको उनकी पूजा नितान्त असह्य प्रतीत होती हो, तो उसकी जो इच्छा हो करे।"

सहदेवने कहा—"श्रीकृष्ण हमारे परम पूजनीय हैं। हमने उनकी पूजा करके कोई अनुचित कार्य्य नहीं किया हैं। द्वेष वश जिन्हें श्रीकृष्णका सम्मान असह्य हो रहा है, उनके मस्तकों-पर ठोकर मारनेके लिये मैं तैयार हूँ। यदि उनमें हिम्मत हो, तो मेरे सामने आयें और नहीं, तो चुपचाप पितामहका निर्णय स्वीकार कर लें। मुझे विश्वास है, कि विवेक-शील नृपतिगण अवश्य ही श्रीकृष्णका सम्मान देखकर प्रसन्न हुए होंगे।"

सहदेवका कथन सुनकर सुनीथ नामक एक और योद्धा बिगड़कर बोला—"मैं यादवों और पाण्डवोंका नाश करनेके लिये अभी युद्ध करूँगा।" यह सुनकर शिशुपाल बहुत प्रसन्न हुआ और यज्ञमें बाधा उपस्थित करनेके लिये अन्यान्य राजाओं-से परामर्श करने लगा। श्रीकृष्ण चुपचाप बैठे हुए यह तमाशा देख रहे थे। वह समझ गये, कि शिशुपाल यज्ञ-कार्य्यमें बाधा डालनेके लिये परामर्श कर रहा है।

इधर राजन्य मण्डलीकी खलबलाहट देख, युधिष्ठिर बहुत घबराये। उन्होंने भीष्मसे कहा—"पितामह! बहुतसे राजे-महाराजे असन्तुष्ट हो रहे हैं। ये यज्ञकार्य्यमें अवश्य ही विघ्न उप-

स्थित करेंगे। इसलिये कोई ऐसी तद्वीर सोचिये, जिसमें यह शुभ कार्य्य निर्विघ्न समाप्त हो जाये।"

भीष्मने कहा—"चिन्ता न करो। सब ठीक हो जायेगा। ये तुच्छ राजे तुम्हारा कुछ भी नहीं कर सकेंगे। मैंने उपाय सोच लिया है।"

इधर शिशुपाल और भी जोर जोरसे श्रीकृष्ण और पितामहको गालियाँ देने लगा। इससे क्रुद्ध होकर भीमसेन उसपर आक्रमण करनेके लिये दौड़े। परन्तु भीष्मने रोक लिया और शिशुपालका जन्म-वृत्तान्त सुनाकर कहा, कि वह स्वयं अपने कर्त्तव्यका फल पायेगा। तुम शान्त रहो। इसके बाद उन्होंने शिशुपालको एक बार और समझानेकी चेष्टा करते हुए कहा—"अभीतक तुम श्रीकृष्णकी क्षमाशीलताके कारण ही जीते बच रहे हो। हमने श्रीकृष्णकी पूजा की है। हमलोग उनकी श्रेष्ठता स्वीकार करते हैं। यदि तुम्हें उनकी श्रेष्ठता स्वीकार नहीं है, तो एक बार उनसे भिड़कर उनके बलकी परीक्षा कर सकते हो। उस समय तुम्हें खुद ही मालूम हो जायेगा, कि श्रीकृष्ण श्रेष्ठ हैं या नहीं।"

ऐसी बात सुनकर भला शिशुपाल कब चुप रहनेवाला था। उसने श्रीकृष्णको तुरन्त युद्धके लिये ललकारा। श्रीकृष्ण अबतक चुप थे। परन्तु जब शिशुपाल उन्हें लड़नेके लिये बुलाने लगा तब वे चुप न रह सके। क्योंकि युद्धके लिये शत्रुके ललकारनेपर सच्चा क्षत्रिय चुप नहीं रह सकता। इसलिये वे उठे और उप-

स्थित राजाओंको सम्बोधन कर कहने लगे,—"राजा शिशुपाल मेरा पुराना विद्वेषी है। इसकी माता इस बातको जानती थी। उसने मुझसे अनुरोध किया था, कि इसके सौ अपराध क्षमा करना। इसीसे मैं अबतक इसकी गालियां सहता रहा हूँ। परन्तु अब क्षमाशीलताकी हद हो गई। अब यह मुझे युद्धके लिये बुला रहा है, ऐसी दशामें मैं चुप नहीं रह सकता।"

यह कहकर उन्होंने अपना चक्र फेंककर शिशुपालका सिर उसकी धड़से अलग कर दिया। सारा किस्सा तमाम हो गया! शिशुपालके सहयोगी राजे सहम गये। किसीसे कुछ करते न बना।

इसके उपरान्त राजा युधिष्ठिरने मृत राजा शिशुपालका अन्तिम संस्कार कराया और उसके पुत्रको चेदी देशके राज-सिंहासनपर बैठाया। जब यह बखेड़ा तय हो गया, तब यज्ञ आरम्भ हुआ। यज्ञकी समाप्ति होनेपर समागत अतिथियोंकी बिदाई आदिके बाद श्रीकृष्ण सदलबल द्वारका लौट आये।

शिशुपाल वध ।

यह सुनकर उन्होंने अपना चक्र फेंककर शिशुपालका सिर धड़से [illegible]
अलग कर दिया ।

२२

शाल्व नामक एक वीर पुरुष मृत राजा शिशुपालका परम मित्र था। राजा युधिष्ठिरकी सभामें श्रीकृष्ण द्वारा अपने मित्रके मारे जानेकी खबर पाकर, उनके इन्द्रप्रस्थसे लौटनेके पहले ही, उसने द्वारकापर चढ़ाई कर दी और व्योमयानों द्वारा शिला-वृष्टि तथा अग्नि-वृष्टिकर द्वारका-वासियोंको व्याकुल करने लगा। वृद्ध राजा उग्रसेनने अपनी सेनाके साथ श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न और साम्बको शाल्वका आक्रमण रोकनेके लिये भेजा। इन दोनों वीरोंने अपने पिताकी भांति पराक्रम दिखाकर, शाल्वकी सेनाके साथ खूब युद्ध किया। परन्तु शाल्व बड़ा बलवान था और उसकी सेना भी बड़ी लड़नेवाली थी। उसने अपने तीक्ष्ण अस्त्राघातों द्वारा प्रद्युम्नको क्षत-विक्षत कर दिया। प्रद्युम्न बेहोश हो गये। यह देख उनका चतुर सारथी रथ लेकर मैदानसे हट गया। होश होनेपर समरभूमिसे रथ हटा लानेके लिये प्रद्युम्न सारथीपर बहुत बिगड़े और उसी समय फिर लड़ाईके मैदानमें जा पहुँचे।

इन्द्रप्रस्थसे लौटते हुए रास्तेमें ही श्रीकृष्णको शाल्वकी चढ़ाई की खबर लग गई थी। इसलिये वे बड़ी शीघ्रतासे द्वारका पहुंचे और बलदेवजीको नगरकी रक्षाके लिये द्वारका भेजकर स्वयं बाहर ही बाहर युद्धस्थलमें जा पहुँचे। श्रीकृष्णको देखकर शाल्व अत्यन्त भयभीत हुआ। क्योंकि रूक्मिणीके स्वयंवरके समय श्रीकृष्णका पराक्रम वह बहुत अच्छी तरह देख चुका था।

जो हो, श्रीकृष्णको देखकर वह कहने लगा,—"तुमने चक्र चलाकर अचानक मेरे मित्र शिशुपालको मार डाला है। आज मैं उसका बदला लिये बिना कदापि न मानूँगा।" श्रीकृष्णने कहा,—"वृथा बातें न बना। लड़ाईके मैदानमें वीरगण पौरुष दिखाते हैं। तेरी तरह बकवाद नहीं किया करते। यदि तुझमें पौरुष हैं, तो मुझसे अपने मित्रका बदला ले सकता है।" यह कहकर उन्होंने अपनी गदा द्वारा शाल्वके मस्तकपर प्रहार किया। जिससे वह रूधिर वमन करने लगा। अब शाल्वकी समझमें आ गया, कि श्रीकृष्णसे पार पाना सहज काम नहीं है। इसलिये वह छल द्वारा उन्हें परास्त करनेकी तदबीर करने लगा। सबसे पहले वह श्रीकृष्णके पिताकी शक्लके एक मनुष्यको लाकर उनके सामने बध करने लगा। यह देखकर पहले तो श्रीकृष्ण बहुत घबराये, परन्तु थोड़ी देरके बाद ही उन्हें मालूम हो गया, कि यह सब शाल्वके प्रपंच हैं। वह शत्रुको जीतनेके लिये बलके अतिरिक्त कल और छलसे काम ले रहा है। इसी तरह उसने और भी कितनी ही मायायें रचीं। परन्तु श्रीकृष्णके सामने उसकी

एक न चली। उसका कल-बल और छल सब खाली जाने लगे।

इस तरह यह युद्ध सात दिनोंतक बराबर होता रहा और अन्तमें शाल्व श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया। परन्तु उसके मरनेपर भी युद्धकी समाप्ति न हुई। उसका साथी दन्तवक्र सिंहकी तरह गर्ज्जता हुआ सामने आया और श्रीकृष्णपर अस्त्र प्रहार करने लगा। अन्तमें श्रीकृष्णने उसे भी मार गिराया।

२३

श्रीकृष्ण और सुदामा.

श्रीकृष्णके सहपाठी सुदामा ब्राह्मणको हमारे पाठक भूले न होंगे। सान्दीपनि ऋषिसे छहों शास्त्र और वेद-वेदांग पढ़, पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर लेनेपर, सुदामा भी अपने घर चला आया था और एक सुशीला ब्राह्मण-कन्यासे विवाह कर शान्ति-पूर्व्वक जीवन बिता रहा था। कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि सरस्वतीके वरपुत्रोंपर लक्ष्मी देवीकी बड़ी अकृपा रहती है। अथवा यों कहिये, कि सरस्वती देवीके सच्चे आराधक लक्ष्मीको प्रसन्न करनेकी चेष्टा ही नहीं करते। यही दशा सुदामाकी भी थी। अपनी छोटीसी कुटीमें स्त्री और बच्चोंके साथ शान्ति और सन्तोष पूर्व्वक शास्त्रालोचना करना ही उसका जीवन-व्रत था। आत्म-मर्य्यादाको तिलाञ्जलि देकर, किसी लक्ष्मीपात्रके सामने जाकर हाथ फैलाना, उसके लिये अत्यन्त गर्हित और हीन कर्म था। अतः घर बैठे, विना मांगे, जो कुछ मिल जाता था, वही सुदामाके सन्तोषी परिवारकी जीविका थी। इसलिये अन्न और वस्त्रका अभाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता

दुर्गा प्रेस, कलकत्ता]

[देखिये—पृष्ठ संख्या २५८

था। यहांतक, कि कभी कभी लगातार दो-दो तीन-तीन उपवास भी हो जाते थे। परन्तु सन्तोष-मूर्त्ति सुदामा इससे कभी दुःखित या चिन्तित नहीं होता था। क्योंकि दरिद्रताको वह अपने जीवनकी कठिन कसौटी समझता था।

सौभाग्यवश सुदामाकी भार्य्या भी उसी तरह परम सन्तोषिनी थी। अन्न और वस्त्रका कठिन कष्ट होनेपर भी, वह अविरक्त चित्तसे पति-सेवा किया करती थी। इस तरह ये दोनों सांसारिक विलास-वासना छोड़कर प्रसन्नता पूर्व्वक भगवद्भजन किया करते थे।

एकबार लगातार कई उपवास करने पड़ गये। भूखसे व्याकुल होकर बच्चे माताके पास आकर रोने लगे। बच्चोंके कातर क्रन्दनने ब्राह्मणीके मातृ-हृदयको विचला दिया! सन्तोष और सब्रकी हद हो गई! आंखोंसे आँसू निकल पड़े! माताने बच्चोंको छातीसे लगाकर सान्त्वना देनेकी चेष्टा की। परन्तु भूखकी ज्वाला मौखिक शान्तवारिसे कैसे बुझती! बच्चे और भी बिलखने लगे। उस समय ब्राह्मणीका धैर्य्य जाता रहा। परन्तु पतिके सामने जाकर कुछ कहनेका साहस न हुआ। क्योंकि वह जानती थी, कि सन्तोषी सुदामा प्राण रहते किसीके आगे हाथ नहीं फैलायेगा। परन्तु बालकोंकी दशा भी देखी नहीं जाती थी। इसलिये अन्तमें ब्राह्मणी डरती काँपती पतिके पास गई! उस समय उसकी आँखोंसे अविरल अश्रुप्रवाह जारी था। पत्नीकी यह दशा देखते ही सुदामा सब कुछ समझ

गया। उसने उसकी ओर करुणा दृष्टिसे देखकर कहा,—"छिः प्रिये, इतनेमें ही अधीर हो रही हो!"

ब्राह्मणी बोली—"प्राणनाथ, अपने लिये अधीर नहीं हूं। परन्तु बच्चोंका कष्ट नहीं देखा जाता! हाय! हमारे बच्चे मुट्ठी भर अन्नके लिये तरस रहे हैं! यह देखकर भला कौनसा मातृ-हृदय विचलित हुए बिना रह सकता है!! प्रभो! सन्तोष और सहनशीलताकी हद हो गई!! अब शीघ्र कोई उपाय कर बच्चोंका प्राण बचाइये!!"

सुदामा—उपाय नारायण करेंगे। मैं इस चौथेपनमें किसी से भीख मांगकर अपना व्रत भंग नहीं करूंगा।

ब्राह्मणी--आप बार-बार कहा करते हैं, कि आपके सहपाठी और मित्र श्रीकृष्णचन्द्र नारायणके अवतार हैं। उन्होंने धार्मिकों और ब्राह्मणोंके परित्राणके लिये ही नरदेह धारण की है। तो आप एकबार उन्हींके पास जाकर क्यों नहीं अपना दुखड़ा सुनाते? क्या नारायणसे मांगना भी भीख मांगना है?

सुदामा—प्रिये! मैं ब्राह्मण हूँ। धनका लोभ ब्राह्मणके लिये अनुचित है। क्योंकि इससे ब्रह्मतेज नष्ट हो जाता है। तू उतावली न हो। बच्चोंकी रक्षाके लिये नारायण कोई न कोई उपाय अवश्य ही करेंगे।

ब्राह्मण—आप श्रीकृष्णचन्द्रके पास धन मांगने न जाइये। केवल उनका दर्शन करने जाइये। महापुरुषोंके दर्शनसे ही सब दुःख दूर हो जाते हैं।
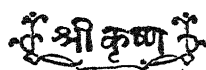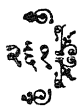
सुदामा—"दरिद्रताके कठोर कशाघातसे तेरा धैर्य्य छूट गया है। इसीसे तू बार बार ऐसा अनुचित अनुरोध कर रही है। प्रिये, भगवान कृष्ण मुझे देखते ही समझेंगे, कि यह कंगाल ब्राह्मण धनके लिये ही मेरे पास आया है। उस समय वे निश्चय ही मुझे मालामाल कर देंगे। धनवान हो जानेपर-सांसारिक सुखोंके प्रलोभनमें फँस जानेपर परलोककी चिन्ता भूल जायगी और भगवानके भजनमें वाधा पड़ जायगी। प्रिये, मोक्षदातार भगवानसे धनकी प्रार्थना करना मूर्खता है। उनसे यदि कभी कुछ मांगना पड़े, तो मोक्ष ही मांगना चाहिये।"

ब्राह्मणी—"अच्छा तो मोक्ष ही मांगने जाइये। किसी तरह इस दरिद्रतासे तो पिण्ड छूटे।"

सुदामा समझ गया, कि स्त्रीका कोमल हृदय अपने प्राण-प्रिय बच्चोंका कष्ट देखकर विचलित हो गया है। इस समय केवल धर्मोपदेशसे काम नहीं चलेगा। किसीने सच कहा है, कि 'भूखे भगति न होय भुआला!' अब तो कोई न कोई उपाय करना ही उचित है। एकबार स्त्रीके कथनानुसार श्रीकृष्णसे ही क्यों न मिलूं। किसी दूसरेकी अपेक्षा अपने मित्रके सामने जाकर हाथ फैलाना, नितान्त अनुचित भी नहीं कहा जा सकता।

बड़ी देर तक सोच-विचारकर सुदामाने कहा—"अच्छा, तेरी ऐसी ही इच्छा है, तो जाता हूँ। परन्तु बड़ोंके निकट बिना कुछ भेंट लिये जाना उचित नहीं होता।"

ब्राह्मणी—"भेंटके लिये घरमें क्या धरा है? कहिये तो किसी पड़ोसीसे कुछ माँग लाऊँ।"

मांगनेका नाम सुनते ही मानों ब्राह्मण सुदामाका हृदय कांप गया। परन्तु अपने लिये तो मांगना नहीं था। इसलिये स्त्रीको अनुमति दे दी। ब्राह्मणी तुरन्त एक पड़ोसीके यहांसे दो तीन मुट्ठी चावल मांग लाई। एक फटे वस्त्रमें चावलोंकी पुटली बांध, लोटा, डोरी और लाठी लेकर, एक दिन सुदामा अपने सहपाठी श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये द्वारकाकी ओर चला।

कितने ग्राम, नगर, नदी, वन-अतिक्रम कर मनही-मन तरह तरहकी बातें विचारता, यथासमय द्वारका पहुंच, उस मनोहर नगरीकी मनोहर शोभा देखकर, सुदामा अवाक् हो गया। हाट-बाट, गली-कूचे, ऊँची ऊँची अट्टालिकायें और नाना प्रकारकी चीजोंकी बड़ी बड़ी दूकानें देखकर, सुदामाकी अक्ल चकरा गई! वह सोचने लगा, इस विशाल नगरीमें श्रीकृष्णका पता कैसे लगेगा? कौन मुझे उनके पास तक पहुँचा देगा? खैर, किसीसे पूछूं तो सही। यह सोचकर उसने डरते डरते एक ऊँची अट्टालिकाके निकट जाकर द्वारपालसे पूछा—"भाई, कृपाकर मुझे श्रीकृष्णचन्द्रका स्थान बता सकते हो?"

द्वारपाल—"तुम कौन हो? उनसे क्या काम है?"

सुदामा—"मैं ब्राह्मण हूँ। उनसे मिलना चाहता हूं।"

द्वारपाल—"ब्राह्मण हो? तुम्हारा नाम?"

सुदामा—"मेरा नाम 'सुदामा' है।"

द्वारपाल—यही भगवानका निवास स्थान है। तुम ठहरो, मैं अभी उन्हें खबर देता हूँ। क्या नाम बताया—सुदामा ?

सुदामा—"हाँ, भाई!"

द्वारपालके मुखसे सुदामाका नाम सुनते ही श्रीकृष्ण सब काम छोड़कर दौड़े हुए बाहर आये। अपने प्रिय सहपाठीकी यह दीन दशा देखकर, उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगा। उन्होंने दौड़कर सुदामाको छातीसे लगा लिया और बड़े आदर और प्रेमसे हाथ पकड़कर भीतर लाये। श्रीकृष्णचन्द्रका राजसी ठाट-बाट और अतुल ऐश्वर्य्य देखकर, सुदामा चकित हो गया! श्रीकृ-ष्णने उसे ले जाकर एक पलँगपर बैठाया और थालमें जल मंगा कर अपने हाथोंसे उसका चरण धोने लगे। सुदामाने बहुत मना किया, परन्तु प्रेम-मूर्त्ति श्रीकृष्णने चरण धोकर ही छोड़ा। इसके बाद विधि पूर्व्वक पूजनकर उसे भोजन कराया।

भोजन आदिके पश्चात् सुदामा विश्राम करने लगा और श्रीकृष्ण उसके निकट बैठकर, उसका कुशल-क्षेम पूछने लगे। प्रसङ्गवश गुरुकुलकी बात छिड़ी। गुरुजी तथा उनकी पत्नीकी सदयता और सहृदयताकी चर्चा होने लगी। सहपाठियोंका जिक्र आया, पढ़ने-लिखनेके सम्बन्धमें बातचीत होने लगी। इसके बाद उस दिनका वनमें जाकर लकड़ी तोड़ने और वर्षाके कारण रातको उसी वनमें ठहर जानेकी बात चल पड़ी। ओह! कैसी भीषण रात थी! शीतसे दोनों कैसे काँप रहे थे! वनजन्तु-ओंका भीषण रव सुनकर, कलेजा थर्रा जाता था। तिसपर

भूखके कारण शरीर और भी अवसन्न हो गया था। कृष्णने कहा,—"उस दिन तुमने मेरी बड़ी मदद की थी। मेरा बोझ भी तुमने अपने सिरपर उठा लिया था। मैं उस समय बहुत थक गया था। मुझमें बोझ ले जानेकी शक्ति बिल्कुल न थी।"

इस प्रसङ्गके छिड़ते ही सुदामाको चनोंकी बात याद पड़ी। श्रीकृष्णको भूखा रखकर उसने उनके हिस्सेके चने भी स्वयं खा लिये थे। उस बातके याद आते ही, सुदामापर मानों सहस्रों घड़े पानी पड़ गया; वह अत्यन्त सङ्कुचित हुआ! श्रीकृष्ण समझ गये। इसलिये उस प्रसंगको वहीं छोड़ कर, सुदामाके घरका हाल-चाल पूछने लगे। उसकी स्त्री और बच्चोंका समाचार पूछकर बोले—"भाई! मैं जानता हूँ, कि तुम सरस्वतीके आराधक हो। वाणीके वरपुत्रोंपर लक्ष्मी देवीकी दया-दृष्टि नहीं रहती। हाय, तुमने बड़ी भूलकी, कि इतने दिनोंतक मेरे पास न आये। खैर, यह तो बताओ, कि भाभीने मेरे लिये कोई सौगात भेजी है या नहीं? यह पुटली कैसी है?"

पुटलीका नाम सुनकर सुदामा अत्यन्त लज्जित हुआ। इतने बड़े ऐश्वर्य्यशालीके सामने मुट्ठीभर चावलोंकी भेंट वह कैसे रख सकता था? उसने पुटलीको अपनी बगलमें अच्छी तरह दबा कर कहा,—"रहने दो भाई! वह कुछ नहीं है। तुम्हारी गरीब भाभीके पास क्या धरा था, जो तुम्हें सौगात भेजती?"

परन्तु कृष्ण कब सुननेवाले थे। उन्होंने बलपूर्व्वक पुटली छीन ली। उसमें वही कई मुट्ठी चावल बँधे थे, जो सुदामाकी
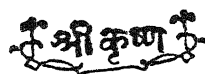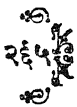
स्त्रीने कृष्णके लिये भेंट भेजा था। प्रेममूर्त्ति श्रीकृष्ण बड़े प्रेमसे उन चावलोंको खाने लगे। उनकी स्त्रियाँ यह तमाशा देखकर अवाक् रह गईं! सुदामाकी आँखें आँसूसे भर गईं! परन्तु कृष्णको इसकी सुधि कहाँ थी? उन्हें तो उन चावलोंमें अमृतका स्वाद मिल रहा था। वे तन्मय होकर चावल चबाने लगे।

इसके बाद फिर तरह तरहकी बातें होने लगीं। दोनों मित्र एक दूसरेको पाकर परम पुलकित थे। दोनों अपने अपने अतीत जीवनकी कहानियाँ एक दूसरेको सुनाकर, मानों अपने हृदयका बोझ हलका करने लगे। बहुत तरहकी बातें हुईं। परन्तु सङ्कोची सुदामाने यह नहीं कहा, कि मैं धनकी इच्छासे तुम्हारे पास आया हूँ। श्रीकृष्ण सुदामाके सङ्कोची स्वभावसे पूर्ण परिचित थे। उसके असीम सन्तोष और अपूर्व निस्पृहाकी उन्होंने मन-ही-मन खूब प्रशंसा की। वे उसकी दुरवस्था देख कर समझ गये थे, कि सरस्वती देवीका यह अनन्य उपासक लक्ष्मीकी कुछ परवाह नहीं करता। यह भूखों मर जायेगा; कष्टपर कष्ट सहेगा, परन्तु धनके लिये किसीके सामने हाथ नहीं फैलावेगा। इसलिये कोई ऐसी तदबीर करनी चाहिये, जिसमें इसकी दरिद्रता दूर हो जाये। परन्तु क्या यह मुझसे धन लेना स्वीकार करेगा? कदापि नहीं।

इस प्रकार सोच-विचार कर उन्होंने चतुर चरोंके साथ निपुण विश्वकर्म्माओंको भेजकर, सुदामाके ग्राममें उसके लिये

एक सुन्दर मकान बनवा देनेका प्रबन्ध किया और साथ ही प्रचुर धन और यथोचित वस्त्रालङ्कार भी भेजवा दिया। परन्तु सुदामाको इसकी कुछ भी खबर न हुई।

कई दिनोंतक श्रीकृष्णके यहाँ रहकर, सुदामाने घर जानेकी इच्छा प्रकट की। श्रीकृष्णने प्रेम पूर्व्वक बारबार गले लगाकर उसे विदा किया। उस समय उनकी आँखें आँसूसे भरी थीं। सुदामाकी भी वही दशा थी। दोनोंको एक दूसरेका वियोग असहनीय हो रहा था। श्रीकृष्ण बहुत दूरतक सुदामाके साथ आकर पहुँचा गये और लौटनेके समय बोले--"भाई सुदामा! मुझे भूल न जाना। कभी कभी आकर दर्शन देते रहना।"

यह कहकर श्रीकृष्ण लौट आये। सुदामा मन-ही-मन उनके प्रेम, सौजन्य और उदारताकी प्रशंसा करता हुआ अपने घरकी ओर चला। वह मन-ही-मन कहने लगा, श्रीकृष्णने मेरी दरिद्रता देखकर सहानुभूति तो खूब प्रगट की, परन्तु दिया कुछ भी नहीं। चलो, यह अच्छा ही हुआ। क्योंकि धन और सुख भगवानकी भक्तिके प्रधान बाधक हैं। शायद इसीलिये बुद्धिमान बन्धुने मुझे कुछ नहीं दिया है। परन्तु ब्राह्मणी सोचती होगी, कि मैं शीघ्र ही रुपयोंका तोड़ा लिये आता हूँ। मुझे खाली हाथ पाकर वह अवश्य ही हताश होगी। खैर, उसे समझा लूंगा।

इसी प्रकार बातें सोचता हुआ, सुदामा अपने घर पहुँचा। परन्तु यह क्या! सुदामाकी वह टूटी-फूटी झोंपड़ी कहाँ गई?

उसके स्थानपर यह सुन्दर महल किसने बनवा लिया? यह अघटन घटना देख, सुदामा कलेजा थामकर बैठ गया। यह लो, चौबेजी छब्बे बनने गये, परन्तु दूबे हो गये! रही सही झोंपड़ी भी गायब हो गई! हाय, पतिव्रता ब्राह्मणी किधर गई! प्यारे बच्चे कहाँ गये!! किस हृदयहीनने उन्हें विताड़ित कर उनका वासस्थान तक छीन लिया! धनके लोभमें पड़कर मैंने अपनी स्त्री और बच्चोंसे भी हाथ धोया!!

दुःखित हृदय सुदामा हताश होकर बैठ गया। उसकी आँखोंके सामने अन्धेरा छा गया। इतनेमें एक दासीने आकर कहा,—"यहाँ क्यों बैठे हैं? भीतर चलिये, पण्डितानीजी बुला रही हैं।"

सुदामा—"कौन पण्डितानी?"

दासी—"इस घरकी मालकिन—आपकी स्त्री!"

सुदामा—"मेरी स्त्री और इस घरकी मालकिन! क्यों गरीब ब्राह्मणसे ठट्ठा कर रही हो?"

इसके बाद सुदामाकी स्त्रीने स्वयं आकर सब हाल कहा और उसे भीतर लिवा ले गई। सुदामाने श्रीकृष्णचन्द्रको भूरि भूरि धन्यवाद दिया और इतना धन-ऐश्वर्य पाकर भी निस्पृह भावसे भगवद्भजन करने लगा।

२४

श्रीकृष्णकी प्रतिज्ञा

राजा युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ समाप्त कराकर श्रीकृष्णके द्वारका लौट आनेपर, वहां एक और ही गुल खिला और उसी समय सुप्रसिद्ध 'महाभारत' का सूत्रपात हुआ जिसका विषमय फल इस देशको आज भी भोगना पड़ रहा है!

राजा युधिष्ठिरका अतुल ऐश्वर्य्य और उनकी अपूर्व्व शान शौकत देखकर, दुर्योधनके हृदयमें डाहकी प्रचण्ड ज्वाला धधक उठी। उसने अपने कुटिल-मति साथियोंसे सलाह करके निश्चय किया, कि जिस तरह हो राजा युधिष्ठिरका राजपाट छीनकर उसे पथका भिखारी बनाना चाहिये। परन्तु इस समय उसने सम्राट्-पदवी धारण की है। देशके बड़े बड़े राजाओंने उसकी अधीनता स्वीकार की है। ऐसी दशामें, उसे सम्मुख समरमें जीतना बड़ा ही कठिन कार्य्य है। इसलिये कोई दूसरी ही तदबीर सोचनी चाहिये। निश्चय हुआ, कि राजा युधिष्ठिरको जूआ खेलनेके लिये राजी किया जाये और छलसे समस्त राजपाट छीन लिया जाये।
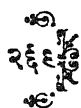
परामर्श ठीक हो जानेपर, दुर्योधनने अपने पिता अन्धराज धृतराष्ट्रको भी राजी कर, जुआ खेलनेके लिये युधिष्ठिरके पास निमन्त्रण भेजवाया। दुर्भाग्यवश राजा युधिष्ठिरने यह अनुचित आमन्त्रण स्वीकार कर लिया और यह जानते हुए भी, कि जुआका दुर्व्यसन अत्यन्त गर्हित है, हस्तिनापुर जाकर जुआ खेलने लगे। इसका परिणाम यह हुआ, कि समस्त धनधान्य और राजपाट हार गये! यहांतक, कि मूर्खतावश भाइयोंको और अन्तमें द्रौपदीको भी दांवपर रख दिया। दुर्योधनकी ओरसे धूर्त्त-धुरन्धर शकुनी पासा फेंक रहा था। उसने छलसे सब बाजी जीत ली। युधिष्ठिर अपना सर्वस्व खोकर चुपचाप बैठ गये!

राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञके समय, मय दानवकी बनाई हुई सभामें, दुर्योधन भ्रमवश जलको स्थल और स्थलको जल समझकर गिर पड़ा था। उस समय भीमसेन आदिने उसकी खूब हँसी उड़ाई थी। द्रौपदीने तो यहांतक कह डाला था, कि अन्धेकी सन्तान भी अन्धी ही होती है। दुर्योधन अपने उस अपमानको भूला न था। इस समय बदला लेनेका अच्छा अवसर देखकर उसने भरी सभामें द्रौपदीको घसीट लानेकी आज्ञा दी और जहां तक बन पड़ा, अपने अपमानका खूब बदला लिया। द्रौपदी की लाञ्छना देखकर भीमसेन आदिको बड़ा क्रोध हुआ। परन्तु युधिष्ठिरके रोकनेसे ये कुछ भी न कर सके। अन्तमें निश्चय हुआ, कि इस हारके बदले युधिष्ठिर आदि बारह वर्ष

तक वनमें रहें और उसके बाद एक वर्षतक अज्ञातवास करें। यदि अज्ञातवासके समय पाये जायें, तो दण्ड-स्वरूप फिर बारह वर्षके लिये वनवासी हों।

यह समाचार सुनकर श्रीकृष्णको बड़ा दुःख हुआ। वे पाण्डवोंका पता लगाकर, तुरन्त उनसे मिले। उस समय वहां कृष्णके सिवा युधिष्ठिरके और भी कितने ही बन्धु-बान्धव और हित-मित्र भी उपस्थित थे। कौरवोंकी दुष्टताका हाल सुनकर, श्रीकृष्ण अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने कहा,—"मालूम होता है, कि पृथिवी दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि आदिका रक्तपान करना चाहती है। हमें इस अपमानका बदला लेना ही होगा।"

श्रीकृष्ण शान्ति-प्रिय थे। संसारमें शान्तिका साम्राज्य स्थापित करना ही उनके जीवनका उद्देश्य था। परन्तु कौरवोंने पाण्डवोंके प्रति जो गर्हित और नीच व्यवहार किये थे, उन्हें सुनकर वे नितान्त क्षुभित हो गये। उन्हें इस प्रकार विक्षुब्ध देखकर अर्जुन आदिने समझा-बुझाकर शान्त किया। परन्तु यह शान्ति चिरस्थायिनी न हो सकी। द्रौपदीने अपनी लाञ्छनाका हाल सुनाकर उन्हें और भी विचलित कर दिया। उसने कहा,—"भाई कृष्ण! तुम्हारे और महाबलवान पाण्डवोंके जीतेजी मुझे यह अपमान भोगना पड़ा है। पापियोंने भरी सभामें मेरी चोटी पकड़कर घसीटते हुए, मेरा जो अपमान किया है, उसे मैं इस जीवनमें कभी नहीं भूल सकती। मालूम होता है, कि मैं

पति-पुत्र-हीना हूँ ; मेरे माता-पिता, भाई-बन्धु सभी मर मिटे हैं। यदि ऐसा नहीं होता; तो कर्ण, दुर्योधन, शकुनी और दुःशासन द्वारा मुझे इतनी लाञ्छना न भोगनी पड़ती! कृष्ण! उस घोरतर अपमानकी ज्वालासे आजतक मेरा हृदय दग्ध हो रहा है!"

यह कहकर द्रौपदी फूट-फूटकर रोने लगी। तब अर्ज्जुन और द्रौपदीके भाई धृष्टद्युम्नने उसे सान्त्वना देते हुए कहा, कि हमलोग अवश्य ही कौरवोंसे इस अपमानका बदला लेंगे। श्रीकृष्णने कहा,--"द्रौपदी! तुम चिन्ता न करो। वह दिन शीघ्र ही आयेगा, जब तुम्हारे शत्रुओंकी पत्नियां अपने पतियोंका रक्ताक्त कलेवर धराशायी देखकर आँसू बहायेंगी। तुम्हारा राजपाट फिर तुम्हें वापस मिलेगा। मैं अपने क्षमतानुसार पाण्डवोंके उद्देश्य-साधनमें त्रुटि न करूँगा। मेरी बातें कदापि व्यर्थ नहीं होंगी। तुम धैर्य्य धारण करो।"

इसके बाद उन्होंने युधिष्ठिरसे कहा—"आपने बड़ी भूलकी, जो मुझे पहले ही नहीं जताया। यदि मैं मौजूद होता, तो कदापि यह अनर्थकारी काण्ड न होने देता। स्त्री, जुआ, सुरापान और मृगया ये वास्तवमें बड़े खराब व्यसन हैं। जो मनुष्य इन दुर्व्यसनोंमें फंस जाता है, उसका निश्चय ही सत्यानाश होता है। यदि मैं भीष्म आदिको इस दुर्व्यसनका भयंकर परिणाम समझाने पाता, तो वे निश्चय ही आपलोगोंको इस कुकर्मसे विरत रखते। यदि इतनेपर भी कार्य्य न होता, तो मैं बल-

पूर्व्वक आपलोगोंको रोकता। आपके यज्ञके बाद द्वारका जाकर मैं भी बड़े झँझटमें फँस गया था। दुरात्मा शाल्व अपने मित्र शिशुपालका वदला लेनेके लिये, द्वारकापर चढ़ आया था। इसीसे मैं स्वयं आपलोगोंका समाचार जाननेकी चेष्टा नहीं कर सका। महाराज! आपकी यह हीन दशा देखकर और क्रूर कौरवों द्वारा आपलोगोंके अपमानकी बात सुनकर मुझे बड़ा क्लेश हो रहा है। खैर, समय आनेपर देखा जायेगा। इस समय जिस तरह हो सके दुःखके दिन बिताइये।"

इसके बाद श्रीकृष्ण अपनी वहन सुभद्रा और भानजे अभिमन्युको लेकर द्वारका चले गये। सहदेव और नकुल आदिकी स्त्रियां भी अपने अपने नैहर चली गईं। केवल द्रौपदी पाण्डवोंके साथ रही।

२५
परामर्श-सभा.

पाण्डव गण विविध तीर्थ स्थानोंमें भ्रमण कर, अपने सुदीर्घ निर्व्वासनके दिन बिताते हुए, एकबार द्वारकाके सन्निकट प्रभास क्षेत्रमें उपस्थित हुए। यह सुनकर श्रीकृष्ण और बलदेव भी उनसे मिलनेके लिये, अन्यान्य यदुवंशियों सहित वहां आ पहुँचे। उस समय पाण्डवोंका कष्ट देखकर, सरल हृदय बलराम बड़े दुःखी हुए और दुर्योधन आदिके दुर्व्यवहारोंकी घोर निन्दा करते हुए कहने लगे,—"पाण्डवोंकी यह हीन दशा देखकर दुःख हो रहा है। मूढ़ दुर्योधनने भीषण कलहका जो बीजारोपण किया है, उसका विषम फल एक न एक दिन कौरवोंको अवश्य ही भोगना पड़ेगा। ओह! ऐसा घोर अधर्म्म! आश्चर्य्य है, कि सशैला धरित्री अबतक रसातल क्यों नहीं चली गई!"

प्रसिद्ध यादव योद्धा सात्यकीने कहा,—"भाई राम! यह समय बैठकर परिताप करनेका नहीं, बल्कि कर्त्तव्य पालन करनेका है। राजा युधिष्ठिर कहें या न कहें, हमलोगोंको चाहिये, कि अपनी यादव सेना द्वारा कौरवोंको मारकर युधि-

ष्ठिरका राज्य छीन लें और जबतक ये लोग अपने निर्व्वासनके दिन पूरे कर अपना प्रण निभाते रहें, तबतक हमलोग अभिमन्युको राजसिंहासनपर बिठाकर कार्य्य सँभालें।"

परन्तु श्रीकृष्णको सात्यकीकी सलाह नहीं पसन्द आई। क्योंकि दूसरोंके भरोसे राज्य प्राप्त करना उन्होंने वीर पाण्डवोंके लिये अपमान जनक समझा। उन्होंने कहा,—"निस्सन्देह तुम्हारा कहना सच है, सात्यकी! परन्तु दूसरोंके द्वारा जीता हुआ राज्य लेना राजा युधिष्ठिर कब स्वीकार करेंगे? क्या वे जान-बूझकर अपने क्षत्रित्वमें बट्टा लगावेंगे?"

श्रीकृष्णके इस कथनपर युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा,—"हमने सत्यका आश्रय लिया है। उसीसे असत्यको परास्त करेंगे। दुर्योधन चाहे जितना अन्याय करे। हम उसके साथ न्याय ही करते जायंगे। निर्व्वासनके दिन बिता लेनेपर ही जो होगा, सो होगा। तुच्छ राज्यके लिये धर्म्म छोड़ना मुझे स्वीकार नहीं। हमारे ऊपर आप लोगोंकी जब कृपा बनी है, तब एक न एक दिन राज्य मिल ही जायेगा।"

पाण्डवोंने अपने निर्व्वासनके बारह वर्ष बड़े कष्टसे बिताये। इस बीचमें श्रीकृष्ण बराबर उनकी सुधि लेते रहे और समय समयपर स्वयं भी मिलते रहे। वनवासके बारह वर्ष बीत जाने पर, वेश बदलकर उन्होंने राजा विराटके यहाँ नौकरी करके एक वर्ष अज्ञातवासका भी बिता दिया। समय पूरा हो जानेपर, पाण्डवोंको पहचानकर राजा विराटने बड़ी प्रसन्नता प्राप्त की

और अपनी एक मात्र कन्या उत्तरासे अर्ज्जुनके पुत्र अभिमन्युका विवाहकर दिया। इस विवाहके उपलक्षमें देशके राजे-महाराजे, गुणी-ज्ञानी, बुद्धिमान-बलवान और ऋषि-मुनि आदि प्रायः सभी श्रेणीके मनुष्य एकत्र हुए थे। वहाँ स्वभावतः राजा युधिष्ठिरके राज्यके पुनरोद्धारका प्रसंग चल पड़ा और इस प्रश्नपर विचार करनेके लिये एक दिन समस्त समागत व्यक्तियोंकी एक परामर्श सभा बैठी। श्रीकृष्णने घटनाका सम्पूर्ण विवरण सभाको सुनाकर कहा,—"दुर्योधनने आजतक पाण्डवोंपर जो जो अत्याचार किये हैं, वे आप लोगोंसे छिपे नहीं हैं। उसीके कारण ये आज तेरह वर्षसे वनोंमें मारे मारे फिर रहे हैं। यदि ये चाहते, तो बलपूर्व्वक दुर्योधनसे अपना राज्य छीन ले सकते थे, परन्तु केवल धर्म्मकी रक्षाके लिये इन्होंने नाना प्रकारके कष्ट सहनेपर भी अभीतक ऐसा नहीं किया है। राजा युधिष्ठिरको अधर्म्म और अन्याय पूर्व्वक किसीका राज्य लेना, किसी प्रकार स्वीकार नहीं। अधर्म्म पूर्व्वक यदि इन्हें स्वर्गका राज भी मिल जाये, तो उसे लेना स्वीकार न करेंगे और धर्म्मपूर्व्वक केवल एक ग्राम पाकर ही सन्तोष कर लेंगे। यद्यपि कौरवोंने इन्हें पूर्ण रूपसे सतानेमें कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी है, तथापि ये उनका अनिष्ट नहीं चाहते। अधिक नहीं, यदि इन्हें केवल इनकी अपनी प्राप्तकी हुई भूमि भी मिल जाये, तो भी ये सन्तुष्ट हो जायंगे। जुएमें हारनेपर इनसे जो प्रतिज्ञाएँ कराई गई थीं, उनका इन्होंने अक्षरशः पालन कर दिया है। इसलिये अब कौरवोंको

उचित है, कि इनका राज्य इन्हें लौटा दें। परन्तु मालूम नहीं, दुर्योधनकी इस सम्बन्धमें क्या इच्छा है। आपलोग सोच-समझ कर कोई ऐसा उपाय स्थिर कीजिये, जिसमें यह विवाद मिट जाये और कौरव तथा पाण्डव दोनोंकी भलाई हो। मेरी तो यह राय है, कि पहले एक प्रमादहीन धार्म्मिक दूत दुर्योधनके पास भेजा जाये और वह उसे राजा युधिष्ठिरको आधा राज्य देकर सुलह कर लेनेकी सलाह दे।"

इस सभामें राजा युधिष्ठिर, राजा विराट तथा महाराज द्रुपदके सभी हिमायती मौजूद थे। पाण्डवोंके प्रति कौरवोंका दुर्व्यवहार सबको असह्य हो रहा था और प्रायः सभी चाहते थे, कि बलपूर्व्वक दुर्योधनको परास्तकर, युधिष्ठिरका राज्य उससे छीन लिया जाये। परन्तु शान्तिकामी श्रीकृष्णको यह बात पसन्द न थी। इसीसे उन्होंने ऐसा प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसमें शान्ति बनी रहे और कार्य्य भी हो जाये। उनका प्रस्ताव सबने पसन्द किया। बलदेवने तुरन्त उठकर इस प्रस्तावका समर्थन किया और कहा,—"युधिष्ठिरने जान-बूझकर जुएमें अपना सर्व्वस्व गँवाया है। लोगोंके मना करनेपर भी, ये जुआ खेलने चले गये थे। इसमें केवल कौरवोंका ही अपराध नहीं है। इसलिये उनके साथ संग्राम न कर, सन्धि ही कर लेना उचित है। यदि कोई चतुर व्यक्ति जाकर राजा धृतराष्ट्रको समझाये, तो मुझे विश्वास है, कि वे पाण्डवोंको कुछ देकर इस विवादको मिटा डालनेके लिये राजी हो जायेंगे।"

बलदेवका कथन सुनकर श्रीकृष्णका शिष्य बलवान सात्यकी बहुत बिगड़ा। उसने कहा,—"जिसकी जैसी प्रकृति होती है, उसके मुँहसे वैसी ही बातें भी निकला करती हैं। संसारमें सूर और कापुरुष दोनों ही हैं। जिस तरह एक ही वृक्षकी हरी भरी टहनियोंमें अच्छे फल लगते हैं और सूखी टहनियाँ फलहीन होती हैं, उसी तरह एक ही वंशमें वीर और कायर भी पैदा होते हैं। मुझे बलदेवके कथनपर दुःख नहीं है। दुःख उन लोगोंके लिये हो रहा है, जो चुपचाप इस तरहकी बातें सुन रहे हैं। क्या कोई विचारवान इस बातको स्वीकार कर सकता है, कि जुआ खेलनेमें युधिष्ठिरका दोष था? यदि युधिष्ठिर दुर्योधनको जुआ खेलनेके लिये बुलाते और अपना सर्वस्व हार जाते, तो धर्म्मतः ये पराजित समझे जाते थे। परन्तु उन दुरात्माओंने इन्हें जुएके लिये बुलाकर छलसे इन्हें हराया है, तब इसका प्रतिफल उन्हें भोगना ही पड़ेगा। अब युधिष्ठिर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुके हैं और अपने पैतृक राज्यके अधिकारी हैं। इन्हें राज्यके लिये दुर्योधनके पास जाकर प्रार्थना करनेकी आवश्यकता नहीं, वरं बलपूर्व्वक उससे अपना राज्य छीन लेनेकी जरूरत है। दुर्योधन दुराचारी और झूठा है। अब वह कह रहा है, कि अज्ञातवासके समय हमने पाण्डवोंको पहचान लिया था। भीष्म आदि उसे बहुत समझाते हैं, परन्तु नहीं मानता। ऐसी दशामें मेरी तो राय है, कि उसके पास युद्धका पैगाम भेजा जाये और साफ़ साफ़ कह दिया जाये, कि या तो वह

सम्मान पूर्वक राजा युधिष्ठिरको उनका पैतृक राज्य लौटा दे या युद्धके लिये तैयार हो जाये।"

सात्यकीका कथन सुनकर महाराज द्रुपदने कहा,—"मैं तुमसे सहमत हूँ। दुर्योधन अपनी इच्छासे कदापि राज्य नहीं लौटायेगा; राजा धृतराष्ट्र भी उसीका अनुमोदन करेंगे। भीष्म और द्रोण आदि दुर्वल हृदयके मनुष्य हैं, वे उसका साथ नहीं छोड़ेंगे। इसलिये मैं वलदेवकी वातका समर्थन नहीं कर सकता। दुरात्मा दुर्योधनकी खुशामद करना वृथा है। नर्मीका व्यवहार करनेसे वह कभी नहीं मानेगा। गधेसे नर्मीका व्यवहार करनेसे कुछ फल हो सकता है, परन्तु हिंसक जन्तुओंसे नर्मीका व्यवहार करना वृथा है। हमलोगोंको शीघ्रताके साथ लड़ाईकी तैयारीमें लग जाना चाहिये और अपने इष्ट-मित्रों तथा सगे-सम्वधियोंसे कह देना चाहिये, कि अपनी सेना सहित तैयार रहें। इसके साथही साथ दुर्योधनके पास भी एक दूत भेजकर उसे कहवा दिया जाये, कि या तो लड़ाईके लिये प्रस्तुत हो जाये, या पाण्डवोंको आधा राज्य लौटा दे।"

श्रीकृष्ण कौरवों और पाण्डवोंके युद्धके विरोधी थे। उनकी कदापि यह इच्छा न थी, कि ये दोनों आपसमें लड़ें। इसीलिये उन्होंने राजा युधिष्ठिरको आधा राज्य पाकर ही सन्तोष कर लेनेके लिये राजी कर लिया था। उन्होंने महाराज द्रुपदकी प्रशंसा करते हुए कहा—"वयोवृद्ध महाराज द्रुपदने जो कुछ कहा है, वह सर्वथा माननीय है। लड़ाईके लिये प्रस्तुत रहते हुए भी हमलोगोंको

ऐसी ही चेष्टा करनी चाहिये, जिसमें कौरव और पाण्डव आपसमें लड़-झगड़ कर नष्ट होनेसे बच जायें। क्योंकि हमारे लिये दोनों ही बराबर हैं। हमलोग विवाहके उपलक्षमें यहां आये हैं। वह शुभ-कार्य्य सम्पन्न हो चुका। इसलिये अब हम लोगोंको यहांसे प्रस्थान करना चाहिये। यदि दुर्योधन स्वीकार न करे, तो सबके पास दूत भेजनेके बाद मुझे खबर दीजियेगा।"

इसके बाद और लोगोंने भी इस मतका समर्थन किया और महाराज द्रुपदके पुरोहितको दूत बनाकर दुर्योधनके पास भेजा। तदन्तर सभा विसर्जित हुई और श्रीकृष्ण आदि यथा समय द्वारका लौट आये।

२६

दुर्योधनने सन्धि स्वीकार न की। फलतः दोनों ओरसे युद्धकी तैयारी होने लगी। दोनों पक्षवालोंने अपने अपने इष्ट-मित्रोंके पास सहायताके लिये दूत भेजा। सैन्य संग्रह होने लगा। अस्त्र-शस्त्र भी एकत्र होने लगे। दोनोंके सगे-सम्बन्धी एक ही थे। इसलिये यह बात पहले ही तै हो चुकी थी, कि जिसके पास जिस पक्षका निमन्त्रण पहले पहुँच जायगा, वह उसी पक्षकी ओरसे युद्ध करनेके लिये वाध्य होगा। अन्यान्य लोगोंको तरह श्रोकृष्ण भी दोनोंके रिश्तेदार थे। इसलिये उनको अपनी ओरसे लड़नेका निमन्त्रण देनेके लिये स्वयं दुर्योधन और अर्ज्जुन द्वारका पहुंचे श्रीकृष्ण उस समय सोये थे। पलँगके सिरहाने और पायताने दो चौकियां रखी थीं। दुर्योधन कुछ पहले पहुँचा और पायतानेकी ओर बैठना अपने आत्मसम्मानके विरूद्ध समझकर, सिरहानेवाली चौकीपर बैठकर श्रीकृष्णके उठनेकी प्रतीक्षा करने लगा। इतनेमें अर्ज्जुन भी पहुँच गये और पायतानेवाली चौकीपर बैठ गये। आँख खुलनेपर श्रीकृष्णने पहले अर्ज्जुन और पीछे दुर्योधनको देखा।
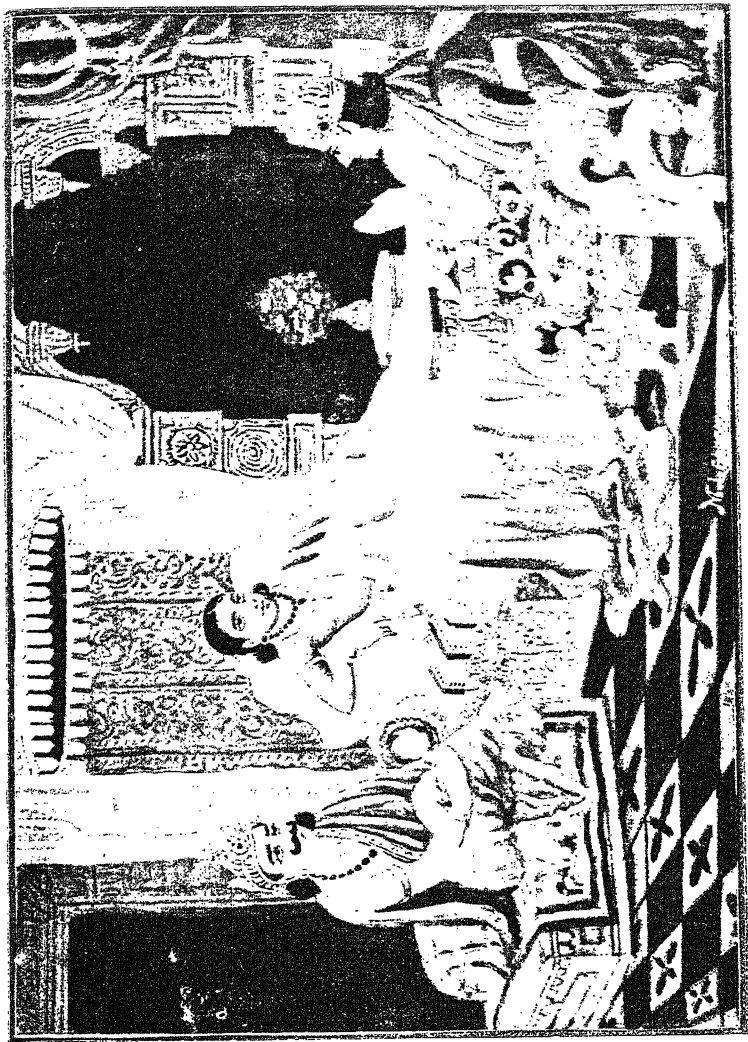
दुर्योधन ! इसमें सन्देह नहीं, कि तुम पहले आये, परन्तु मैंने तो पहले अर्जुनको ही देखा है ।

[देखिये—पृष्ठ संख्या २८९

दुर्गा प्रेस, कलकत्ता]

कुशल प्रश्नके वाद आगमनका कारण पूछनेपर दुर्योधनने कहा,—"पाण्डवोंके विरुद्ध युद्धमें सहायता लेनेके लिये मैं आपके पास आया हूँ।"

अर्जुन बोले—"मैं भी इसलिये आया हूँ, कि आप हमारी सहायता करें।"

दुर्योधन—"यद्यपि आपसे हमलोगोंका समान सम्बन्ध है, परन्तु मैं पहले आया हूँ, इसलिये आपको मेरी सहायता करनी चाहिये।"

श्रीकृष्ण—"दुर्योधन! इसमें सन्देह नहीं, कि तुम पहले आये, परन्तु मैंने तो पहले अर्जुनको ही देखा है। इसके सिवा तुम दोनों मेरे लिये समान हो, इसलिये दोनोंकी सहायता करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ और साथ ही मैंने यह भी निश्चय कर लिया है, कि तुमलोगोंके पारस्परिक झगड़ेमें मैं किसी पक्षकी ओरसे हथियार न उठाऊँगा। अब एक ओर मेरी नारायणी सेना है और दूसरी ओर अकेला मैं हूँ। अर्जुन तुमसे छोटा है और मेरी नज़र भी पहले उसीपर पड़ी है, इसलिये उसे अधिकार है, कि अपने इच्छानुसार मुझे या मेरी सेनाको पसन्द कर ले। यदि वह मेरी सेना लेना पसन्द करेगा तो मैं अकेला तुम्हारी ओर रहूँगा और यदि मुझे लेना स्वीकार करेगा, तो मेरी सेना तुम्हारी सहायता करेगी।"

दुर्योधनने प्रसन्नता पूर्व्वक यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। तदन्तर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा,—"अर्जुन! तुम अपने

इच्छानुसार मुझे या मेरी नारायणी सेनाको अपनी सहायताके लिये चुन लो।"

अर्ज्जुनने कहा,--"मैं तुम्हें चाहता हूँ, तुम्हारी सेनाकी मुझे आवश्यकता नहीं है!"

यह सुनकर दुर्योधन बहुत खुश हुआ। निरस्त्र श्रीकृष्णकी अपेक्षा उनकी महती नारायणी सेना, उसने अधिक पसन्द की। इसके उपरान्त वह बलदेवके पास गया। परन्तु बलदेवने इस युद्धमें किसीकी सहायता करना स्वीकार न किया।

दुर्योधनके चले जानेपर श्रीकृष्णने अर्ज्जुनसे पूछा, कि तुमने यह जानते हुए भी, कि मैं युद्ध न करूँगा, मेरी सेना न लेकर मुझे लेना क्यों पसन्द किया?

अर्ज्जुनने कहा,—"इसमें सन्देह नहीं, कि तुम अकेले ही समस्त कौरव दलका संहार कर सकते हो। तुम्हारी कीर्त्ति त्रिलोक विख्यात है। परन्तु मैं तुम्हारी सहायतासे अकेले ही उन्हें जीतकर संसारमें सुयश प्राप्त करना चाहता हूँ। इसीलिये तुम्हें समर-पराङ्मुख जानकर भी मैंने तुम्हें लेना स्वीकार किया है। तुम इस युद्धमें मेरे सारथी बनो। यही मेरी आन्तरिक अभिलाषा है।"

श्रीकृष्णने प्रसन्नता पूर्व्वक अर्ज्जुनका सारथी बनना स्वीकार किया।
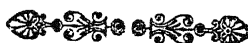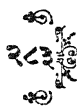
श्रीकृष्ण और सञ्जय

श्रीकृष्णने बड़ी चेष्टा की, जिसमें लड़ाई न हो और यह झगड़ा विना रक्तपातके ही मिट जाये, परन्तु कोई फल न हुआ। राजा द्रुपदके पुरोहितको दुर्योधनने कोरा जवाब दे दिया। अब दोनों पक्षवाले प्राणपणसे युद्धकी तैयारी करने लगे। सारे आर्य्यावर्तमें लड़ाईका डङ्का बज गया। देश देशके योद्धा अपनी अपनी चतुरंगिणी सेनाएँ लेकर कुरुक्षेत्रके मैदानमें एकत्र होने लगे। सारे देशमें खलबली मच गई।

बेचारे राजा धृतराष्ट्र बड़ी चिन्तामें पड़े। जबसे उन्होंने सुना, कि श्रीकृष्णने अर्ज्जुनका सारथ्य स्वीकार कर लिया है, तबसे उनकी बेचैनी और भी बढ़ गई। मानों उनकी दिव्य दृष्टि युद्धका भीषण परिणाम स्पष्ट देखने लगी। उन्होंने सोचा, जिस ओर श्रीकृष्ण हैं, उसी ओर विजय भी हैं। पाण्डवोंका पक्ष हर प्रकारसे प्रबल है। भीष्म और द्रोण आदिने यद्यपि हमारी ओरसे लड़ना स्वीकार किया है, परन्तु वे हृदयसे

पाण्डवोंके प्रेमी हैं। इस युद्धमें अवश्य ही कुलक्षय होगा। यह सोचकर उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, कि युद्ध न हो, परन्तु दुर्योधनके सामने उनकी एक न चली। अन्तमें लाचार होकर उन्होंने किसी तरह युधिष्ठिरको ही समझा बुझाकर युद्धसे विरत करनेका विचार किया। वे जानते थे, कि युधिष्ठिर धर्मभीरू हैं। सम्भव है, कि समझाने बुझानेसे मान जायें और लड़-कर राज्य प्राप्त करनेका प्रयत्न परित्याग कर दें। यद्यपि युधिष्ठिरसे यह कहना, कि तुम अपना प्राप्य अधिकार छोड़कर चुपचाप बैठ जाओ और लड़ाईका विचार छोड़ दो, नितान्त अनुचित था, तथापि राजा धृतराष्ट्रने अपने अमात्य सञ्जयको युधिष्ठिरके पास भेजा।

सञ्जयने युधिष्ठिरके पास जाकर धर्म्मकी दुहाई दी, कुल-क्षयका भय दिखाया, राजपाट आदि सांसारिक वैभवोंकी अस्थिरताका वर्णन किया और बड़ी युक्ति-तर्क दिखाकर, प्रबल प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया, कि युद्ध करना घोर पाप है। तुम लोग अधर्म्ममें प्रवृत्त हुए हो, इसलिये अधार्म्मिक हो।

सञ्जयकी सुदीर्घ वक्तृताके उत्तरमें बहुत सी युक्तिसंगत बातें कहते हुए युधिष्ठिरने कहा,—"मैं कदापि युद्धका पक्षपाती नहीं हूँ। युद्धसे जो कुछ अनिष्ट होनेकी सम्भावना है, उसे मैं अच्छी तरह समझता हूँ। यदि सहज ही अर्थकी सिद्धि हो जाये, तो कोई बुद्धिमान मनुष्य युद्ध नहीं पसन्द करेगा। यदि बिना कर्म्म किये मनुष्योंकी अभिलाषाएँ पूरी हुआ करें, तो कोई मनुष्य

यहाँ मौजूद हैं। इनकी दूरदर्शिता, विचारशीलता, धार्म्मिकता और न्यायप्रियता सुप्रसिद्ध है। देशका प्रत्येक विचारशील व्यक्ति इस बातको स्वीकार करता है। श्रीकृष्ण पाण्डवों और कौरवोंको समदृष्टिसे देखते हैं और दोनोंकी भलाई चाहते हैं। इसलिये येही बतावें, कि युद्ध करके राज्य प्राप्त करना हमारे लिये धर्म्म है या अधर्म्म ?"

श्रीकृष्ण अबतक चुप थे। संजय और युधिष्ठिरका कथोपकथन बड़े ध्यानसे सुन रहे थे तथा संजयकी स्वार्थपरता देख कर, मनही-मन आश्चर्य्यान्वित हो रहे थे। परन्तु जब युधिष्ठिरने धर्माधर्मके विचारका भार उन्हींपर छोड़ दिया, तब वे चुप न रह सके। उन्होंने संजयको सम्बोधन कर कहा,—

संजय! यह तो तुम अच्छी तरह जानते हो, कि मैं कौरव और पाण्डव, दोनोंकी भलाई चाहता हूँ। मैं आरम्भसे ही सन्धिकी चेष्टा करता आ रहा हूँ और पाण्डवोंको सदैव यही परामर्श भी दिया करता हूँ। मेरी ही तरह राजा युधिष्ठिर भी सन्धिके अभिलाषी हैं और इन्होंने कई बार इसके लिये यथा-साध्य प्रयत्न भी किया है। परन्तु राजा धृतराष्ट्र और उनके लड़के बड़े स्वार्थी हैं। अतः अब पाण्डवोंके साथ उनकी सन्धि नितान्त दुष्कर है। फलतः यह विवाद शीघ्र मिटता नहीं दिखाई देता।

राजा युधिष्ठिर कितने धर्मभीरु हैं, यह तुम अच्छी तरह जानते हो। अबतक हमलोग धर्मसे विचलित नहीं हुए हैं, यह

भी तुम्हें मालूम है। इतनेपर तुम राजा युधिष्ठिरको अधार्म्मिक सिद्ध करनेका दुस्साहस कैसे कर रहे हो, यह मेरी समझमें नहीं आता ! स्वजन-परिपालक, राजा युधिष्ठिर यदि उत्साह पूर्व्वक स्वकर्म साधनोद्यत हुए हैं, तो इसमें कौनसा अधर्म्म कर रहे हैं ?

शुचिता पूर्व्वक कुटुम्बका परिपालन करते हुए वेदाध्ययन कर जीवन वितानेकी आज्ञा शास्त्रकारोंने दे रखी है। परन्तु ब्राह्मणोंमें इस विषयमें बड़ा मतभेद है। कोई ज्ञानको सिद्धिका मार्ग बतलाता है और कोई कर्म्म को। परन्तु जिस तरह भोजन किये विना भूख नहीं बुझती, उसी तरह विना कर्म्मानुष्ठानके केवल ज्ञानी होनेसे सिद्धि-लाभ नहीं होती। जिन विद्याओं द्वारा कर्म्म-संसाधित होता है, वे ही फलवती होती हैं और जिन विद्याओंमें कर्म्मानुष्ठानकी विधि नहीं होती, वे निष्फल होती हैं। इसलिये जैसे पानी पीनेके साथ ही प्यासे जीवकी प्यास बुझ जाती है और जलपान करनेका प्रत्यक्ष फल उसे प्राप्त हो जाता है, उसी तरह ऐसे ही कर्म्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये, जिनका प्रत्यक्ष फल इहकालमें ही प्राप्त हो जाय। संजय ! संसारमें कर्म ही प्रधान है। जो मनुष्य दूसरे किसी विषयको कर्मकी अपेक्षा उत्कृष्ट मानता है, उसके सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। विधाताकी सृष्टिमें सर्वत्र कर्म्मकी ही प्रधानता दिखाई देती है। इन्द्र, चन्द्र, सूर्य्य, अग्नि, वरुण और वायु आदि सभी अहोरात्रि अविश्रान्त भावसे कर्म करते दिखाई देते हैं।

हे संजय ! तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि चारों वर्णोंका धर्म

जानते हुए भी केवल राजा धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी भलाईके लिये पक्ष-पात पूर्ण बातें कह रहे हो! युधिष्ठिर क्षत्रिय हैं, राजपुत्र हैं, लड़कर राज्य प्राप्त करना या समरभूमिमें प्राण विसर्ज्जन कर देना उनका धर्म्म है। तुम सन्धिके पक्षपाती हो और बार बार धर्म्मकी दुहाई देते हो; परन्तु क्या तुम बतला सकते हो, कि क्षत्रियोंके धर्म्मकी रक्षा लड़ाई करनेसे हो सकती है या न करनेसे? धर्म्म-पूर्व्वक प्रजाका पालन कर दुष्टोंका दमन और शिष्टोंका सेवा करना ही राजधर्म है। राजा युधिष्ठरमें राजोचित सभी गुण मौजूद हैं। इसलिये वे धर्म्मतः राज्यके अधिकारी हैं। दुष्टोंके दमनके लिये ही युद्धकला और शस्त्रास्त्रोंकी सृष्टि हुई है। दुर्योधनने सनातन राजधर्म्मकी अवहेलना कर तस्करकी भाँति छलसे राजा युधिष्ठिरका राज छीन लिया है। अन्यान्य कौरवोंने इस दुष्कर्ममें सहायता दी है। इसके लिये यदि राजा युधिष्ठिरको प्राणतक दे देना पड़े, तो भी श्लाघनीय है। परन्तु पैतृक राज्यके उद्धार करनेसे विमुख होना किसी तरह उचित नहीं।

कौरवोंने पाण्डवोंके ऊपर घोर अत्याचार किया है। उन्होंने भरी सभामें द्रौपदीका अपमान किया था। उस समय विदुरके सिवा किसीने उसके कुकर्म्मकी निन्दा नहीं की थी। संजय! इस समय तुम युधिष्ठिरको धर्मोपदेश करने आये हो। परन्तु जिस समय दुःशासन द्रौपदीकी चोटी पकड़कर सभामें घसीट लाया था, उस समय तुम्हारी धर्म्म-बुद्धि कहां चली

गई थी? उस समय तुमने धार्तराष्ट्रोंको क्यों नहीं धर्मका उपदेश दिया? भीष्म, द्रोण, कृप आदि सभी बैठे हुए एक-वस्त्रा रजस्वलाका अपमान देख रहे थे, परन्तु किसीने उठकर दुष्टोंको रोकने और समझानेकी चेष्टा नहीं की! न जाने उस समय तुमलोगोंकी धार्म्मिकता कहाँ छिप गई थी!

खैर, इस समय उन बीती बातोंके दुहरानेकी आवश्यकता नहीं। तुम राजा धृतराष्ट्रसे कह देना, कि हमलोग सन्धि कर लेनेके लिये तैयार हैं। मैं युद्धका पक्षपाती नहीं हूँ। मेरी कदापि यह इच्छा नहीं है, कि कौरव और पाण्डव आपसमें लड़ झगड़ कर विनष्ट हों। इसलिये मैं स्वयं एकबार राजा धृतराष्ट्रसे मिलनेकी इच्छा करता हूँ। यदि वे लोग मेरी बात मानकर सन्धिकर लेंगे, तो अच्छा ही होगा, अन्यथा जो कुछ होना है, वह तो निश्चय ही होगा।"

श्रीकृष्णका न्याय-संगत कथन सुनकर संजय चुप हो गया। उसने उनसे क्षमा प्रार्थना कर कहा,—"हे नरदेव! आपका कथन यथार्थ है। आप एकबार अवश्य हस्तिनापुर आइये। सम्भव है, कि आपकी चेष्टा फलवती हो। मैं अब जाता हूँ। मैंने यदि कोई अनुचित बात कही हो, तो क्षमा कीजियेगा।"

इसके बाद संजयने हस्तिनापुरके लिये प्रस्थान किया।

२८

सन्धि-चर्चा.

यद्यपि श्रीकृष्णको सन्धि होनेकी कोई आशा न थी, तथापि अपनी ओरसे एकबार और पूर्ण प्रयत्न कर लेना उचित समझ कर, संजयके चले जानेपर, अपनी पूर्व्व प्रश्रुतिके अनुसार, उन्होंने हस्तिनापुर जानेकी इच्छा प्रकट की। परन्तु युधिष्ठिरने सम्मति न दी। उन्होंने कहा,—"दुर्योधन कुटिल प्रकृतिका मनुष्य है। सम्भव है, कि वह तुम्हारे साथ कोई दुर्व्यवहार कर बैठे। इसलिये मेरी रायमें तुम्हारा हस्तिनापुर जाना उचित नहीं। तुम्हारे बिना मुझे स्वर्गका राज्य भी स्वीकार नहीं है। यदि सन्धिका प्रस्ताव भेजना ही है, तो किसी दूसरे मनुष्य द्वारा भेज दिया जायेगा।"

परन्तु कृष्णने यह बात स्वीकार न की। उन्होंने कहा—"मैं दुर्योधनको अच्छी तरह जानता हूँ और मेरा यह भी विश्वास है, कि वह किसी तरह सन्धि स्वीकार न करेगा। परन्तु एकबार और उसके पास जाकर सन्धिका प्रस्ताव उपस्थित करनेसे किसीको हमें दोष देनेका अवसर मिलेगा। इसलिये मैं स्वयं एकबार

कुरु-सभामें जानेकी इच्छा करता हूँ। मुझे दुर्योधनके दुर्व्यवहारोंका जरा भी भय नहीं है। वह मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। यदि कौरवगण मुझपर किसी प्रकारका अत्याचार करनेको उद्यत होंगे, तो मैं अकेला ही उनका संहार कर डालूंगा। कौरवोंके पास मेरा जाना किसी प्रकार निष्फल नहीं होगा। यदि मेरे समझानेसे आपके स्वार्थोंकी रक्षा कर उन लोगोंने सन्धि कर ली तो अच्छा ही है, अन्यथा संसारको हम दिखा सकेंगे, कि दुर्योधनके अन्याय करनेपर भी हम न्याय-पथसे विचलित नहीं हुए। मेरी समझमें यह कम लाभकी बात नहीं है।"

श्रीकृष्णका कथन सुनकर राजा युधिष्ठिरने उन्हें स्वच्छन्दता पूर्व्वक हस्तिनापुर जानेकी अनुमति दे दी और कहा, कि हम लोगोंका तुम्हारे ऊपर पूर्ण विश्वास है, तुम जो कुछ कर आओगे, वह हमें सहर्ष स्वीकार होगा। तुम हमें और हमारे शत्रुओंको अच्छी तरह जानते हो। अर्थतत्वज्ञता और वाग्मितामें भी तुमने यथेष्ट पारदर्शिता प्राप्त की है। इसलिये वहां जाकर यथासाध्य ऐसी चेष्टा करना जिसमें कुल-क्षय होनेसे बच जाये और हम दोनों परस्पर सौहार्द पूर्व्वक जीवन बिता सकें। ईश्वर करे तुम्हारी यात्रा सफल हो।

यह कह उन्होंने यात्राकी तैयारी करनेकी आज्ञा दी। राजा युधिष्ठिरका उपर्युक्त कथन सुनकर श्रीकृष्णने समझा, कि कहीं ऐसा न हो, कि सन्धि हो जानेकी आशामें ये लोग युद्धकी तैयारी स्थगित कर दें। इसलिये उन्होंने राजा युधिष्ठिरको

क्षात्र-धर्म्मका उपदेश देते हुए कहा,—"साधु सन्यासियोंकी भांति कोपीन धारण कर आजन्म ब्रह्मचर्य्य पालन करना या भीख मांगकर जीवन बिताना क्षत्रियोंका धर्म नहीं है। विधाताके निर्देशानुसार संग्राममें विजयी होना अथवा मरकर स्वर्ग प्राप्त करना ही क्षत्रियोंका नित्य धर्म्म है। दीनता क्षत्रियके लिये नितान्त निन्दनीय है। आप दीनताका अवलम्बन कर कदापि राज्यांश प्राप्त न कर सकेंगे। अतएव विक्रम प्रकाश पूर्वक शत्रुको पराजित कर अपना राज्य प्राप्त करनेके लिये सदैव तैयार रहिये। कदापि ऐसी आशा न कीजिये, कि राजा धृतराष्ट्रके लड़के आपसे सन्धिकर लेंगे। कृपा, दैन्य और धर्म्मके भरोसे आप राज्य प्राप्त नहीं कर सकेंगे। कौरवोंके स्वभावसे तो आप अच्छी तरह परिचित हैं। जिस समय कोपीन धारण कर आपने वनयात्रा की थी, उस समय उनके मनमें जरा भी अनुताप नहीं हुआ! भीष्म, द्रोण और विदुर आदिके सामने ही वे आपको जुएके नामसे ठग लेनेमें तनिक भी संकुचित या लज्जित नहीं हुए थे। क्या इससे नहीं स्पष्ट समझा जा सकता है, कि वे आपसे आत्मीयता करना कदापि नहीं चाहते?

मैं कौरव-सभामें जाकर दुर्योधनके दोषोंको प्रमाणित करूँगा और जहांतक हो सकेगा, आपके स्वार्थोंकी रक्षा करते हुए सन्धिकी चेष्टा करूँगा। परन्तु उसका फल कुछ भी न होगा। दुर्योधन किसी तरह अपना हठ नहीं छोड़ेगा और अन्तमें युद्ध अनिवार्य होगा। इसलिये आपलोग युद्धकी तैयारीमें

किसी प्रकारकी शिथिलता न कीजियेगा। अपने योद्धाओंको सावधान कर दीजियेगा, जिसमें प्रचुर शस्त्रास्त्र तथा हाथी, घोड़े और रथ आदि संग्रह कर रखें और प्राणपणसे युद्धकी तैयारीमें लगे रहें।"

यह सुनकर भीमसेनने सोचा, कि कहीं श्रीकृष्ण अपने इस विश्वासके अनुसार, कि युद्ध अवश्य ही होगा, वहां जाकर दुर्योधनको चिढ़ा न दें। इसलिये उन्होंने कहा—"हे कृष्ण! कौरवोंकी सभामें जाकर ऐसी ही बातें करना, जिसमें सन्धि स्थापित हो जाये और लड़ाई झगड़ा न होने पाये। दुर्योधन बड़ा हठी, दुराग्रही और क्रोधी है। उसे युद्धकी धमकी देकर डरानेकी चेष्टा करोगे तो और भी उत्तेजित होगा, क्योंकि वह किसीके सामने नत होना नहीं जानता। अतः जहांतक हो सके उसे नम्रता पूर्व्वक समझानेकी चेष्टा करना। कौरवोंको युद्धमें हराना भी कोई सहज काम नहीं है, क्योंकि उनके पास बहुत सेना है। इसलिये युद्धसे बचना ही हमलोगोंके लिये श्रेयस्कर है। भीष्म आदिसे भी सन्धिकी चेष्टा करनेको कहना। उन लोगोंसे कह देना, कि हमलोग भरसक युद्ध नहीं चाहते। इसलिये जहांतक बन पड़े ऐसी ही चेष्टा कीजिये, जिसमें युद्ध न करना पड़े।"

परम युद्ध-प्रेमी, महा बलवान, उद्दण्ड प्रकृति भीमसेनके वचन सुनकर श्रीकृष्ण आश्चर्य्यमें पड़ गये। उन्होंने कहा—"हे भीम! तुम्हारे मुँहसे इस तरहकी बात तो मैं आज ही सुन रहा

हूँ। तुम तो सदैव युद्धके ही पक्षपाती थे। आज कैसे इतने शान्ति प्रिय हो गये? दुर्योधनसे डर तो नहीं गये? परन्तु क्षत्रियके लिये युद्धसे भयभीत होना बड़ी लज्जाकी बात है। तुम्हें अपने क्षत्रित्वका ख़याल कर युद्धके लिये सदैव प्रस्तुत रहना चाहिये।"

भीमसेन बोले,—"तुम्हारा यह अनुमान गलत है, कि मैं दुर्योधन या उसकी महती सेनासे डरकर सन्धि कर लेनेकी सलाह देता हूँ। एक दुर्योधन क्या, यदि सारा संसार क्रुद्ध हो जाये तो भी मैं भयभीत होनेवाला नहीं। मेरे कथनका तात्पर्य्य केवल इतना ही है, कि कौरव अपने सगे हैं, उनसे भरसक युद्ध न करना ही उचित है।"

इसके बाद अर्ज्जुन तथा नकुलने भी यही राय दी, कि भरसक लड़ाई रोकनेकी चेष्टा करना ही उचित है। वृथा रक्तपात करनेमें कोई लाभ नहीं। इसलिये कौरवोंसे ऐसी ही बातें कहनी चाहियें, जिसमें दोनों दलकी भलाई हो, आपसका विवाद मिट जाये और युद्ध भी न हो। परन्तु सहदेवको यह सलाह पसन्द न आई। उसने उत्तेजित होकर कहा,—"दुर्योधनने हम लोगोंपर जो अत्याचार किया है, उसका बदला लिये बिना हम अपना क्रोध संवरण नहीं कर सकते। इसलिये आप कौरव-सभामें जाकर ऐसी चेष्टा कीजियेगा, जिसमें युद्ध अवश्य हो। हमारे भाइयोंने धर्म्मके खयालसे सन्धि-स्थापनकी राय दी है। परन्तु मैं धर्म्म-कर्म्मको मानना नहीं चाहता। मैं तो केवल समर-

क्षेत्रमें दुर्योधन आदिसे अपने अपमानोंका बदला लेना चाहता हूँ।”

सहदेवकी बात सुनकर सारी युवक मण्डली उत्तेजित हो गई। वीरवर सात्यकीने सहदेवके कथनकी पुष्टि करते हुए कहा—“हे जनार्दन! रणवीर सहदेवने जो कुछ कहा है, वही हम लोगोंकी भी राय है। दुर्योधन क्षमा या दयाका पात्र नहीं है। उसका संहार किये बिना हमलोगोंका क्रोध शान्त नहीं होगा। वनवासके समय पाण्डवोंका कष्ट देखकर तुमने भी क्रोध प्रकाश किया था और कहा था, कि कौरवोंको उनकी करतूतका मज़ा अवश्य चखाना होगा। क्या उस बातको भूल गये?”

इसी समय द्रौपदीने भी आगे बढ़कर, अपने लम्बे केशोंको हाथमें लेकर कृष्णसे कहा,—“अवध्य व्यक्तिको वध करनेसे जो पाप होता है, वध्यको वध न करनेसे भी वही पाप होता है। इसलिये तुम्हें, पाण्डवोंको और हमारे अन्यान्य वीरोंको इस पापसे बचनेका प्रयत्न करना चाहिये। दुरात्मा दुःशासनने मेरे इन्हीं केशोंको आकर्षण किया था। सन्धिकी चर्चाके समय इनका खयाल रखना और साथ ही यह भी न भूल जाना, कि यदि तुम और पाण्डव कौरवोंसे मेरे अपमानोंका बदला न ले सकोगे तो मेरे पिता, मेरे पुत्रोंको और अभिमन्युको लेकर शत्रुओंसे संग्राम करेंगे और मेरे अपमानका बदला लेंगे। जिन हाथोंसे दुरात्मा दुःशासनने मेरी चोटी खींची थी, वे हाथ जबतक तोड़कर उसकी देहसे अलग नहीं कर दिये जायँगे, तबतक

मेरे हृदयको शान्ति नहीं मिलेगी। मैं अपने हृदयमें क्रोधकी प्रवल अग्नि आज तेरह वर्षोंसे धारण कर समयकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। परन्तु आज भी उसके उपशमित होनेका कोई लक्षण नहीं दीखता। तिसपर भीमसेनका धर्म्मढोंग मेरे हृदयमें शूलकी तरह चुभ रहा है।"

यह कहकर, द्रौपदी रो पड़ी। उसकी आँखोंसे द्रवीभूत हुताशनकी भांति उत्तप्त अश्रु-विन्दु टपकने लगे। श्रीकृष्णने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"रोओ मत। तुम जो चाहती हो, वही होगा। शीघ्र ही तुम्हारे शत्रुओंकी स्त्रियाँ तुम्हारी ही तरह रोयेंगी। दुर्योधन कदापि सन्धि स्वीकार न करेगा। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अटल है। तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूरी होगी!"

इसके उपरान्त श्रीकृष्णने सात्यकी और कृत्वर्म्मा आदि उपयुक्त साथियों और कुछ चुने हुए सैनिकोंके साथ शुभ मुहूर्त्तमें हस्तिनापुरके लिये प्रस्थान किया।

२९

श्रीकृष्णका स्वागत.

दूतोंकी जबानी श्रीकृष्णचन्द्रके आगमनका संवाद सुनकर, राजा धृतराष्ट्रने बड़ी धूमधामसे उनके स्वागतकी तैयारी की। उनके ठहरनेके लिये एक विशाल भवन सजाया गया। भेंटके लिये असंख्य रत्न, हाथी, घोड़े, मेष और दास-दासी आदि संग्रह किये गये। नगरके रास्तोंमें सफ़ाई और सजावटकी धूम मच गई! नगरवासियोंने भी बड़े प्रेम और उत्साहसे श्रीकृष्णकी संवर्द्धनामें भाग लिया। समस्त आयोजन हो जानेपर राजा धृतराष्ट्रने महात्मा विदुरको बुलाकर भेंटकी सामग्री दिखाई। विदुरने सब सामान देखकर कहा,—"श्रीकृष्ण सब प्रकार सम्मानके पात्र हैं, उनको प्रसन्न करना हमलोगोंका प्रधान कर्त्तव्य है। परन्तु क्या वे आपसे धन-रत्नकी भेंट लेने आ रहे हैं? मेरी समझमें वे इन चीजोंसे सन्तुष्ट न होंगे। यदि आप उन्हें सन्तुष्ट करना चाहते हैं, तो जिस उद्देश्यसे वे यहाँ आ रहे हैं, उसीकी पूर्त्तिका आयोजन कीजिये। पाण्डव केवल पांच ग्राम पाकर ही सन्धि कर लेना चाहते हैं। परन्तु आप देना नहीं चाहते। इससे स्पष्ट ही प्रतीत होता है, कि आप सन्धि नहीं चाहते और श्रीकृष्णको अर्थके

प्रलोभनमें फंसाकर अपनी ओर मिला लेना चाहते हैं। परन्तु आपकी यह वासना पूरी नहीं होगी। श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेका एक मात्र उपाय यही है, कि आप सन्धि स्वीकार कर लीजिये। पाण्डव आपके पुत्र तुल्य हैं। उन्हें उनका प्राप्य अधिकार प्रदान करना आपका धर्म्म है।"

दुर्योधन चुपचाप ये बातें सुन रहा था। विदुरके मुँहसे सन्धिकी बात सुनते ही वह बोल उठा—"महात्मा विदुर ठीक कह रहे हैं। कृष्णको कुछ देनेकी कोई आवश्यकता नहीं। इससे वे समझेंगे, कि हमलोग पाण्डवोंसे डरकर उनकी खुशामद कर रहे हैं। इसलिये ऐसा करना कदापि उचित नहीं।"

दुर्योधनके वचन सुनकर पितामह भीष्मने कहा,—"कृष्णका सत्कार करो या असत्कार करो, वे क्रुद्ध नहीं होंगे। परन्तु उनकी अवज्ञा करना उचित नहीं है। वे जिसे कर्त्तव्य समझते हैं, उसे अवश्य ही कर डालते हैं। वे किसी उपायसे कर्त्तव्य-विमुख नहीं हो सकते। इसलिये यहाँ आनेपर उनका किसी प्रकारका अपमान करना उचित नहीं है।"

दुर्योधन—परन्तु मैंने तो उन्हें पकड़कर कैद कर लेनेका निश्चय कर लिया है। उनके कैद हो जानेसे पाण्डव अवश्य ही बलहीन हो जायेंगे और समुदय पृथिवी मेरे वशीभूत हो जायेगी। इसलिये कोई ऐसी तदवीर बतलाइये, जिसमें मेरा यह कार्य्य निर्विघ्न सम्पन्न हो जाय!"

श्रीकृष्णके सम्बन्धमें ऐसी बेहूदी बात सुनकर, भीष्म बहुत

नाराज हुए और उस स्थानसे उठकर चले गये। इसके बाद धृतराष्ट्रने दुर्योधनको बहुत कुछ समझाया, कि ऐसा करना नितान्त अनुचित है। क्योंकि श्रीकृष्ण हमारे रिश्तेदार और प्रियपात्र हैं। उनके द्वारा कुरुकुलके अनिष्टकी कोई सम्भावना नहीं हैं। उनका अपमान करनेसे संसारमें हमलोगोंकी बड़ी बदनामी होगी।

उपर्युक्त कथोपकथनके दूसरे दिन श्रीकृष्णने दल-बल सहित हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। नगरवासियोंने बड़े उत्साहसे उनका स्वागत किया। राजा धृतराष्ट्रने भी उनकी अगवानीमें किसी तरहकी कोर-कसर न रखी। पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य तथा राजा धृतराष्ट्रके पुत्रोंने नगरके बाहर जाकर उनकी अगवानी की और बड़े आदर तथा सम्मान पूर्व्वक राज-महलमें लिवा लाये। यहाँ राजा धृतराष्ट्र अपने अमात्यवर्गके साथ श्रीकृष्णके स्वागतके लिये तैयार थे। उनके पधारनेपर सब लोगोंने उठकर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शन किया और रत्ना-लंकृत सिंहासनपर बैठा कर, उनकी पूजा की। इसके बाद यथायोग्य सम्भाषण तथा कुशल-प्रश्न आदि शिष्टाचार समाप्त कर, श्रीकृष्ण अपनी बुआ कुन्ती देवीसे मिलनेके लिये महात्मा विदुरके घर गये।
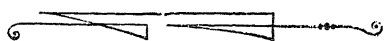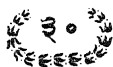
श्रीकृष्ण और कुन्ती.

पाण्डवोंकी वनयात्राके समयसे ही कुन्ती देवी महात्मा विदुरके घर रहती थीं। राजा धृतराष्ट्र आदिसे मिलकर, श्रीकृष्णने तुरन्त ही उनके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। पाण्डवोंके प्रियसखा श्रीकृष्णको देखकर कुन्तीदेवीका हृदय प्रेमसे उमड़ आया। उन्होंने उठकर बड़े प्रेमसे उन्हें छातीसे लगा लिया और प्रेम-पूर्वाक मस्तक सूँघकर शुभाशीर्व्वाद प्रदान किया। श्रीकृष्णको देखकर पुत्रवत्सला कुन्तीके मनकी जो दशा हो रही थी, उसका वर्णन असम्भव है। उन्होंने चौदह वर्षसे अपने पुत्रोंका मुख नहीं देखा था! दिन रात रो-रो कर बिता रही थीं! आज दीर्घ कालके उपरान्त श्रीकृष्णको देखकर उनकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी। मुँहसे कोई बचन न निकला। उन्होंने बड़े कष्टसे अपनेको सँभाला और सब पुत्रोंका अलग अलग नाम लेकर, कुशल आदि पूछकर कहने लगीं—"हे केशव! जिस दिनसे क्रूर-हृदय कौरवोंने मेरे बच्चोंको बन-

वास दिया था, उस दिनसे मैं अनाथिनीकी भाँति जीवन बिता रही हूँ। अपने प्राणसम प्यारे बच्चोंके वनवासके कष्टोंका स्मरण कर, मेरा हृदय टूक-टूक हो जाता है। वास्तवमें मैं बड़ी अभागिनी हूँ। बाल्यकालमें ही पितृहीन हो जानेपर, मैंने ही उनका लालन-पालन किया है। मुझसे अलग होकर वनमें न जाने उन्होंने कितना कष्ट उठाया होगा! जो प्रति दिन प्रचुर धन-रत्न ब्राह्मणोंको दान दिया करते थे, वे आज दरिद्रकी भाँति जीवन बिता रहे हैं! हाय! स्वापद-सङ्कुल वनोंमें, भूमि-शय्यापर वे निश्चिन्तता पूर्व्वक कैसे सोते होंगे! जिन्हें जागरित करनेके लिये नाना प्रकारके मधुर बाजे बजा करते थे, वे वनोंमें हिंसक जीवोंके भीषण चीत्कार सुनकर चौंकते रहे होंगे। हाय! राज-प्रासादोंमें पले हुए हमारे लड़कोंने वनमें भोजन-वसन सम्बन्धीय कितना कष्ट सहा होगा! उसे स्मरणकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। प्यारी पुत्रवधू द्रौपदीकी लाञ्छना देखकर, मेरे शरीरका खून उबल उठा था। उसी दिनसे मैं अपनेको सहायहीना, पुत्रहीना और अनाथिनी समझ रही हूँ। उसी दिनसे मैं तुम्हें अथवा अपने पुत्रोंको भी प्रियपात्र नहीं समझती। मुझे अपने वैधव्यका उतना दुःख नहीं, धन-हीनताका कोई क्लेश नहीं और ज्ञातिवर्गके साथ शत्रुताका भी कोई कष्ट नहीं है। केवल द्रौपदीकी लाञ्छनाकी स्मृति ही इस समय मुझे व्याकुल कर रही है। आज चौदह वर्षोंसे वही एक असहनीय व्यथा मेरे विदग्ध हृदयको व्यथित कर रही है।

उसी दिनसे मैं अपने पुत्रोंके लिये मानों मर गई हूँ अथवा मेरे पुत्र मेरे लिये मृतवत् हो गये हैं। हे केशव! तुम मेरी ओरसे युधिष्ठिरसे कहना, कि वे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें। दीनता अवलम्बन कर जीविका निर्व्वाह करनेकी अपेक्षा, मर जाना ही उचित है। वृकोदर और धनञ्जयसे कह देना, कि क्षत्राणियाँ जिस समयके लिये गर्भ धारण करती हैं, वह समय अब आ गया है। यदि इस अवसरको हाथसे निकल जाने दोगे, तो लोकमें निन्दाके पात्र समझे जाओगे और मैं सदैवके लिये तुम लोगोंको परित्याग करूँगी। समयपर प्राण दे देना क्षत्रियोंका धर्म्म है। क्षात्र-धर्म्म-निरत माद्रीके पुत्रोंसे कह देना, कि तुमलोग विक्रम पूर्व्वक अर्ज्जित सम्पत्तिको प्राण तुल्य समझो, क्योंकि ऐसी ही सम्पत्ति क्षत्रियोंके लिये उचित है। अर्ज्जुनसे कह देना, कि वह द्रौपदीके मतानुसार कार्य्य करे। मैं फिर कहती हूँ, कि मुझे द्रौपदीके अपमानका जितना दुःख है, उतना और किसी बातका नहीं है। तुम्हारे जैसा धुरन्धर वीर, बलदेव जैसा महारथी और पञ्च पाण्डवों जैसे महावीरोंके जीतेजी मुझे ऐसी यातना भोगनी पड़ रही है, यह तुम लोगोंके लिये बड़ी लज्जाकी बात है!"

यह कहते कहते करुणा, दुःख और क्षोभसे कुन्तीका हृदय भर आया। आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। श्रीकृष्णने उन्हें समझाना आरम्भ किया। पहले तो उन्होंने पाण्डवोंका कुशल समाचार सुनाया। इसके बाद उनकी अतुलनीय वीरता, कष्टसहि-

ष्णुता और धार्म्मिकता आदि सद्गुणोंका वर्णन कर, कहा, कि वे चुप नहीं हैं। बड़ी धीरता पूर्व्वक अपने अपमानोंका बदला लेनेकी तैयारी कर रहे हैं। शीघ्र ही वे दुर्योधनको उसके कुकर्म्मोंका प्रतिफल प्रदान करेंगे। आप किसी बातकी चिन्ता न कीजिये। आपके पुत्र क्षत्रियोचित धर्म्मपालन करनेमें सदैव तत्पर रहते हैं। वे बहुत जल्द अपने शत्रुओंको परास्तकर अपना पैतृक राज्य उनसे छीन लेंगे। आपका पितृकुल और श्वसुर कुल दोनों ही, महाप्रतिष्ठित हैं। आप वीर-माता, वीर-पत्नी और सर्व गुण सम्पन्ना हैं। आवश्यकतानुसार आप जैसी महिलाओंको अविचलित चित्तसे दुःखों और विपत्तियोंका सामना करना चाहिये, आप धैर्य्य धारण कीजिये, शीघ्र ही आपकी अभिलाषा पूरी होगी।

सारांश यह, कि श्रीकृष्णने समझा-बुझाकर कुन्तीको शान्त किया। आश्वासित होकर उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—"हे कृष्ण! तुम हमलोगोंके परम हितैषी हो। तुम जो कुछ पाण्डवोंके लिये हितकर समझो, वही करो। मुझे तुम्हारे ऊपर पूरा विश्वास है। मैं तुम्हारी, विद्या-बुद्धि और तुम्हारे बलविक्रमको अच्छी तरह जानती हूँ। तुमने जो कुछ कहा है, वह अवश्य ही सत्य होगा। इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।"

कुन्तीदेवीको अच्छी तरह समझाने-बुझानेपर, उनकी आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण दुर्योधनके पास गये। दुर्योधनने उनके प्रति खूब शिष्टाचार दिखाया और भोजन करनेके लिये कहने लगा।

परन्तु श्रीकृष्णने उसका अन्न ग्रहण करना अनुचित समझ, निमन्त्रण स्वीकार न किया और उसके पूछनेपर साफ़ कह दिया, कि मैं यहाँ पाण्डवोंका दूत बनकर आया हूँ। दूत जिस कार्य्यके लिये जाते हैं, उसे सम्पन्न किये बिना भोजन और पूजा ग्रहण नहीं कर सकते। अतएव जबतक मैं अपने कार्य्यमें सफलता न प्राप्त कर लूँगा, तबतक तुम्हारा आतिथ्य ग्रहण नहीं करूँगा।

दुर्योधनने कहा,—"आप जिस कार्य्यके लिये यहाँ आये हैं; उससे और भोजनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। आपके आगमनका उद्देश्य सिद्ध हो या नहीं, आपको हमारा निमन्त्रण अवश्य स्वीकार करना चाहिये। क्योंकि आपके साथ हमारा कोई वैर-विरोध नहीं है। आप जैसे पाण्डवोंके सम्बन्धी हैं, वैसे ही हमारे भी हैं।"

श्रीकृष्णने हँसते हुए उत्तर दिया,—"यह मेरा सिद्धान्त नहीं, कि मैं किसीको प्रसन्न करनेके लिये या काम, क्रोध, द्वेष और कपटताके वशीभूत होकर अपना धर्म्म छोड़ दूँ। मनुष्य या तो प्रेमपूर्व्वक किसीके यहाँ भोजन करता है या मुसीबतमें पड़ कर। परन्तु न तो तुम मुझे प्रेमसे भोजन कराना चाहते हो और न मैं किसी विपदमें ही हूँ। इसलिये तुम्हारा निमन्त्रण स्वीकार नहीं कर सकता। तुम धर्म्म परायण पाण्डवोंके साथ घोर अन्याय कर रहे हो। जो व्यक्ति पाण्डवोंका द्वेषी है, वह निश्चय ही मेरा भी द्वेषी है। क्योंकि मैं पाण्डवोंसे भिन्न नहीं हूँ। इसके अति-

रिक्त आश्चर्य्य नहीं, कि तुम किसी दुरभिसन्धिसे मुझे भोजन कराना चाहते हो। इसलिये मैं कदापि तुम्हारा भोजन नहीं करूँगा। मैं महात्मा विदुरके यहाँ उतरा हूँ, वहीं भोजन करूँगा।"

इसके उपरान्त श्रीकृष्ण फिर विदुरके घर लौट आये। भीष्म और द्रोण आदिने वहाँ जाकर श्रीकृष्णको अपने यहाँ ले जाना चाहा, परन्तु उन्होंने विदुरके सिवा और किसीके यहाँ रहना स्वीकार न किया।

३१

विदुरकी सलाह

महात्मा विदुरने बड़े आदर और सम्मानसे श्रीकृष्णका अतिथिसत्कार किया। भोजन आदिसे निवृत्त होकर दोनों बैठ कर बातचीत करने लगे। अन्यान्य बातोंके बाद कौरवों और पाण्डवोंके विवादकी बात चल पड़ी। इसपर विदुरने कहा,—"मेरी समझमें आपका यहाँ आना अच्छा नहीं हुआ। क्योंकि दुर्योधन बड़ा हठी, पापी और मूर्ख है। वह आपकी न्यायसंगत बातें कदापि स्वीकार न करेगा। उसने लड़ाईकी पूरी तैयारी कर रखी है और अभीसे अपनेको विजयी समझने लगा है। राजा धृतराष्ट्रकी उसके आगे एक नहीं चलती। भीष्म और द्रोण आदि उसके अन्नसे प्रतिपालित होते हैं। इसलिये वे जान बूझकर उसके अन्यायोंका समर्थन किया करते हैं। इसके सिवा उसकी यह भी धारणा है, कि धर्म्मके खयालसे पाण्डव, भीष्म और द्रोण आदि गुरुजनोंपर आक्रमण नहीं करेंगे। इन्हीं सब बातोंके कारण मेरी राय है, कि आप कौरवोंकी सभामें न जायें और सन्धिकी कोई चर्चा न करें। क्योंकि इस कार्य्यमें आपको

मेरी समझमें आपका यहाँ आना अच्छा नहीं हुआ।

दुर्गा प्रेस, कलकत्ता]

देखिये—पृष्ठ संख्या ३०६

कदापि सफलता नहीं प्राप्त होगी, वरं जहाँतक मेरा अनुमान है, दुराचारी दुर्योधन आपको अपमानित करेगा। कर्ण, शकुनि और दुःशासन आदि भी उसीकी तरह महा घमण्डी और पापी हैं। वे सदैव उसकी हाँमें हाँ मिलाया करते हैं। उनका विश्वास है, कि कर्ण अकेला ही सब पाण्डवोंको मार डालेगा। जिन दुराचारी क्षत्रियोंको आपने समरमें दण्डित किया है और जो आपसे शत्रुता रखते हैं, वे सभी इस समय दुर्योधनके सहायक बने हैं। उनके मध्यमें जाकर सन्धिकी बातचीत करनेसे वे कदापि स्वीकार नहीं करेंगे। इसीलिये मेरी राय है, कि आप सन्धिकी वृथा चेष्टा परित्याग करें। मैं आपके प्रभाव और पौरुषसे अच्छी तरह परिचित हूँ। परन्तु उन अभिमानियोंपर उसका कुछ भी असर नहीं पड़ेगा। आपका प्रयत्न निष्फल होगा।"

महात्मा विदुरकी युक्तिपूर्ण बातें सुनकर श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उनकी सरलता, साधुता और धार्म्मिकताकी प्रशंसाकर, उनके सदुपदेशोंके लिये यथोचित कृतज्ञता प्रकाश कर कहा—"महात्मन्! आपका कहना यथार्थ है। एक मित्रका जो कुछ कर्त्तव्य है, उसीका आपने पालन किया है। परन्तु मैं दुर्योधन तथा उसके सहकर्म्मियोंको अच्छी तरह जानता हूँ। उनके कारण इस समय कुरुकुल तथा अन्यान्य क्षत्रियोंपर घोर सङ्कट उपस्थित है। इस सङ्कटकालसे क्षत्रिय जातिको बचानेकी यथासाध्य चेष्टा करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। प्रयत्न

करना मेरा काम है और फलाफल ईश्वराधीन है। मैं कौरवोंकी भलाईके लिये यहाँ आया हूँ। यदि वे मेरी बातें मान लेंगे, तो मैं समझूंगा, कि मैंने एक धर्म्म-कार्य्य कर डाला और न मानेंगे, तो मेरे हृदयको सन्तोष हो जायेगा, कि मैंने अपनी ओरसे यथासाध्य प्रयत्न करनेमें कोई त्रुटि न की। प्रत्येक सच्चे मनुष्यका कर्त्तव्य है, कि वह अपने बन्धुओं तथा सम्बन्धियोंको बुरे कर्म्मोंसे बचानेकी चेष्टा करे। यहाँतक कि आवश्यकतानुसार वह बलप्रयोग द्वारा भी यह कार्य्य कर सकता है। मैं कौरवों, पाण्डवों तथा अन्यान्य क्षत्रियोंकी हितकी बातें कहूँगा। दुर्योधनका कर्त्तव्य होगा, कि मेरी बातें मान ले! यदि न भी मानेगा, तो मेरी कोई क्षति नहीं। यदि कौरव मेरी बातें न सुनेंगे, तो उनके भाग्यमें जो कुछ बदा होगा, वह होगा।"

इस तरह श्रीकृष्ण और विदुरमें बड़ी देरतक बातचीत होती रही। श्रीकृष्णने जो कुछ संकल्प कर लिया था, उसपर अटल रहे। फलाफलका विचार छोड़कर वे केवल अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहते थे। इसके बाद रात अधिक हो जानेके कारण, श्रीकृष्ण और विदुर विश्राम करने लगे।

३२

कौरव-सभामें श्रीकृष्ण

दूसरे दिन प्रातःकाल, श्रीकृष्ण अपने नित्य-कर्मसे निवृत्त भी नहीं होने पाये थे, इतनेमें दुर्योधन और शकुनी उन्हें कौरव-सभामें ले जानेके लिये आ पहुँचे। सन्ध्या वन्दन तथा होम-जापके पश्चात् ब्राह्मणोंको दान-दक्षिणा देकर वे दुर्योधन आदिके साथ कौरव-सभामें गये। महती सभा लगी थी। बहुतसे क्षत्रिय नृपतियों तथा गण्यमान्य पुरुषोंके अतिरिक्त, महर्षि नारद तथा जमदग्नि आदि देवर्षि और ब्रह्मर्षि गण भी सभामें उपस्थित थे। श्रीकृष्णके सभामें प्रवेश करनेपर राजा धृतराष्ट्र आदिने उठकर उनकी अभ्यर्थना की। सबके समासीन हो जानेपर, कुछ देरतक इधर-उधरकी बातें होती रहीं। इसके बाद जलद गम्भीर स्वरसे श्रीकृष्णने अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा—"भरत वंशावतंश राजा धृतराष्ट्र और उपस्थित सज्जनवृन्द! कौरवों और पाण्डवोंमें जो विवाद उपस्थित हुआ है, उससे आपलोग अच्छी तरह अवगत हैं। इस विवादको मिटाकर दोनों पक्षोंमें सन्धि स्थापित करा-

नेकी इच्छासे ही मैं राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। भाई-भाईके इस पारस्परिक विवादसे जो हानियां हो सकती हैं, उसे आपलोग अच्छी तरह समझते हैं। राजा धृतराष्ट्रका कुल आर्यावर्तमें सबसे श्रेष्ठ और महान् है। इस वंशने सदा दूसरोंके दुःखोंको अपना दुःख समझा है और कभी धर्मके मार्गसे विचलित नहीं हुआ है। दया, क्षमा, सरलता, धार्म्मिकता, न्यायप्रियता और सत्यता, इस वंशके प्रधान गुण हैं। इस समय कुरुकुलके राजसिंहासनपर सुविज्ञ शासनकर्त्ता राजा धृतराष्ट्र विराजमान हैं। परन्तु मुझे बड़े दुःखके साथ कहना पड़ता है, कि उनकी उपस्थितिमें ही उनके लड़के घोर अन्याय करनेपर उतारू हो रहे हैं। उन्होंने धर्म्माधर्म्मका विचार छोड़कर अपने आत्मीयोंके साथ जो अनुचित व्यवहार किया है, वह सबपर अच्छी तरह विदित है। इनके दुराचारोंके कारण इस समय पवित्र कुरुकुलपर बड़ी भयङ्कर विपद उपस्थित है। यदि राजा धृतराष्ट्र इस समय उस घोर संकटकी उपेक्षा करेंगे, तो परिणाम बड़ा ही भयानक होगा और अन्तमें सारी पृथिवी विनष्ट होगी। मुझे विश्वास है, कि राजा धृतराष्ट्रके इच्छा करते ही यह विपद् दूर हो सकती है। अभी भी यदि वे प्रयत्न करें, तो शान्ति स्थापित हो सकती है। कुरुपाण्डवोंकी शान्ति इन्हींके वशमें है। इन्हें चाहिये, कि अपने पुत्रोंको समझा-बुझाकर, अपने सगे भतीजोंके साथ न्याय और आत्मीयताका व्यवहार करनेके लिये बाध्य करें। उनके पुत्रोंको भी चाहिये, कि वे

अपने पूज्य पिताकी आज्ञायें शिरोधार्य्य करें और पारस्परिक वैर-विरोध छोड़कर देशमें शन्ति-स्थापन करनेकी चेष्टा करें। पाण्डव बड़े वीर हैं। उन्हें पराजित करना कोई सहज काम नहीं है। इसलिये विवाद त्याग कर कौरवों और पाण्डवोंको मिलजुल कर रहना चाहिये। मेरी समझमें यदि कौरव और पाण्डव मिले रहें, तो पृथिवीपर कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो इनके सामने सिर उठा सके। दोनों मिलकर चाहें तो समस्त आर्य्यावर्तमें एक सार्वभौम साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं।

"कौरवों और पाण्डवोंमें जो महासमर होगा, उसका परिणाम विशेषतः राजा धृतराष्ट्रके लिये बड़ा ही कष्टकर होगा। क्योंकि कौरव और पाण्डव दोनों ही उनके लिये समान हैं। इसलिये संग्राममें किसी एक पक्षका निहत हो जाना, उनके लिये समान कष्टका कारण होगा। क्या वे पाण्डवोंके नष्ट हो जानेसे प्रसन्न हो सकते हैं? कदापि नहीं। फलतः पाण्डवोंको इस आसन्न विपद्से बचाना उनका प्रधान कर्त्तव्य है। दोनों ओरसे देशके प्रायः सभी वीर पुरुष इस युद्धमें सम्मिलित होनेके लिये आये हैं और आ रहे हैं। हे राजन्! कहीं ऐसा न हो, कि यह युद्ध सारे देशको तबाह कर डाले और आत्मीयोंके विनाशके साथ ही साथ समस्त देशकी प्रजाका भी नाश देखकर आपको पश्चात्ताप करना पड़े। इसलिये समय रहते ही आप देशकी, प्रजाकी और देशके रक्षक क्षत्रिय वीरोंकी रक्षा कीजिये।

"आपने बाल्यकालसे ही पितृहीन पाण्डवोंका पुत्रवत् प्रति-

पालन किया है। वे भी आपको पिता तुल्य मानते हैं। इस समय वे विपद्‌में हैं। इसलिये आप उनका त्राण कीजिये। उन्होंने आपके चरणोंमें यह निवेदन किया है, कि हमने आपको पिता समझकर आपके आदेशानुसार वारह वर्षों तक वनवास कर नाना प्रकारके कष्ट सहन किये हैं; अपनी प्रतिज्ञाका यथोचित पालन किया है। अब आप ऐसी तदवीर कीजिये, जिसमें हमारा राज्यांश हमें प्राप्त हो। आप धर्म्मात्मा हैं। हमलोग आपको गुरु तुल्य समझते हैं। आपको भी हमलोगोंके साथ शिष्यवत् व्यवहार करना चाहिये। यदि हम विपथगामी हों, तो आप हमें सुपथगामी बनानेकी चेष्टा कीजिये।

हे राजन्! मेरा वार वार केवल यही निवेदन है, कि आप धर्म्मके लिये, देशकी भलाईके लिये, क्षत्रिय जातिकी रक्षाके लिये और अपने कुलको बचानेके लिये पाण्डवोंसे सन्धि कर लीजिये। क्रोध छोड़कर, पक्षपात परित्यागकर, बेटों और भतीजोंको समदृष्टिसे देखते हुए सुखपूर्व्वक राज-सुख भोग कीजिये। राजा युधिष्ठिर धर्म्मात्मा हैं। वे सतत आपकी आज्ञायें पालन करनेके लिये तैयार हैं। आपके पुत्रोंने वार-वार उनके साथ अनुचित वर्त्ताव किया है, परन्तु उन्होंने कभी भी उनकी बुराई नहीं की है। आपने उन्हें निर्व्वासित किया था, उन्हें जतुगृहमें जला डालनेकी तदवीर की थी। परन्तु तो भी वे आपके आश्रयमें आकर रहने लगे। इसके बाद आपने अपने पुत्रोंकी सलाहसे उन्हें इन्द्रप्रस्थ चले जानेकी आज्ञा दी। वे आपकी आज्ञा

शिरोधार्य्यकर चुपचाप वहाँ चले गये और अपने वाहुवल द्वारा कितनेही नृपतियोंको जीतकर आपके अधीन कर दिया ; कभी भी आपकी मर्य्यादा नहीं विगाड़ी। इसके वाद आपके साले शकुनीने छलसे जुएमें उन्हें पराजित किया, द्रौपदीको भरी सभामें लाकर अपमानित किया। परन्तु पाण्डवोंने यह घोर अपमान भी चुपचाप सह लिया और अपने क्षात्र-धर्म्मसे विचलित नहीं हुए ! अव कल्याण इसीमें है, कि आप युधिष्ठिरको उनका हक देकर, वढ़ते हुए वखेड़ेको शीघ्र शान्त कर दें।

मैं दोनोंका शुभचिन्तक हूँ। दोनोंकी भलाईके लिये ये वातें कह रहा हूँ। आप अपने पुत्रोंको समझाइये। यह स्मरण रहे, कि पाण्डव सन्धि और विग्रह दोनोंके लिये तैयार हैं। अव आपकी जैसी अभिरुचि हो वैसा कीजिये।"

श्रीकृष्णकी अद्भुत, युक्तिसंगत और सारगर्भित वक्तृता सुनकर सारी सभामें सन्नाटा छा गया। किसीने उसका प्रत्युत्तर देनेका साहस नहीं किया। सभी एक दूसरेका मुँह ताकने लगे और मनही-मन उनकी अद्भुत वाग्मिताकी प्रशंसा करने लगे। कुछ देर यों ही वीत जानेपर महर्षि जमदग्नि और देवर्षि नारद आदिने विविध उपाख्यानों द्वारा श्रीकृष्णके कथनकी पुष्टिकर राजा धृतराष्ट्रको सन्धि कर लेनेका उपदेश दिया। इन लोगोंने दुर्योधनको भी वहुत समझाया। परन्तु उसपर उन उपदेशोंका कुछ भी असर न पड़ा। उसने हंसकर कहा,—"विधाताने मुझे जो वुद्धि दी है, मैं उसीके अनुसार

कार्य्य करता हूँ। आपलोग अपना उपदेश अपने पास रहने दीजिये।"

महर्षियोंका उपदेश-पूर्ण कथन सुनकर राजा धृतराष्ट्रने कहा,—"आपलोगोंने जो कुछ कहा है, वही मैं भी चाहता हूँ। परन्तु उसका पूरा होना मेरी शक्तिसे वाहरकी वात है।" इसके उपरान्त उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—"हे केशव! तुम्हारी वातें बड़ी ही सुखकर, लोकाचार संगत, धर्म्मानुगत और न्यायपूर्ण हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। मैं नहीं चाहता, कि मेरे पुत्रों और भतीजोंसे युद्ध हो। परन्तु मैं विवश हूँ। हठी दुर्योधन मेरी एक नहीं सुनता। मैं उसे समझाकर थक गया। उसकी माता समझाते समझाते थक गई। विदुर, मेरे चाचा भीष्म, महात्मा द्रोणाचार्य्य आदि सभी हितैषियोंकी वातोंकी उसने अवहेलना कर दी। अब एकवार तुम्हीं उसे समझाओ। शायद उसके हठी हृदयपर तुम्हारे उपदेशोंका कुछ असर पड़ जाय!"

राजा धृतराष्ट्रका कथन सुनकर धर्म्मज्ञ श्रीकृष्ण दुर्योधनको सम्बोधन कर कहने लगे,—"भाई दुर्योधन! तुमने बड़े उच्च वंशमें जन्म पाया है। तुम्हें सदाचारोंकी शिक्षा दी गई है। इस समय जो कर्म्म करनेका विचार तुमने किया है, वह तुम्हारे जैसे सद्वंशजात व्यक्तिको शोभा नहीं देता। इस प्रकारका दुष्कर्म्म असाधु व्यक्ति ही किया करते हैं। तुम एक वार स्वयं विचार कर देखो, कि तुम्हारा कर्म्म कितना अधर्म्म और अन्याय पूर्ण है! इस तरहके अनर्थसे बाज आओ। अपने भाइयोंपर दया करो। सरल हृदय

धर्म्मात्मा और वीर पाण्डवोंसे विरोध मत बढ़ाओ, नहीं तो परिणाम बड़ा ही भयङ्कर होगा। पाण्डवोंसे सन्धि कर लेनेसे तुम्हारे पिता और अन्यान्य गुरुजन प्रसन्न होंगे, न्याय-मर्य्यादाकी रक्षा होगी, तुम्हारे भाइयोंकी भलाई होगी और देशका कल्याण होगा। पिताकी आज्ञा मानना पुत्रका धर्म्म है। तुम्हारे पिता सन्धि चाहते हैं। उनकी इच्छा अवश्य पूरी करो। जो अपने बड़ों और शुभचिन्तकोंकी बात नहीं मानता, उसे अन्तमें बड़ा क्लेश भोगना पड़ता है। बेचारे पाण्डवोंपर तुमने घोर अत्याचार किया है, तथापि वे तुमसे असन्तुष्ट नहीं हैं और मेल करना चाहते हैं। इस समय क्रोध और हठ छोड़कर उन्हें परितुष्ट करो। राज्य-लाभ करनेका तुमने जो उपाय अवलम्बन किया है, वह अत्यन्त हीन है। इस तरहके कर्म्म भले आदमी नहीं करते। तुम्हारी मित्र मण्डलीमें असाधुओंकी भरमार है। उनका संसर्ग छोड़कर धर्म्मात्मा पाण्डवोंका संग करो। इसीमें तुम्हारा कल्याण है। तुम पाण्डवोंसे लड़कर पार नहीं पाओगे। इसलिये लड़नेकी अभिलाषा परित्याग कर दो। मेरी बात मान लो। इस सुअवसरसे मत चूको।"

श्रीकृष्णके अतिरिक्त भीष्म, द्रोण, और विदुरने भी दुर्योधनको बहुत समझाया। परन्तु वह अपनी टेकसे ज़रा भी न डिगा। उसने सबकी सुनकर श्रीकृष्णसे कहा—"आपने बिना विचारे सारा दोष मेरे मत्थे मढ़ दिया है। यह आपको उचित न था। आपने बारबार पाण्डवोंकी प्रशंसा और मेरी निन्दाकी

है। परन्तु मेरी समझमें नहीं आता, कि आप, मेरे पिता, पितामह और आचार्य्य मुझे क्यों दोषी ठहरा रहे हैं! मैंने पाण्डवोंके साथ कौनसा बुरा वर्त्ताव किया है, जिसके लिये आप बार बार धर्मकी दुहाई देते हैं! युधिष्ठिर अपनी खुशीसे जुआ खेलने आये थे और सारा राजपाट दांवपर रखकर हार गये। इसमें मेरा क्या अपराध है? मैंने तो शकुनीसे कहकर उनका राजपाट उन्हें लौटा दिया था। परन्तु उन्होंने फिर उसे दांवपर रख दिया और फिर हार गये। अन्तमें जब कुछ भी पास न रहा, तब वन जानेका प्रणकर, फिर खेलने लगे। इसमें मैंने उनके साथ कौनसा छल किया, यह मेरी समझमें नहीं आता। इसके उपरान्त उनलोगोंने हमारे खान्दानी शत्रुओंसे मिलकर हमारे देशपर धावा किया और हमें लूटनेपर तैयार हुए।

आपने बार बार पाण्डवोंकी वीरताकी बड़ाईकर मुझे भय दिखानेकी वृथा चेष्टाकी है। मैं भयसे इन्द्रके सामने भी सिर झुकाना नहीं चाहता। पृथिवीपर ऐसा कौन बलवान है, जो हमारे योद्धाओंके सामने ठहर सकता है? संग्राममें प्राण विसर्ज्जन कर स्वर्ग प्राप्त करना तो क्षत्रियोंका धर्म्म ही है। इसलिये आप मुझे युद्धकी धमकी नाहक दे रहें हैं। जिस समय मेरे पिताने पाण्डवोंको आधा राज दे दिया था, उस समय मैं बालक था, अज्ञान था। अब तो अपने जीतेजी मैं सुईकी नोक भर भूमि भी विना युद्धके न दूंगा।"

दुर्योधनका कथन सुनकर श्रीकृष्णने हंसते हुए कहा—"तो

मालूम होता है, कि अपने अमात्योंके साथ शीघ्र ही तुम समर-शय्यापर विश्राम लेना चाहते हो। धीरज धरो, तुम्हारी मनोकामना शीघ्र ही पूरी होगी। परन्तु अभी जो तुमने कहा है, कि मैंने पाण्डवोंके साथ कोई अन्याय नहीं किया है—क्या उपस्थित सज्जनवृन्द कह सकते हैं, कि तुम्हारा कथन सत्य है? वास्तवमें तुम्हारी मति मारी गई हैं। तुमने पाण्डवोंको तवाह करनेमें क्या उठा रखा है? राजसूय यज्ञके समय राजा युधिष्ठिरका ऐश्वर्य्य देखकर तुम्हारा हृदय जल गया था। तुमने अपने मित्र शकुनीसे सलाह कर उन्हें जुएमें हराया। इसके बाद अपने बड़े भाईकी स्त्रीको सभामें लाकर अपमानित किया। इतनेसे भी पेट नहीं भरा, तो उनकी वन-यात्राके समय तुमने और तुम्हारे साथियोंने उनपर वाक्य-वाण छोड़ना आरम्भ किया। दुर्योधन! क्या किसी और मनुष्यने भी कभी अपने कुटुम्बियोंपर इस तरहका अत्याचार किया है? तुमने उन्हें वारणावत भेज-कर उन्हें माता सहित जला डालनेका प्रबन्ध किया था। परन्तु ईश्वरकी दयासे तुम्हारी वह अभिलाषा पूरी नहीं हुई। वहाँसे प्राण बचाकर भागनेपर, पाण्डवोंको जो कष्ट सहन करने पड़े थे, क्या उन कष्टोंके मूल कारण तुम्हीं नहीं हो? तुम्हारे इन तमाम अपराधोंको भूलकर इस समय पाण्डव तुमसे अपना उचित अधिकार मांगते हैं, परन्तु तुम देना नहीं चाहते। तुम्हारे गुरु-जन, तुम्हारे शुभचिन्तक तुम्हें समझा रहे हैं, परन्तु अपनी अज्ञा-नता और मूर्खताके कारण तुम उनकी बातें नहीं मानते। उनके

उपदेशोंकी उपेक्षाकर तुम घोर अधर्म्म कर रहे हो। इस मूर्खताका फल तुम्हें शीघ्र ही भोगना पड़ेगा।"

कृष्णका कथन समाप्त होनेपर दुःशासनने दुर्योधनके पास आकर कहा,—"भाई साहब! यदि आप पाण्डवोंसे सन्धि नहीं करेंगे, तो हमारे पिता और पितामह आपको और मुझे बाँधकर पाण्डवोंके सुपुर्दकर उनसे सन्धि कर लेंगे।"

यह सुनते ही क्रोधसे दुर्योधनकी आंखें लाल हो गईं। वह सभासे उठकर चला गया। उसके साथ ही उसके अन्यान्य भाइयोंने भी सभा छोड़ दी।

दुर्योधनके नाराज़ होकर चले जाने पर, श्रीकृष्णने राजा धृतराष्ट्र तथा भीष्म आदिसे कहा,—"आपलोगोंको उचित है, कि कुलकी भलाईके लिये दुराचारी दुर्योधनको बन्दी कर लें। कुलकी भलाईके लिये यदि एक व्यक्तिका अनहित करना पड़े और देशकी भलाईके लिये यदि कुलका अनहित करना पड़े, तो इसमें कोई अधर्म्म नहीं हो सकता। यही सोचकर मैंने कंसको मारा था। इस समय आपलोगोंको अपने कुलकी भलाईके लिये राजाज्ञा उल्लङ्घनकारी दुर्योधनको कैद कर लेना चाहिये।"

परन्तु राजा धृतराष्ट्रमें इतना साहस कहां था, कि वह दुर्योधनको कैद करते। उन्होंने अपनी रानी गान्धारीको बुलाकर पुत्रको समझानेकी आज्ञा दी। देवी गान्धारीने दुर्योधनको बुलाकर घण्टोंतक समझाया। राजनीति, धर्मनीति और समाजनीतिके सम्बन्धमें बहुत कुछ उपदेश दिया। इस युद्धके

विषमय परिणामका भी उल्लेख किया। परन्तु दुर्योधनके मनपर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर वहांसे उठकर अन्यत्र चला गया।

प्रस्थान.

अपनी माताके अमृतमय उपदेशोंकी अवहेलना कर, दुर्योधन अपने मित्रोंके निकट जाकर, श्रीकृष्णको पकड़ लेनेका परामर्श करने लगा। इसकी खबर किसी तरह श्रीकृष्णके सहचर सात्यकीको लग गई। उसने सब हाल कृतवर्म्माको सुनाकर कहा, कि तुम अपने सिपाहियोंके साथ सभाके द्वारपर डट जाओ, मैं जाकर केशवको होशियार करता हूँ।

इसके बाद वह श्रीकृष्णसे सब हाल कहकर राजा धृतराष्ट्र आदिसे कहने लगा,—"राजन्! आपके पुत्रोंने महात्मा वासुदेवको पकड़कर कैद करनेकी साजिश की है। परन्तु यह उनकी मूर्खता है। केशवको कैद करना मानों वामन होकर चांद पकड़ना है।"

इस कथनको सुनते ही सारी सभामें सन्नाटा छा गया। दुर्योधनकी मूर्खतापर सबको आश्चर्य्य होने लगा। विदुरने कहा,—"मालूम होता है, अब कौरवोंका नाश सन्निकट है। तभी दुर्योधन

इस तरहकी कार्रवाई करनेपर उतारू हुआ है। जिस तरह पतङ्ग पावकमें गिरकर भस्म हो जाता है, वही दशा इसकी भी होने-वाली है। श्रीकृष्णसे इस तरहकी छेड़छाड़ अच्छी नहीं। क्योंकि उनके क्रुद्ध हो जानेपर महा अनर्थ उपस्थित हो जायेगा।"

कृष्णने हंसते हुए कहा,—"यदि वह मुझे पकड़ना चाहता है, तो पकड़ने दीजिये। इसमें पाण्डवोंकी बड़ी भलाई होगी। क्योंकि जो कुछ वे करना चाहते हैं, वह मेरे ही द्वारा हो जायेगा। यह उपाय उसने अच्छा सोचा है।"

दुर्योधनकी साज़िशका हाल सुनकर राजा धृतराष्ट्र लज्जा और क्रोधसे अधीर हो उठे। उन्होंने उसी समय उसे बुलाकर बड़ी फटकार बताई। विदुर आदिने भी खूब धिक्कारा। भगवान श्रीकृष्णने हँसकर कहा,—"दुर्योधन! तुम यह न समझना, कि मैं अकेला हूँ। मेरे सहायक यहाँ भी मौजूद हैं।" उस समय दुर्योधन तथा उसके साथियोंको श्रीकृष्णकी एक अद्भुत विराट मूर्त्ति दीख पड़ी। उसे देखकर दुर्योधन आदिके होश पैंतरा कर गये। भयसे उनका हृदय काँपने लगा। मालूम हुआ, मानों उस अद्भुत मूर्त्तिके रोम रोमसे अग्निकी ज्वाला निकलकर दुर्योधन तथा साथियोंको दग्ध कर डालना चाहती है। दुर्योधन आदिने भयसे अपनी आँखें मूँद लीं।

इसके बाद श्रीकृष्णने विदा ली। धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुर आदिने उठकर बड़े सम्मानसे उन्हें बिदा किया। राजा धृतराष्ट्रने अपनी असमर्थता और अपने पुत्रोंकी मूर्खताका

उल्लेखकर बहुत कुछ अनुनय विनय किया और यह भी कहा, कि मैं अन्तःकरणसे सन्धि चाहता हूँ। पाण्डवोंके प्रति मेरी सम्पूर्ण सहानुभूति है। मैंने सन्धि स्थापनके लिये दुर्योधनको बहुत समझाया है और फिर भी जहाँतक हो सकेगा समझाऊँगा।

कौरवोंसे विदा होकर श्रीकृष्ण कुन्तीदेवीके पास गये और सभामें जो कुछ हुआ, वह संक्षेपतः उन्हें सुना दिया। सब हाल सुनकर कुन्तीने कहा, कि मेरे पुत्रोंको चाहिये, कि अब पुरुषार्थ प्रदर्शनकर अपना राज्य प्राप्त करें। तुम मेरी ओरसे युधिष्ठिरसे कह देना, कि तुम्हारा यश दिन दिन घट रहा है। जिस तरह बिना अर्थ समझे वेदोंको रट लेनेसे कोई विद्वान नहीं हो सकता; उसी तरह केवल हाथ धोकर धर्म्मके पीछे पड़नेसे कोई धर्मात्मा भी नहीं हो सकता। विधाताने राजशासन द्वारा प्रजाका पालन करनेके लिये ही क्षात्रधर्म्मकी सृष्टि की है। अतएव तुम्हें पितृपितामहादिके परम्परागत राज-धर्म्मका अवलम्बन करना चाहिये। तुम जिस तरह रहना चाहते हो, वह राजर्षियोंका धर्म्म नहीं है। आजकल तुम जिस तरह जीवन बिता रहे हो, वह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। मुझे या तुम्हारे स्वर्गीय पिताको तुमसे ऐसी आशा कदापि न थी। भीख माँगना क्षत्रियोंका काम नहीं है। भुजबल ही तुम्हारी जीविका है। इसलिये साम, दाम, दण्ड और विभेद नीतिका आश्रय लेकर अपने राज्यके उद्धारकी चेष्टा करो। तुम्हारे

जैसे पुत्रके होते हुए भी मैं निराश्रया हो रही हूँ, इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है ? राज-धर्म्मके अनुसार युद्ध करो। अपने पूर्व्व पुरुषोंका नाम विलुप्त कर अपयशके भागी न बनो। हे केशव ! भीमसेन, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेवसे भी कह देना, कि अब तुमलोग कायरोंकी तरह बैठकर जीवन न बिताओ। सच्चे क्षत्रियकी तरह समरक्षेत्रमें पराक्रम दिखाकर अपना पैतृक राज्य प्राप्त करनेका प्रयत्न करो।

इस तरह वीरतापूर्ण उपदेश देनेके बाद कुन्तीदेवीने श्रीकृष्ण-को आशीर्व्वाद देकर विदा किया। श्रीकृष्णने चलते समय कर्णको बुलाकर अपने रथपर बैठा लिया।

२४

महाभारतमें लिखा है, कि कर्ण कुन्तीका पुत्र था। राजा पाण्डुके साथ विवाह होनेसे पहले ही उन्होंने कर्णको प्रसवकर, एक पिटारीमें बन्दकर नदीमें बहा दिया था। दैवयोगसे वह पिटारी राजा धृतराष्ट्रके सारथीके हाथ लगी। कोई सन्तान न थी, इसलिये उसने इस बालकका पुत्रवत् पालन-पोषण किया। कर्ण विद्वान, वीर और महादानी था। पाण्डवों और कौरवोंकी शस्त्र-परीक्षाके समय उसमें और अर्ज्जुनमें वैमनस्य उत्पन्न हो गया था। उसी समयसे वह अर्ज्जुनका प्रतिद्वन्द्वी हो गया था। उसने प्रतिज्ञा की थी, कि अवसर मिलनेपर अर्ज्जुनसे युद्ध करूँगा। दुर्योधनको कर्णकी वीरताका बड़ा भरोसा था, उसे विश्वास था, कि भीष्म और कर्णके सामने अर्ज्जुन नहीं ठहर सकेगा।

श्रीकृष्णका यह आन्तरिक उद्देश्य था, कि जिसमें युद्ध न हो और पाण्डवोंको उनका प्राप्य राज्यांश मिल जाये। परन्तु जब बहुत चेष्टा करनेपर भी उनका उद्देश्य सफल न हुआ, तब उन्होंने कर्णको पाण्डवोंके दलमें मिलानेकी चेष्टा की। उन्हें यह

अच्छी तरह मालूम था, कि कर्ण अद्वितीय योद्धा है और दुर्योधनको उसके बल-पौरुषपर अटल विश्वास है। यदि कर्ण किसी तरह दुर्योधनका साथ छोड़ दे, तो सम्भव है, कि वह सन्धिके लिये बाध्य हो। इसी तरहकी बातें सोच कर, चलनेके समय, उन्होंने कर्णको अपने रथपर बिठा लिया था।

जब रथ नगरके बाहर हुआ तो श्रीकृष्णने कर्णकी पैदाइशका हाल सुनाकर कहा, कि तुम युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंके बड़े भाई हो। इसलिये दुर्योधनका पक्ष छोड़ कर पाण्डवोंसे मिल कर राज्य भोग करो। पाण्डव बड़ी खुशीसे तुम्हारी अधीनता स्वीकार कर लेंगे। तुम धर्म्मात्मा हो। अपने विपन्न भाइयोंकी सहायता करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। दुर्योधन अन्यायी है। पाण्डवोंके साथ सरासर अन्याय कर रहा है। इसलिये तुम उसका साथ छोड़ दो। और कुछ नहीं तो अपनी गर्भधारिणी माता कुन्तीदेवीके लिये तुमको पाण्डवोंका पक्ष लेना ही चाहिये।

श्रीकृष्णने इस तरहकी अनेक बातें कहकर कर्णको समझाया, परन्तु उसने दुर्योधनका साथ छोड़ना स्वीकार न किया। कर्णने कहा,—"आपका कथन यथार्थ है। मैं अवश्य ही कुन्तीका पुत्र हूं। परन्तु उन्होंने मुझे पैदा करके मेरी मङ्गल-कामनाके लिये मुझे परित्याग नहीं किया था। इसलिये मेरी यथार्थ माता अधिरथकी स्त्री है, जिसने पाल पोसकर मुझे इतना बड़ा किया है। रही दुर्योधनकी बात, सो उन्होंने भी मेरे

साथ बड़ी भलाई की है। उनके आश्रयमें रहकर मैं नित्य प्रति राजसुखका उपभोग कर रहा हूँ। मेरी इच्छा और अनुमति के विरुद्ध वे कोई कार्य्य नहीं करते। उनकी बदौलत मैं प्रति दिन प्रचुर धन दान करता हूँ, उनकी बदौलत मैंने कितने ही सुवृहत् यज्ञ किये हैं। उनका मेरे प्रति पूर्ण विश्वास है। मेरे ही भरोसे पर उन्होंने पाण्डवोंसे लड़ाई ठानी है। मुझे वे अर्ज्जुनका प्रतिद्वन्दी योद्धा समझते हैं। ऐसी दशामें, यदि मुझे समस्त पृथिवीका साम्राज्य मिले तो भी मैं दुर्योधनका साथ नहीं छोड़ सकता। पाण्डवगण यदि मुझे अपना बड़ा भाई समझ कर राजा बनायेंगे तो नुकसान उठायँगे ; क्योंकि राज्य पानेपर मैं अवश्य ही उसे दुर्योधनको दे दूंगा। इसलिये बेहतर है, कि वे युद्धकर स्वयं राज्य लाभ करें। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ, कि इस युद्धमें पाण्डवोंकी विजयी होगी तथापि मैं दुर्योधनका साथ नहीं छोड़ूँगा; क्योंकि उन्होंने मेरे साथ बड़ी भलाई की है। इसलिये उनके लिये प्राण विसर्ज्जन कर देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। आप जाकर पाण्डवोंको शीघ्र ही समर-यज्ञ आरम्भ कर देनेकी सलाह दीजिये। इस समय यही उचित है। मुझे समझानेकी चेष्टा व्यर्थ है।"

श्रीकृष्णकी यह युक्ति भी खाली गई। जब कर्ण किसी तरह दुर्योधनका साथ छोड़नेको तैयार न हुआ तब अन्तमें श्रीकृष्णने कहा,—"कर्ण! तुमने मेरी बात न मानी। इससे मालूम होता है, कि शीघ्र ही इस देशका सर्वनाश होनेवाला है। अस्तु,

कौरवोंसे कह देना, कि अब शीघ्र ही युद्धके लिये तैयार हो जायें।” यह कहकर उन्होंने कर्णको विदा किया और सारथीको शीघ्र रथ चलानेकी आज्ञा दी।

३५

श्रीभगवद्गीता.

श्रीकृष्णकी सब चेष्टायें विफल हुईं। दुर्योधनने किसी तरह सन्धि स्वीकार न की। कौरव-सभामें जो बातचीत हुई थी, वह सब श्रीकृष्णने राजा युधिष्ठिरको जाकर सुना दिया। अब युद्धके सिवा और कोई उपाय बाकी न रह गया। साम, दाम, दण्ड और भेद, सभी बेकार गये। झगड़ेके निर्णयका उपाय अब केवल तलवार ही रह गई! सच है, जब किसी जातिके अधःपतनके दिन आते हैं, तो ऐसा ही होता है। उस समय बड़े बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धिपर पर्दा पड़ जाता है। तुच्छ राज्यके लिये भाई भाई एक दूसरेके खूनके प्यासे होकर लड़ाईके मैदानमें आकर डट गये! संसारकी सबसे प्राचीन आर्य्य सभ्यताके नाशका समय उपस्थित हुआ! आर्य्या-वर्त्तकी विद्या, कलाकौशल और प्राचीन गौरवपर मानो शनिकी क्रूर दृष्टि पड़ गई। देश देशके सभी बलवान योद्धा मानों भारतीय क्षात्र-बलका अन्तिम करिश्मा दिखानेके लिये कुरूक्षेत्र* के

---

* कौरवों और पाण्डवोंका विख्यात युद्ध-स्थल, कुरुक्षेत्र, पंजाब प्रदेशके अन्तर्गत, सरस्वती और सतलज नदियोंके बीच, वर्त्तमान कर्नाल

सुविस्तृत मैदानमें एकत्र होने लगे। कौरवों और पाण्डवोंने अलग अलग अपना शिविर स्थापित किया। पाण्डवोंके सेना-पति महावीर धृष्टद्युम्न और कौरवोंके सेना-नायक बालब्रह्मचारी देवव्रत भीष्म नियुक्त हुए। पाण्डवोंकी ओरसे सात अक्षौ-हिणी और कौरवोंकी ओरसे ग्यारह अक्षौहिणी सेना एकत्र हुई। हाथी, घोड़े, रथ तथा विविध प्रकारके प्राणनाशक शस्त्रा-स्त्रोंसे समराङ्गण परिपूर्ण हो गया।

सब तैयारी हो जानेपर दुर्योधनने अपने अनुचर उलूकको दूत बनाकर पाण्डवोंके पास भेजा। उसने राजा युधिष्ठिरके पास जाकर उन्हें तथा श्रीकृष्णको बहुत खरी-खोटी सुनाई। पाण्डवोंने भी उसकी बातोंका उपयुक्त उत्तर दिया। इसके बाद श्रीकृष्णने उलूकको समझाकर कहा, कि वृथा बकवास करनेमें कुछ लाभ नहीं। दुर्योधनसे जाकर कह दो, कि अब समरक्षेत्रमें ही अपना जौहर दिखावे। यह सुनकर उलूकने प्रस्थान किया।

दोनों ओरकी सेना लड़ाईके लिये तैयार हो गई। भीषण रणदुन्दुभी बजने लगी। असीम उत्साहसे वीरोंकी भुजाएँ फड़कने लगीं। श्रीकृष्णके आदेशानुसार अर्ज्जुनने रणचण्डिकाकी आराधना कर रथारोहण किया। सारथी श्रीकृष्णने रथ हांक कर आगे बढ़ाया। रथके अग्रसर होते ही अगणित महारथियोंकी

जिलेके थानेश्वर नामक स्थानके निकट था। आजकल उस स्थानका अधि-कांश भाग पटियाला, दिल्ली, अलवर राज्य और उसके निकटवर्त्ती राज-पूतानामें मिल गया है।

शङ्खध्वनिसे मेदिनी कांप उठी। समरोत्सुक कौरवकी महती सेना देखकर अर्ज्जुनने कहा,—"हे कृष्ण! मेरा रथ दोनों सेनाओंके बीचमें ले चलो। मैं देखना चाहता हूँ, कि दुर्योधनकी ओरसे कौन कौनसे राजे-महाराजे हमलोगोंसे लड़ने आये हैं और साथ ही मैं यह भी जानना चाहता हूँ, कि मुझे किन लोगोंके साथ युद्ध करना पड़ेगा।"

अर्ज्जुनकी इच्छानुसार श्रीकृष्णने रथको ले जाकर दोनों सेनाओंके मध्यमें स्थापित कर दिया। कौरवोंकी सेनामें भीष्म, द्रोण, कृप और अश्वत्थामा आदि गुरुजनों, आचार्य्यों, भाइयों तथा अन्यान्य सगे-सम्बन्धियोंको देखकर अर्ज्जुनके हृदयमें करुणा उत्पन्न हो गई, शरीर अवसन्न हो गया और कण्ठ सूख गया। यहाँ-तक कि गाण्डीव धनुष उनके हाथसे छूटकर गिर पड़ा और चित्त उद्भ्रान्त सा हो गया! उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा,—"हे केशव! मेरा चित्त उद्विग्न हो रहा है। अपने आत्मीयोंका खून बहाकर राज लेना मुझे अच्छा नहीं जँचता। जिनके लिये राज्य लूंगा, वही आचार्य्य, पितामह, चाचा, भाई और भतीजे यदि न रहेंगे तो वह किस काम आवेगा? हमारे आत्मीय जो इस समय हमसे लड़नेको प्रस्तुत हैं, वे यदि हमें मार डालें तो भी मैं उनपर वार करना अनुचित समझता हूँ। पृथिवी तो क्या, यदि त्रिलोकका राज्य मिले तो भी मैं अपने प्रिय परिजनोंकी हत्या नहीं कर सकता! चाचा धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर हमलोग कदापि सुखी न होंगे; वरं घोर पापके भागी होंगे।

मान लो, कि मोहवश उनकी मति मारी गई है; कुलक्षय और मित्रद्रोह रूप पातकोंकी ओर उनका ध्यान नहीं है, तो क्या हमलोगोंका भी कर्त्तव्य नहीं है, कि इस घोर अपकर्म्ममें प्रवृत्त न हों? कुलक्षय होनेसे कुल-धर्म्म नष्ट हो जायगा, स्त्रियाँ व्यभिचारिणी हो जायंगी, वर्ण-संकरोंकी वृद्धि होगी और पितरोंको पिण्डदान देनेवाला कोई नहीं रह जायगा। सुनते हैं, कुल-नाशक मनुष्य नरकगामी होता है। हाय, कितने कष्टकी बात है, कि तुच्छ राज्यके लिये हमलोग इतने घोर दुष्कर्म्ममें प्रवृत्त हुए हैं!!!"

यह कह, शरासन छोड़कर अर्ज्जुन चुपचाप बैठ गये। इस संग्रामके भीषण परिणामपर विचार कर उनकी बुद्धि शिथिल हो गई, आँखें आँसुओंसे भर गईं और शरीर अवसन्न हो गया!!

वीरवर अर्ज्जुनको इस तरह हतोत्साह होते देखकर श्रीकृष्णके मनमें आश्चर्य्यके साथ ही बड़ी दया उत्पन्न हुई। उन्होंने उत्साहवर्द्धक स्वरमें कहा—"अर्ज्जुन! ऐसे विषम समयमें, यह अनार्य्योंकी तरह कायरतायुक्त, स्वर्गके बाधक और अपकीर्त्तिकर विचार तुम्हारे मनमें कैसे उत्पन्न हो गये? ऐसी क्लीवता तुम्हारे जैसे वीर पुरुषको शोभा नहीं देती! हृदयकी तुच्छ दुर्ब्बलता छोड़कर उठो और युद्ध करो।"

अर्ज्जुनने कहा,—"मेरी समझमें नहीं आता, कि मैं पितामह भीष्म और आचार्य्य द्रोण जैसे परम पूजनीय व्यक्तियोंपर कैसे अस्त्र चलाऊँगा। गुरुजनोंके वधकी अपेक्षा तो मैं भीख माँग

कर जीवन बिताना अच्छा समझता हूँ। यदि लड़ाईमें हमारी जीत होगी तो मानों हमलोगोंको गुरुजनोंके रक्तसे रंगा हुआ राज-सुख भोगनेको मिलेगा। ऐसी दशामें, मैं नहीं समझ सकता, कि इस युद्धमें जीतना गौरवयुक्त होगा या हारना। केशव! अपने कुटुम्बियोंको सम्मुख देखकर मेरा चित्त धर्म्मान्ध हो रहा है। मैं इन लोगोंसे कदापि युद्ध न करूँगा।"

श्रीकृष्णने हँसते हुए कहा,—"अर्ज्जुन! बातें तो तुम पण्डितोंकी तरह कर रहे हो। परन्तु क्या तुम्हें मालूम नहीं, कि मनुष्यकी आत्मा अमर है; उसे कोई मार नहीं सकता? तुम जिन्हें इस समय उपस्थित देख रहे हो, वे इससे पहले भी थे और इसके बाद भी रहेंगे। केवल शरीर ही मरता है; आत्मा नहीं मरती। वह तो नित्य, अविनाशी और अप्रमेय है। इसलिये शोक छोड़कर उठो और युद्ध करो। जीवात्मा न तो किसीका विनाश करता है और न स्वयं विनष्ट होता है। न वह जन्मता है और न मरता है। जिस तरह मनुष्य पुराना वस्त्र त्यागकर नये पहन लेता है, उसी तरह आत्मा भी पुराना शरीर छोड़कर नया धारण कर लेती है। इसे न हथियार काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न हवा सुखा सकती है और न पानी सड़ा सकता है। इसलिये इसे अनादि और अचल समझकर अनुशोचना छोड़ो और युद्धमें मनोनिवेश करो।

यदि यह कहो, कि आत्मा बराबर जन्मती और मरती है, तो भी उसके लिये शोक करना उचित नहीं। क्योंकि जो पैदा हुआ
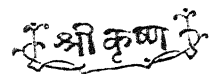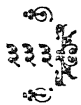
है, वह अवश्य ही मरता है और जो मर जाता है, वह अवश्य ही पुनः जन्म ग्रहण करता है। अतएव जो बात अवश्यम्भावी और अपरिहार्य्य है, उसके लिये शोक कैसा? जन्मके पहले क्या था, कोई नहीं जानता और मरने बाद क्या होगा, यह भी कोई नहीं जानता। इस दशामें शोक किस बातका?

युद्ध करना क्षत्रियका धर्म्म है। यदि तुम इस समय इससे पराङ्मुख होगे तो तुम्हारी कीर्त्ति नष्ट हो जायगी और अन्तमें पाप-भागी होना पड़ेगा। लोग चिरकाल तुम्हारी निन्दा करेंगे। श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये ऐसा अपमान मृत्युसे भी बढ़कर दुःखदायी होता है। यदि तुम युद्ध न करोगे, तो जो महारथी तुम्हारा सम्मान करते हैं, वे कहने लगेंगे, कि अर्ज्जुन लड़ाईसे डरकर भाग गया! इससे बढ़कर दुःख तुम्हारे लिये और क्या हो सकता है? इस युद्धमें यदि तुम विजयी हुए तो राज्य लाभ करोगे और मारे गये तो अक्षय स्वर्ग प्राप्त करोगे। इसलिये उठो, सुख-दुःख, जय-पराजय और लाभालाभको बराबर समझ कर युद्धके लिये तय्यार हो जावो।

अब मैं तुम्हें कर्मयोग सम्बन्धी बातें सुनाता हूँ। इन बातोंको अच्छी तरह समझ लेनेपर तुम कर्म्म-बन्धनसे विमुक्त हो जावोगे; क्योंकि कर्मयोगका अनुष्ठान कभी विफल नहीं होता। कर्मयोगका मूलतत्व है, निष्काम कर्म। अर्थात् फलाफलकी परवाह न कर दृढ़ताके साथ अपना कर्त्तव्य कर्म करते जाना। परन्तु जिसमें यह दृढ़ता नहीं होती वह कुछ नहीं कर सकता।

क्योंकि उसके मनमें अनेक कल्पनायें उठती हैं और विलीन होती हैं, इसलिये वह सदैव सन्देहमें ही पड़ा रहता है। ऐसे लोग सकाम कर्मको ही धर्म्म समझते हैं। वे स्वर्ग चाहते हैं, ऐश्वर्य्य चाहते हैं और इसीमें उनका मन लगता है। ऐसे अस्थिर चित्तवाले, विवेकहीन मनुष्योंका चित्त सदैव संशयमें पड़ा रहता है। इसलिये तुम सांसारिक वस्तु प्राप्त करनेकी इच्छा छोड़ दो, सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी और राग-द्वेष आदि द्वन्दोंको परित्याग कर अप्रमादी और निष्काम बन जावो। केवल कर्म करते जावो, कर्मफलकी कामना न करो। आसक्ति छोड़कर सफलता और असलफताको बराबर समझकर जो कर्म किया जाता है, वही कर्मयोग है। कर्मयोग विशिष्ट महापुरुष कर्मजनित फलकी आशा नहीं करते, सुतरां जन्म-बन्धनसे विमुक्त हो जाते हैं। अतः तुम इन बातों-पर विचारही न करो। निष्काम भावसे कर्म्म करनेपर यदि कुछ अपकर्म्म भी हो जाता है, तो करनेवालेको पाप नहीं लगता।"

सारांश यह, कि इस तरहकी बहुतसी बातें कहकर कृष्ण अर्ज्जुनको समझाने लगे। उनके मुँहसे आत्मतत्व और कर्म-योग विषयक अमूल्य उपदेश सुनकर अर्ज्जुनके मनमें उत्तरोत्तर आत्मतत्व सम्बन्धिनी अन्यान्य बातें जाननेकी आकांक्षा उत्पन्न होने लगी। उन्होंने इस सम्बन्धमें कितने ही प्रश्न किये। श्रीकृष्णने शास्त्र उपदेश देकर अर्ज्जुनकी आकांक्षा पूरी की और अन्तमें अपने विराट रूपका दर्शन कराकर उनके मनका समस्त मोह-भ्रम दूरकर दिया! भगवानके उस विराट रूपका

दर्शनकर अर्ज्जुन आनन्द विह्वल हो गये और परम पुलकित चित्तसे उनकी स्तुति करने लगे। इसके बाद श्रीकृष्णने उन्हें योग-विद्या सम्बन्धिनी और भी कई आवश्यक बातें बता कर पूछा,—"हे अर्ज्जुन! अज्ञानके कारण तुम्हारे मनमें जो मोह उत्पन्न हो गया था, वह दूर हुआ या नहीं?"

उस समय अर्ज्जुनका मोहभ्रम दूर हो गया था। ज्ञान चक्षु खुल गये थे। आत्माकी अविनश्वरता और निष्काम कर्मकी महत्ता हृदयंगम हो चुकी थी। उन्होंने कहा,—"हे अच्युत! तुम्हारी कृपासे मेरा सब सन्देह दूर हो गया। अब मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करनेके लिये तैयार हूँ।"

३६

कौरवों और पाण्डवोंका सुप्रसिद्ध महासमर, जिसकी तुलनाका दूसरा युद्ध संसारके इतिहासमें नितान्त विरल है, कुरुक्षेत्रके मैदानमें अट्ठारह दिवसतक हुआ था। महाभारत नामक ग्रन्थमें इस महायुद्धका जो वर्णन किया गया है, वह कविकी कल्पनाकी चादरसे इस तरह आच्छादित हो गया है, कि उसके असली रूपका आभास भी दुर्लभ है। तथापि यदि उसके शतांशको भी सत्य मान लें तो कहना पड़ेगा, कि जिस तरह आर्योंने संसारोपयोगी अन्यान्य कलाओंमें सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त किया था, उसी तरह युद्धकलामें भी वे अपना सानी नहीं रखते थे। इस युद्धमें जितने हथियारोंके नाम आये हैं, उतनी तरहके हथियारोंका आविष्कार आर्योंके सिवा और किसी जातिने कभी किया था या नहीं, इसमें सन्देह है। महाभारतमें जितने योद्धा लड़नेके लिये एकत्र थे, उतने और कहीं, किसी देशमें भी एकत्र नहीं हुए! यह युद्ध धर्मयुद्ध था। युद्धारम्भसे पहले ही दोनों पक्षवालोंने मिलकर कतिपय विचित्र नियम निर्द्धारित कर लिये थे और यथासाध्य बड़ी

सावधानी और तत्परतासे उन नियमोंका पालन करते थे। यदि कोई योद्धा उन नियमोंके विरुद्ध आचरण कर डालता था तो वह घोर निन्दाका पात्र समझा जाता था। प्रातःकालसे लेकर सन्ध्यातक खूब मारकाट होती थी, इसके बाद युद्ध स्थगित हो जाता था। उस समय आवश्यकतानुसार एक पक्षका मनुष्य दूसरे पक्षके शिविरमें बेखटके चला जा सकता था और जिस किसीसे मिलकर बातचीत कर सकता था। असावधान शत्रुपर वार नहीं किया जाता था। भीष्म और द्रोण आदि यद्यपि कौरवोंकी ओरसे युद्ध करते थे, तथापि पाण्डवोंको युद्ध सम्बन्धीय परामर्श दे सकते थे। गदायुद्धमें शत्रुके शरीर पर कमरसे नीचे आघात पहुँचाना अनियमित और अनुचित समझा जाता था। युद्ध-संवाद संग्रह करनेकी व्यवस्था भी यथोचित रूपसे की गई थी। यह कार्य्य राजा धृतराष्ट्रके मन्त्री महामति सञ्जयके सुपुर्द था। वे बड़ी सावधानी और तत्परतासे युद्ध-सम्बन्धीय प्रत्येक घटनाका विस्तृत विवरण संग्रह करते थे और दिनभर लड़ाईके मैदानमें जो कुछ होता, वह सन्ध्याको राजा धृतराष्ट्रको सुना दिया करते थे। सारांश यह, कि इस महासमरकी सभी बातें विलक्षण और विचित्र थीं। इसीसे कहना पड़ता है, कि यह युद्ध संसारके इतिहासमें अद्वितीय था।

युद्ध आरम्भ होनेके पहले युधिष्ठिरने कवच और हथियार रखकर चुपचाप कौरवोंकी सेनामें प्रवेश किया। हठात् उन्हें

शत्रु-दलकी ओर जाते देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। भीम तथा अर्ज्जुन आदि भी उनके साथ जाने लगे। परन्तु कृष्णने उन्हें रोककर कहा,—"घबरानेकी कोई बात नहीं। राजा युधिष्ठिर लड़ाई छिड़नेसे पहले एकबार पितामह भीष्म और आचार्य्य द्रोण आदिसे मिलकर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शन और युद्ध करनेकी अनुमति लेने जा रहे हैं। तुम लोग अधीर न हो।"

राजा युधिष्ठिरने भीष्म और द्रोण आदिके निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया और युद्धके लिये आज्ञा चाही। वे लोग युधिष्ठिरकी यह नीति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले, कि इस युद्धमें अवश्य ही तुम्हारी विजय होगी; क्योंकि श्रीकृष्ण तुम्हारे सहायक हैं। वे परम धार्म्मिक और बुद्धिमान हैं। वे जहाँ हैं, वहीं विजय भी है। तुम स्वच्छन्दतापूर्व्वक जाकर युद्धमें प्रवृत्त हो।

युधिष्ठिरके लौटनेपर श्रीकृष्णको मालूम हुआ, कि कर्ण भीष्मका द्वेषी है और उसने प्रतिज्ञा की है, कि जबतक भीष्म सेनापति रहेंगे तबतक युद्धमें भाग न लूंगा। यह खबर पाकर उन्होंने एकबार फिर कर्णको मिलानेकी चेष्टा की। उसके पास जाकर कहा, कि जबतक भीष्म निहत न हों तबतक तुम-पाण्डवोंकी ओरसे लड़ो। परन्तु कर्णने यह प्रस्ताव स्वीकार न किया। उसने कहा, कि मैं दुर्योधनका अप्रिय आचरण कदापि नहीं करूँगा। अगत्या श्रीकृष्णका यह प्रयत्न भी विफल गया!

३७

भीष्म-वध.

इसके बाद युद्ध आरम्भ हुआ। खचाखच तलवारें चलने लगीं। देखते देखते पृथिवी रुण्डमुण्डमय हो गई! रक्तकी नदी सी बह चली। रणोन्मत्त वीरोंकी हुँकार, हाथियोंकी चिंघाड़, रथोंकी घर-घराहट और विविध प्रकारके रणवाद्योंके शब्दसे भीषण गगन-भेदी कोलाहल मच गया! महावीर भीष्मने भयङ्कर मार मचाकर बड़े बड़े वीरोंके दाँत खट्टे कर दिये। जिधर टूट पड़ते, उधर प्रलय उपस्थित कर देते थे। सैकड़ों—हजारों योद्धा उनके तीक्ष्णबाणोंके शिकार बन जाने लगे। इस तरह तीन दिन युद्ध करके उन्होंने पाण्डवोंकी अगणित सेनाका ध्वंस कर डाला। बूढ़े पितामहका अद्भुत पराक्रम देखकर बड़े बड़े योद्धा दंग रह गये। कृष्णको बड़ी चिन्ता होने लगी। पाण्डवोंकी सेनामें अर्ज्जुनके सिवा कोई ऐसा न था, जो महावीर भीष्मका मुकाबिला कर सकता और उन्हें वृद्ध समझकर, संकोचवश उनसे अच्छी तरह युद्ध नहीं कर सकते थे। यह देखकर श्रीकृष्णने अर्ज्जुनसे कहा, कि यदि भीष्म इसी तरह भयङ्कर मार मचाते रहे और तुम संकोचमें पड़े रह गये, तो निश्चय ही वे समस्त पाण्डव सेनाका ध्वंस

कर डालेंगे। वह देखो, जिस तरह शिकारीको देखकर मृगोंका दल भागता है, उसी तरह भीष्मके भीषण वाणोंके भयसे तुम्हारी सेना तितर वितर होकर भाग रही है, इस समय तुम्हें हृदय खोलकर युद्ध करना चाहिये। तुमने भीष्मको परास्त करनेकी जो प्रतिज्ञा की थी, उसका स्मरण करो।

अर्ज्जुनने कहा,—"मेरा रथ पितामहके सम्मुख ले चलो। अब मैं अवश्य ही रणदुर्म्मद पितामहको युद्धका मजा चखाऊँगा।"

कृष्णने रथ आगे बढ़ाया। अर्ज्जुनको देखते ही भीष्म उनपर टूट पड़े और वर्षा कालीन बूँदोंकी झड़ीकी तरह वाणोंकी वर्षा करने लगे। इधर अर्ज्जुन भी बड़ी फुर्त्तीसे उनके वाणोंको काटकर उन्हें बार बार विद्ध करने लगे। वीरवर अर्ज्जुनकी हस्तलाघवता देखकर, भीष्म उनकी प्रशंसा करने लगे, और द्विगुण उत्साहसे वाण चलाकर उन्होंने पाण्डवोंकी सेनाको जर्ज्जरित कर दिया। सेना तितर बितर होकर भाग खड़ी हुई। क्षत्रित्व और वीरत्वकी बार बार दुहाई देनेपर भी कोई भीष्मके सामने ठहर न सका।

सैनिकोंको इस तरह भागते देखकर श्रीकृष्ण विशेष विचलित हुए और रथसे उतर कर, हाथमें भीषण चक्र लिये, यह कहते हुए भीष्मकी ओर दौड़ पड़े, कि जो मौतसे डरते हैं, वे भाग जायँ, अब मैं स्वयं भीष्मका संहार कर सारी कौरव सेनाको विध्वंस करूँगा।

इस तरह उत्तेजित होकर श्रीकृष्णको अपनी ओर आते देख,
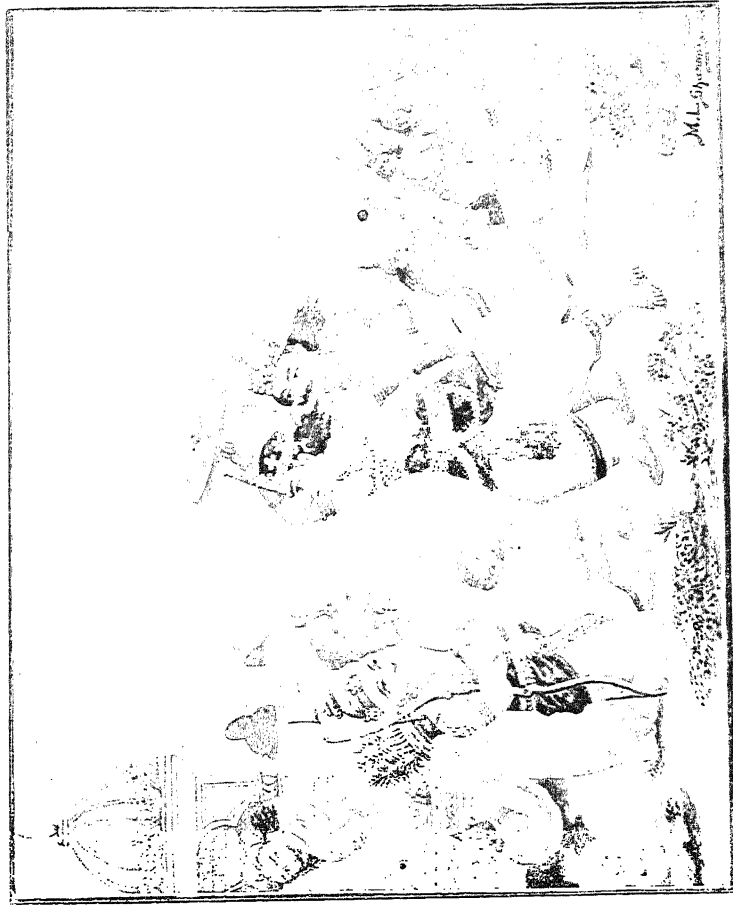
"आइये, मेरा अहोभाग्य, कि आप स्वयं मुझे मारनेको आये हैं!

(देखिये पृष्ठ संख्या ३५१)

भीष्मने धनुषबाण रख दिया और हाथ जोड़कर कहने लगे,—"आइये, मेरा अहोभाग्य, कि आप स्वयं मुझे मारने आये हैं!" इधर अर्ज्जुनने सोचा, कि कृष्णने युद्ध न करनेकी प्रतिज्ञा की है, परन्तु इस समय उत्तेजित होकर भीष्मको मारनेके लिये उद्यत हैं। यदि वे क्रोधावेशमें आकर अपनी प्रतिज्ञा भंगकर देंगे, तो इसका पाप मेरे सिर आयगा। यह सोचकर, वे तुरन्त रथसे उतर कर कृष्णके पास गये और कहने लगे,—"हे कृष्ण! क्रोध परित्याग करो। मैं शपथ पूर्व्वक कहता हूँ, कि अब युद्धमें ज़रा भी कोताही न करूँगा। पितामहका संकोच छोड़कर उन्हें शीघ्र ही निहत करनेके लिये प्राणपणसे चेष्टा करूंगा।"

वास्तवमें श्रीकृष्णने अर्ज्जुनको उत्तेजित करनेके लिये ही ऐसा किया था। इसलिये जब उन्होंने देखा, कि अर्ज्जुन भीष्मको मारनेके लिये शपथ पूर्व्वक प्रतिज्ञा कर रहा है, तब शान्त हो गये और रथपर आकर बैठ गये।

इसके बाद अर्ज्जुनने भयङ्कर युद्ध आरम्भ किया और बातकी बातमें शत्रुदलके लाखों सैनिकोंको धराशायीकर भीष्मकी मारका बदला चुकाने लगे। यद्यपि अर्ज्जुनने उत्साह पूर्व्वक लड़ाई करनेमें कोई कोर-कसर न रखी थी, तथापि भीष्मके जीतेजी पाण्डवोंको विजयकी आशा न रही। इसलिये वे शीघ्र ही उन्हें निहत करनेकी तदबीर सोचने लगे। इधर दुर्योधनने भी बहुतसे बड़े-बड़े महारथियोंको भीष्मकी रक्षाके लिये नियुक्त कर दिया था। दोनों ओरके वीर अपना अपना रणकौशल दिखाते हुए घोर

संग्राम करने लगे। इस तरह सात दिनतक अर्ज्जुन और भीष्मकी लड़ाई होती रही। हाथी, घोड़ों और सैनिकोंकी लाशोंकी ढेर लग गई। बड़े बड़े वीर इस सात दिनकी लड़ाईमें काम आये। परन्तु इतने पर भी कोई दल किसीको परास्त न कर सका। महावीर भीष्मके तीक्ष्ण शरोंसे पाण्डव सेना घबरा उठी। यह देख नवें दिनकी रातको राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण तथा अन्यान्य सरदार-सामन्तोंको बुलाकर कहा, कि भीष्म जिस तरह हमारी सेनाका ध्वंस कर रहे हैं, वह यदि कुछ दिन और जारी रहा तो निश्चय ही हमलोग हार जायंगे। यदि मैं जानता कि इस युद्धका यही परिणाम होगा तो कदापि लड़ाईके लिये प्रस्तुत न होता। अपने सैनिकोंका प्रतिदिन इस तरह ह्रास होता देखकर मेरा जी अत्यन्त दुःखी हो रहा है। मेरी इच्छा हो रही है, कि युद्ध करना छोड़कर वनमें चला जाऊँ।"

श्रीकृष्णने कहा,—"आप घबराइये नहीं। आपके भाई बड़े विक्रमशाली हैं। वे ऐसे कितने हो भीष्मको समरशायी कर सकते हैं। अथवा मुझे आज्ञा दीजिये तो मैं अकेला ही भीष्म सहित समस्त कौरव सेनाका ध्वंस कर डालूँ। यदि आपको विश्वास हो, कि भीष्मके निहत होनेसे ही आप विजयी होंगे तो मैं आज ही जाकर उन्हें मार सकता हूँ। आपका अनुज अर्ज्जुन मेरा सम्बन्धी और शिष्य है। उसकी भलाईके लिये मैं अपने शरीरका मांस तक दे सकता हूं। उसने भीष्मको मारनेकी बार बार प्रतिज्ञा की है। चाहता हूँ, कि उसकी प्रतिज्ञा पूरी

हो। आप विश्वास रखिये, धनञ्जय निश्चय ही भीष्मको निहत करेगा।"

युधिष्ठिरने कहा,—"तुम्हारा कहना यथार्थ है। निस्सन्देह कौरव दलमें कोई ऐसा वीर नहीं, जो तुम्हारा सामना कर सके। परन्तु तुमने प्रतिज्ञा की है, कि इस युद्धमें अस्त्र नहीं धारण करूँगा। इसलिये मैं नहीं चाहता, कि तुम्हारी प्रतिज्ञा भङ्ग हो। तुम जबतक हमारे सहायक हो तबतक भीष्म तो क्या देवराज इन्द्र भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। तुम्हारी प्रतिज्ञा की रक्षा करना मैं अपना धर्म्म समझता हूं, इसलिये तुम निरस्त्र रहकर ही हमारी सहायता करते रहो। पितामहने प्रतिज्ञा की थी, कि यद्यपि वे दुर्योधनकी ओरसे लड़ाई करेंगे, परन्तु हमलोगोंको आवश्यक परामर्श बराबर देते रहेंगे। इसलिये मेरी राय है, कि हमलोग उन्हींके पास चलकर उनके वधकी तदबीर पूछें। वे सत्यवादी और अटल प्रतिज्ञ हैं। मुझे विश्वास है, कि वे निश्चय ही अपने मरनेकी तदबीर बता देंगे।"

श्रीकृष्ण बोले—"आपकी राय मुझे भी पसन्द है। वे आपके पूछने पर अवश्य अपने वधकी तदबीर बता देंगे।"

इसके बाद श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिर आदि हथियार रखकर खाली हाथ महावीर भीष्मके पास गये। भीष्मने यथोचित सत्कारके बाद इन लोगोंके आनेका कारण पूछा।

युधिष्ठिरने कहा,—"इधर कई दिनोंसे आप जिस तरह अद्भुत विक्रम प्रकाश पूर्व्वक युद्ध कर रहे हैं, उससे प्रतीत होता है, कि

आपके जीतेजी हमारी विजय नहीं होगी। जिस समय आप युद्ध करते हैं, उस समय यह नहीं मालूम होता, कि आप कब शरासन उठाते और कब शर निक्षेप करते हैं। आपकी वाण-वृष्टिसे प्रतिदिन हमारी अगणित सेना नष्ट हो रही है। इसलिये कृपाकर कोई ऐसी तदबीर बतलाइये, जिसमें हम आपको जीतकर राज्य प्राप्त कर सकें।"

राजा युधिष्ठिरका अत्यन्त सरल और स्पष्ट कथन सुनकर पितामहने हंसते हुए कहा,—"सच कहते हो। मेरे जीतेजी तुम्हें विजय नहीं प्राप्त हो सकती। इसलिये जैसे बने शीघ्र मुझे मारनेका प्रयत्न करो। मेरे मरनेके बाद अवश्य तुम्हारी विजय होगी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।"

युधिष्ठिर—परन्तु आपको जीतना हमारे लिये अत्यन्त कठिन है। क्योंकि जिस समय आप क्रुद्ध होकर वाण निक्षेप करने लगते हैं, उस समय मनुष्य तो क्या स्वयं यमराज भी आपका मुकाबिला नहीं कर सकता। इसलिये कृपाकर आपही कोई ऐसी तदबीर बतलाइये, जिसमें हमलोग आपको जीत सकें।

पितामहने कहा,—"जबतक मेरे हाथमें धनुषवाण मौजूद रहेगा तबतक तो इन्द्र भी मुझे परास्त नहीं कर सकता। इसलिये ऐसी तदबीर होनी चाहिये जिसमें मैं अस्त्र परित्याग कर दूं और उसी समय अर्ज्जुन अपने तीक्ष्ण वाणोंसे मुझे मारे तो मैं मर सकता हूँ। सुनो, मैं स्त्री, स्त्रीनामा, अस्त्रहीन, विकलाङ्ग और शरणागतपर वार नहीं करता। तुम्हारी सेनामें शिखण्डी

नामका जो योद्धा है, वह स्त्रीनामा होनेके अतिरिक्त पूर्व्व जन्मका स्त्री है। यदि वीरवर अर्ज्जुन उसे अपने आगे खड़ाकर मुझपर अस्त्र प्रहार करे तो मैं मर सकूँगा। क्योंकि जबतक शिखण्डी मेरे सामने रहेगा, तबतक मैं हथियार नहीं उठा सकता। लड़ाईके मैदानमें श्रीकृष्ण और अर्ज्जुनके सिवा दूसरा कोई वीर मेरे सामने ठहर नहीं सकता। इसलिये मुझे शीघ्र परास्त करनेका यही एकमात्र उपाय है।"

वृद्ध पितामहका कथन सुनकर राजा युधिष्ठिर आदि तो सन्तुष्ट हुए, परन्तु वीरवर अर्ज्जुन बड़े दुःखित और लज्जित हुए। वहाँसे लौटनेपर उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा,—"स्वच्छ हृदय, पितामहका कथन सुनकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, लड़कपनमें जिनकी देहपर चढ़कर खेला करता था, अपने धूलिधूसरित शरीरसे जिनके शरीरको मैला किया करता था, उन्हें कैसे मारूँगा। बाल्यकालमें उनकी गोदमें बैठकर, उन्हें पिता कहता तो वे कहते कि 'मैं तेरा पिता नहीं, वरं तेरे पिताका पिता हूँ।' उन्हीं पूज्य पिताके पिताको तुच्छ राज्यके लिये इस तरह नृशंसतापूर्व्वक वध करनेकी प्रवृत्ति मेरी नहीं होती। मैं उनके साथ कदापि युद्ध न करूँगा। राज्य प्राप्त करनेके लिये इस प्रकारका अपकर्म्म मुझसे नहीं होगा!"

अर्ज्जुनको पुनः मोहाविष्ट होते देखकर श्रीकृष्णने उन्हें उत्तेजित करते हुए कहा,—"तुम इससे पहले भीष्मको मारनेकी बारबार प्रतिज्ञा कर चुके हो! क्या उसे भूल गये? पितामहका

मरणकाल उपस्थित हो चुका है। इस समय तुम्हारा दुःखित और लज्जित होना उचित नहीं। अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन करना क्षत्रियका धर्म्म है। इसके सिवा, प्रजाकी भलाईके लिये, राज्य लाभ करनेके लिये और संसारके सामने अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखनेके लिये भी पितामहको मारना अत्यन्त आवश्यक है। तुम्हारे सिवा कोई उन्हें निहत नहीं कर सकता। यहाँतक कि स्वयं वज्रधर देवेन्द्र भी दुर्द्धर्ष भीष्मका संहार करनेमें असमर्थ है। इसलिये तुम सोच-विचार छोड़कर यह अवश्य कर्त्तव्य-कर्म सम्पन्न करनेके लिये प्रस्तुत हो जाओ। महामति वृहस्पतिका कथन है, कि आततायी व्यक्ति गुणवान, बुद्धिमान और वयोवृद्ध हो, तो भी उसे मार डालना चाहिये। असूयाशून्य होकर युद्ध करना क्षत्रियोंका धर्म्म है। इसलिये तुम्हें दत्तचित्त होकर अपने क्षात्रधर्म्मका पालन करना चाहिये। वृथा मोहमें पड़कर अपने कर्त्तव्य-कर्मसे विमुख होना उचित नहीं।"

श्रीकृष्णके इन उपदेश वाक्योंने मन्त्रका काम कर दिया! अपनी पूर्व्व प्रतिज्ञा यादकर अर्जुनने शिखण्डीको आगेकर पितामहसे लड़ना स्वीकार कर लिया।

दसवें दिन प्रातःकाल युद्धारम्भ होनेपर श्रीकृष्णने अर्ज्जुनका रथ लाकर भीष्मके सामने खड़ा कर दिया। दोनों महावीरोंमें घोर युद्ध आरम्भ हुआ। वृद्ध पितामहने वाणोंकी झड़ी लगा दी। अर्ज्जुन घबरा उठे। अन्तमें शिखण्डीको आगे कर बड़ी
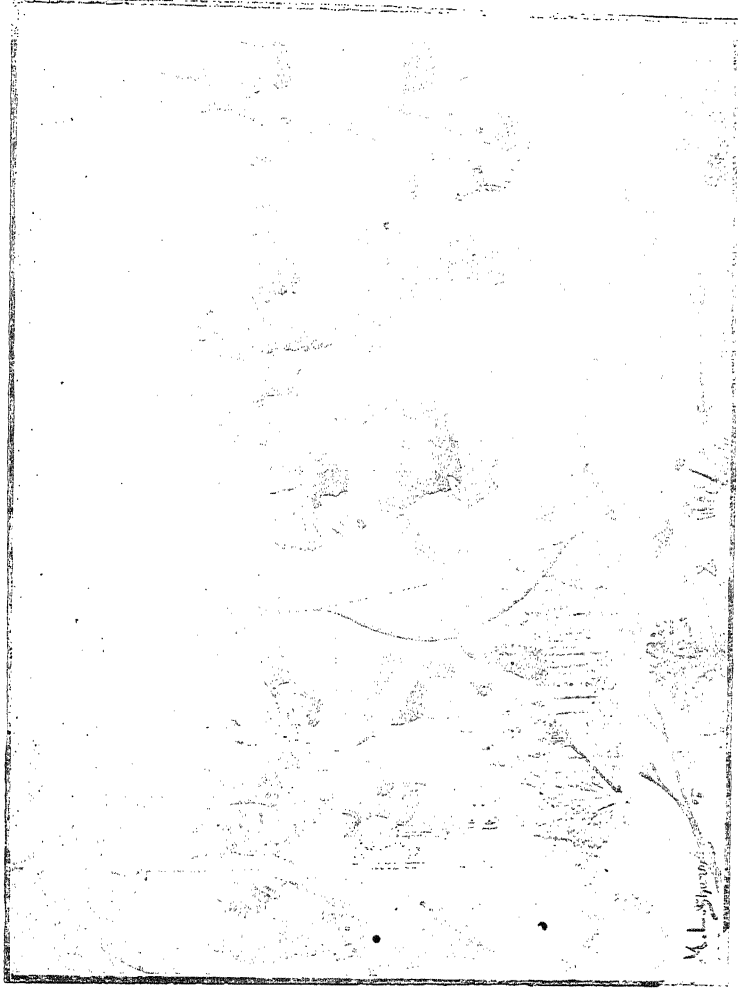
कौरव-कुलका वयोवृद्ध महावीर शर-शय्यापर सोकर प्राण विसर्जनके लिये उपयुक्त समयकी प्रतीक्षा करने लगा।

दुर्गा प्रेस, कलकत्ता] [देखिये पृष्ठ संख्या ४७३

कठिनतासे उन्होंने बूढ़े भीष्मको धराशायी किया। कौरव कुलका वयोवृद्ध महावीर शर शय्यापर सोकर, प्राण विसर्ज्जनके लिये उपयुक्त समयकी प्रतीक्षा करने लगा!

सन्ध्याको शिविरमें आनेपर श्रीकृष्णने राजा युधिष्ठिरके निकट जाकर, आजकी विजयके लिये उन्हें बधाई दी।

युधिष्ठिरने श्रीकृष्णके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हुए कहा,—"यह सब तुम्हारी ही असीम कृपाका फल है।"

३८
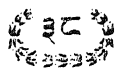
जयद्रथ-वध.
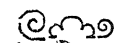
देवव्रत भीष्मके बाद कौरवोंने ब्राह्मण वीर आचार्य्य द्रोणको अपना सेनाध्यक्ष नियुक्त किया। महात्मा द्रोण कौरवों तथा पाण्डवोंके गुरु थे। इन्होंने ही युधिष्ठिर, दुर्योधन और अर्ज्जुन आदिको धनुर्विद्याकी शिक्षा दी थी।

महावीर द्रोणाचार्य्यने कई दिनोंतक घोर संग्राम कर पाण्डवोंकी अगणित सेनाका ध्वंस कर डाला। इसी बीचमें एक दिन भगदत्त नामक एक कौरव पक्षीय योद्धाने अर्ज्जुनपर वैष्णवास्त्र नामक एक भयंकर शर निक्षेप किया। उस समय श्रीकृष्णने अर्ज्जुनको बचा लिया। क्योंकि श्रीकृष्णके सिवा और किसी वीरमें उस भयंकर वाणकी मार सहनेकी शक्ति न थी। यदि श्रीकृष्ण स्वयं उस तीक्ष्ण वाणको न रोकते तो अर्ज्जुनका प्राण बचना कठिन था। इसी तरह वे समय समयपर अपने कौशलसे अर्ज्जुनकी रक्षा करते हुए उन्हें युद्धके लिये उत्साहित करते रहे।

एक दिन कौरव पक्षके सात महारथियोंने मिलकर अर्ज्जुनके

पुत्र अभिमन्युको मार डाला। यह अप्राप्त वयस्क बालक श्रीकृष्णकी बहन सुभद्राके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। जिस समय यह संग्राममें मारा गया था, उस समय उसकी उमर केवल चौदह वर्षकी थी। इसी छोटी अवस्थामें उसने अपने पिता अर्ज्जुन और मामा श्रीकृष्णकी भाँति बल-विक्रम प्राप्तकर लिया था।

अर्ज्जुनकी यह प्रतिज्ञा थी, कि लड़ाईके मैदानमें जो कोई योद्धा उन्हें ललकारेगा, वह पहले उसीसे युद्ध करेंगे। इसलिये जब वे मैदानमें आते थे, तभी श्रीकृष्णकी नारायणी सेनाके वीर, जो दुर्योधनकी ओरसे लड़ रहे थे, अर्ज्जुनको युद्धके लिये आह्वान कर लिया करते थे। वीरवर अर्ज्जुनके उधर चले जानेके कारण, द्रोणकी समता करनेवाला कोई वीर इधर नहीं था। फलतः द्रोण नित्यप्रति पाण्डवोंकी अपरिमित सेनाका नाश कर दिया करते थे।

एक दिन वीरवर अर्ज्जुन पूर्ववत् नारायणी सेनाके साथ युद्ध करने चले गये। इधर द्रोणाचार्य्यने अपनी महती सेना, लड़ाईके मैदानमें लाकर व्यूहाकारमें खड़ी कर दी। यह देखकर राजा युधिष्ठिरको बड़ी चिन्ता हुई। क्योंकि उनके वीरोंमें अर्ज्जुन, श्रीकृष्ण और अभिमन्युके सिवा, कोई चक्रव्यूह भेद करना नहीं जानता था। उपायान्तर न देख उन्होंने अभिमन्युको अपने निकट बुलाकर कहा,—"वत्स, महावीर आचार्य्यने अपनी सेना द्वारा चक्रव्यूह निर्माण किया है। हमारी ओरकी वीर मण्डलीमें, इस समय तुम्हारे सिवा कोई दूसरा व्यक्ति ऐसा नहीं

दिखाई देता जो इस दुर्गम व्यूहका भेद कर सके। इसलिये यह गुरुतर भार तुम्हींको अपने ऊपर लेना पड़ेगा, नहीं तो अर्ज्जुन आकर हम लोगोंकी बड़ी निन्दा करेंगे।"

वीर बालक अभिमन्यु अपने चाचाका आदेश पाकर बड़े उत्साह से द्रोणाचार्य्यके साथ युद्ध करनेको तैयार हो गया। किशोरवयस्क अभिमन्युका दुस्साह देखकर सारथीने कहा,—"महाराज युधिष्ठिरने बड़ा ही गुरुतर भार आपको सौंपा है। मेरी राय है, कि आप खूब सोच विचार कर इसके लिये अग्रसर हों। क्योंकि दिव्यास्त्रधारी महावीर द्रोण कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। उनसे मोरचा लेना आप जैसे अप्रवीण नवयुवकका काम नहीं है।"

अभिमन्युने कहा,—"मैं द्रोणाचार्य्यसे जरा भी नहीं डरता। तुम शीघ्र मेरा रथ उनके सामने ले लो।"

अभिमन्युका आदेश पाकर सारथीने रथको द्रोणाचार्य्यकी सेनाके सामने स्थापित कर दिया। जिस तरह सिंहशावक गजयूथ देखकर हृष्ट चित्तसे उसपर आक्रमण करता है, उसी तरह अर्ज्जुन-पुत्र अभिमन्यु भी कौरव सेनापर टूट कर वाण वर्षा करने लगा और देखते देखते द्रोणनिर्मित चक्रव्यूह भेदकर भीतर प्रवेश कर गया। उसका अद्भुत शौर्य्य वीर्य्य और विचित्र शक्ति देखकर शत्रु भी प्रशंसा करने लगे। अपने परम प्रिय शिष्यके पुत्रका बल-विक्रम देखकर महात्मा द्रोणने भी बड़ी प्रसन्नता लाभ की और उसकी हस्त लाघवताकी बार बार प्रशंसा करने लगे।

अभिमन्यु द्वारा अपनी सेनाका नाश होते देखकर दुर्योधनको बड़ी चिन्ता होने लगी। उसने अपने दलके कतिपय प्रधान महारथियोंको बुलाकर कहा,—"मालूम होता है, कि अभिमन्युको अपने शिष्यका पुत्र समझ कर आचार्य्य द्रोण, उसे वध करना नहीं चाहते और वह उत्तरोत्तर हमारी सेनाका ध्वंस करता जा रहा है। अतएव हम लोगोंको शीघ्र ही किसी तदबीरसे अभिमन्युको मार डालना चाहिये। नहीं तो यह हमारी समस्त सेनाका नाश कर डालेगा।"

महारथियोंने कहा,—"आप कोई चिन्ता न करें। हमलोग शीघ्र अभिमन्युको मार डालेंगे।"

इसके बाद द्रोण, कर्ण, कृप तथा अन्यान्य सात महारथीोंने एक साथ ही, अभिमन्युपर आक्रमण किया और जयद्रथ नामक एक महावीर अपनी महती सेनाके साथ चक्रव्यूहका द्वार रोक कर खड़ा हो गया। इसलिये पाण्डव पक्षीय कोई वीर अभिमन्युकी सहायताके लिये न आ सका। वीर बालक अकेला ही सात प्रवल पराक्रान्त महारथियोंके साथ युद्ध करने लगा और अपना अद्भुत पराक्रम दिखाकर सबके दाँत खट्टे कर दिये। शत्रुपक्ष घबरा उठा। उसके तीक्ष्ण वाणोंकी चोट बरदाश्त न कर कौरव सेना मैदान छोड़कर भाग खड़ी हुई। बड़े बड़े वीरोंके पैर उखड़ गये। उस समय शत्रुपक्षका कोई वीर अभिमन्युके सामने ठहरनेकी हिम्मत न कर सका।

यह देखकर द्रोणने कहा,—"पहले इसके सारथी और

घोड़ोंको मार डालना चाहिये। इसके बाद तीक्ष्ण वाणोंसे इसका धनुष काट डालनेकी चेष्टा होनी चाहिये। क्योंकि यह बालक अपने पिता अर्ज्जुनकी भाँति पराक्रमशाली है। जबतक इसके हाथमें हथियार रहेगा, तबतक किसीकी मजाल नहीं जो उसके सामने ठहर सके।"

इस परामर्शके अनुसार सारथियोंने मिलकर एक साथ ही फिर अभिमन्युपर आक्रमण किया और सबसे पहले उसके सारथी और घोड़ेको मार गिराया। बालक रथ परित्याग कर युद्ध करने लगा। इतनेमें ही शत्रुओंने उसका धनुष भी काट डाला। अभिमन्यु तलवार लेकर युद्ध करने लगा, परन्तु उसे भी शत्रु-ओंने वाणोंसे काट डाला। उस समय वह रथका पहिया उठाकर शत्रुओंको मारने लगा। इतनेमें दुःशासनके पुत्रने अपनी गदासे उसके सिरपर भीषण प्रहार किया। दारुण गदाघातसे महावीर अभिमन्यु संज्ञाशून्य होकर जमीन पर गिर पड़ा! समस्त पाण्डव सेना शोकसे अभिभूत हो गई।

सन्ध्याको युद्धसे लौटनेपर कृष्ण और अर्ज्जुनने अभिमन्युकी मृत्युका संवाद सुना। राजा युधिष्ठिरने रोते रोते आदिसे अन्ततक सब कथा अर्ज्जुनको सुनाई। साथ ही यह भी कहा, कि यदि जयद्रथ अपनी सेना लेकर हमलोगोंका पथ न रोक लेता और हमलोग अभिमन्युकी सहायता कर सकते तो वह मारा न जाता।

राजा युधिष्ठिरके मुखसे पुत्रका निधन वृतान्त सुनकर

अर्ज्जुन अत्यन्त शोकाकुल हुए और 'हा पुत्र!' कहकर कटे हुए वृक्षकी भांति पृथिवीपर गिरकर वेहोश हो गये। उस समय समस्त पाण्डव दलमें हाहाकार मच गया। सभी 'हा अभिमन्यु! हा वीर' कहकर रोने लगे। बड़ी देरके बाद संज्ञा लाभ करनेपर अर्ज्जुन क्रोधसे अत्यन्त अधीर हो उठे। उस समय उनकी आँखोंसे मानों आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्होंने राजा युधिष्ठिरको सम्बोधन कर कहा,—"पापी जयद्रथ ही अभिमन्युकी मृत्युका हेतु है, इसलिये मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि यदि वह लड़ाईका मैदान छोड़कर भाग न जायगा अथवा आप या महात्मा श्रीकृष्णके शरणमें न आयेगा, तो कल मैं अवश्य ही उसका वध करूँगा। द्रोण या कृप यदि उसको बचानेके लिये आयेंगे तो उन्हें भी मारूँगा। यदि कल सूर्य्यास्त होनेसे पहले ही मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सकूँगा तो आपलोगोंके सामने ही चिता जलाकर जीतेजी भस्म हो जाऊँगा। अभिमन्युका शत्रु यदि पातालमें भी चला जायेगा, तो भी मैं अवश्य मारूँगा। पृथिवीका कोई वीर उसकी रक्षा नहीं कर सकेगा।"

अर्ज्जुनकी यह प्रतिज्ञा सुनकर श्रीकृष्णने मानों उन्हें और भी उत्साहित करनेके लिये अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाना आरम्भ कर दिया। शङ्खका गगनभेदी घोष चारों दिशाओंमें फैल गया। इसके साथ ही शत शत पाण्डव पक्षीय वीरगण भी गरज उठे।

गुप्तचरोंके मुँहसे इस अद्भुत कोलाहल और अर्ज्जुनकी भीषण प्रतिज्ञाका संवाद सुनकर जयद्रथ अत्यन्त भयभीत हुआ। उसने

दुर्योधन, द्रोण, कर्ण, कृप और अश्वत्थामा आदि कौरव पक्षीय वीरोंके निकट जाकर कहा, कि अर्ज्जुनने मेरा संहार करनेकी प्रतिज्ञा की है। इसलिये मैं यहांसे अन्यत्र चला जाना चाहता हूँ।

दुर्योधनने कहा,—"तुम कोई चिन्ता न करो। मेरी ग्यारह अक्षोहिणी सेना तुम्हारी रक्षा करेगी। हमारे पक्षके इतने महावीरोंके रहते हुए किसकी मजाल है, जो तुम्हें मार सके।"

इसके बाद द्रोण आदि अन्यान्य महावीरोंने भी उसकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा कर अश्वासन प्रदान दिया।

इधर अर्ज्जुनकी प्रतिज्ञा सुनकर कृष्णने उन्हें उत्साहित तो किया, परन्तु पीछे बड़ी चिन्तामें पड़े। क्योंकि कौरव पक्षके सहस्रों महावीरोंको अतिक्रम कर जयद्रथको वध करना बड़ा कठिन काम था। उन्होंने अर्ज्जुनसे कहा,—"तुमने ऐसी कठिन प्रतिज्ञा कर डालनेमें बड़ी जल्दबाजी कर दी। प्रतिज्ञा करनेसे पहले एकबार मुझसे सलाह ले लेना बहुत जरूरी था। यदि कल तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सकोगे, तो लोग तुम्हारा उपहास करेंगे। मुझे पता लगा है, कि दुर्योधन आदि जयद्रथकी रक्षाके लिये प्राणपणसे प्रयत्न करेंगे। दुर्योधनने अपने पक्षके सभी महारथियोंको बुलाकर तुम्हारी प्रतिज्ञा सुना दी है। वह लोग कल चारों ओरसे जयद्रथकी रक्षा करेंगे। द्रोण, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा और भूरिश्रवा आदि महान् वीरोंको अतिक्रम कर जयद्रथको मारना कितना कठिन काम है, यह तुम्हें अच्छी तरह सोच लेना चाहिये था। खैर,

एक बार हमें अपने परामर्शदाताओंको बुलाकर परामर्श लेना चाहिये।"

अर्ज्जुनने कहा,—"मैंने जो प्रतिज्ञा की है, कल उसे अवश्य ही पूरी करूंगा। मुझे विश्वास है, कि तुम्हारी सहायतासे कल मैं अवश्य ही विजयी होऊँगा। कौरव-पक्षके जिन महारथियोंका नाम तुमने गिनाया है, वे कदापि मेरे सामने ठहर नहीं सकेंगे। इन्द्र, अग्नि, वरुण आदिसे जितने शस्त्रास्त्र मैंने प्राप्त किये हैं, कल उन सबका प्रयोग कर, कौरवोंको दिखा दूँगा, कि मुझमें कितनी शक्ति है। हे कृष्ण! तुम आशङ्का छोड़ दो।"

उस रातको पाण्डवोंके शिविरमें किसीको नींद न आई। सभी अर्ज्जुनकी कठिन प्रतिज्ञाकी चर्चा करते रहे। अर्ज्जुन और श्रीकृष्णने भी विश्राम नहीं किया। बड़ी देरतक परस्पर बातें करते रहे। अन्तमें अर्ज्जुनके कहनेसे श्रीकृष्ण सुभद्राके पास जाकर उसे सान्त्वना देने लगे। पुत्र-शोकाकुला सुभद्रा बाण-विद्धा हरिणीकी भाँति छटपटा रही थी। उसकी यह दशा देखकर श्रीकृष्णकी आँखोंमें अश्रु भर आया। वे बड़े कष्टसे अपने चित्तको संयत कर सुभद्राको आश्वासन देने लगे। बोले,—"सुभद्रे! तू क्षत्रियकी कन्या और वीर क्षत्राणी है। तुझे इस तरह शोक-विह्वला नहीं होना चाहिये। इस नश्वर जगत्‌में जो जन्म लेता है, वह अवश्य ही मरता है। युद्धमें शत्रुओंका विनाश कर प्राण परित्याग करना क्षत्रियके लिये बड़े सौभाग्यकी बात है। सत्कुल-जात क्षत्रियको जिस तरह प्राण परित्याग करना

चाहिये, अभिमन्युने वैसा ही किया है। अतएव उसके लिये तुझे शोक नहीं करना चाहिये। तू वीर-जननी, वीर-पत्नी, वीर-नन्दिनी और वीर-बान्धवा है। तुझे इस प्रकार शोकाकुल नहीं होना चाहिये। तेरे पुत्रने जो गति प्राप्त की है, वह बड़े बड़े महावीरोंको भी शीघ्र प्राप्त नहीं होती। पापी जयद्रथ ही उसकी मृत्युका कारण है। इसलिये वह अवश्य ही अपने कर्त्तव्य कर्मोंका फल पायगा। कल उसे कोई मृत्युके हाथोंसे बचा न सकेगा।"

इसी समय पति-वियोग-विधुरा उत्तराके साथ द्रौपदी भी वहाँ आई और सभी नाना प्रकारसे विलाप-कलाप कर रोने लगीं। श्रीकृष्णने बड़ी मुशकिलसे उन्हें समझा-बुझा कर शान्त किया। इसके बाद वे फिर अर्जुनके पास आये और उन्हें विश्राम कर लेनेकी अनुमति देकर अपने शिविरमें चले गये।

अर्ज्जुनकी कठिन प्रतिज्ञाने श्रीकृष्णको विशेष चिन्तित कर दिया था। सिन्धु सौवीरका राजा जयद्रथ कोई सामान्य व्यक्ति न था! वह एक सुदक्ष सेनानायक, अनेक प्रकारकी युद्ध विद्याओंमें निपुण और कितने ही अमोघ शस्त्रास्त्रोंका ज्ञाता था। इसके सिवा दुर्योधनने उसकी रक्षाके लिये यथोचित प्रबन्ध भी कर रखा था। उसने अपने दलके सभी महारथियोंको बुलाकर जयद्रथकी रक्षाके लिये सावधान रहनेको कहा था। श्रीकृष्ण यह जानते थे, इसीसे वे विशेष चिन्तित हुए। यदि कल सन्ध्यासे पहले ही अर्ज्जुन जयद्रथको निहत न कर सके तो

अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उन्हें आत्म-हत्याकर लेनी पड़ेगी। बड़ी विकट समस्या थी। जब अर्ज्जुन ही न रहेंगे तब सारा किस्सा हो तमाम हो जायगा। किया कराया सब मिट्टीमें मिल जायगा। अस्तु, अर्ज्जुनकी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये कोई तदबीर अवश्य होनी चाहिये। इसके लिये यदि अपनी प्रतिज्ञा तोड़ कर युद्ध करना पड़े तो भी श्रीकृष्ण उसके लिये प्रस्तुत थे। उन्होंने अपने सारथीको बुलाकर कहा,—"सम्भव है, कल मुझे भी युद्ध करना पड़े। रथ तैयार रखना। जिन जिन हथियारोंका मैं व्यवहार करता हूँ, उन्हें भी सजाकर रथमें रख देना और तुम स्वयं भी कवच पहन कर तैयार रहना। जिस समय आवश्यता होगी, मैं शंख बजाऊँगा। उस समय तुरन्त रथ लेकर मेरे पास पहुँच जाना।"

श्रीकृष्णके चले जानेपर अर्ज्जुन अपने विश्रामागारमें जाकर विश्राम करने लगे और अपनी की हुई प्रतिज्ञाको पूरी करनेकी तदबीर सोचने लगे। इतनेमें उनकी आँख लग गई। उन्होंने स्वप्न*में देखा, कि श्रीकृष्ण उनके सामने खड़े हैं। अर्ज्जुनने उठकर बड़े सम्मानसे उनको उचित आसन देकर बैठाया और स्वयं उनके निकट खड़े रहे। कृष्णने कहा,—"हे पार्थ! काल बड़ा ही दुर्ज्जय है। समस्त भूतोंको वही अवश्यम्भावी विषयोंकी ओर ले जाता है। इसलिये जो बात बीत गई है, उसके लिये तुम्हें शोक न करना चाहिये।"

* विद्वानोंके मतानुसार यह स्वप्न-वृतान्त कविको कल्पना मात्र है।

अर्ज्जुनने कहा,—"मैंने जो कठिन प्रतिज्ञा की है, वह कैसे पूरी होगी? कौरवगण कल जयद्रथको बचाकर मुझे प्रतिज्ञा-भ्रष्ट करनेके लिये अवश्य ही प्राणपणसे चेष्टा करेंगे। यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सकूंगा तो अवश्य ही मुझे प्राण-विसर्ज्जन करना पड़ेगा। बस, मुझे इसी बातकी चिन्ता है।"

श्रीकृष्णने कहा,—"चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है। देवादिदेव महादेवने तुम्हें जो अस्त्र प्रदान किया था, उसका प्रयोग यदि तुम्हें याद हो, तो वही तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी करानेके लिये यथेष्ट है और यदि याद नहीं है, तो एकाग्र चित्त होकर महादेवको स्मरण करो। तुम उनके परम भक्त हो। वे अवश्य ही तुम्हें वह दिव्यास्त्र प्रदान करेंगे, जिससे तुम अनायास ही जयद्रथको निहत कर सकोगे।"

श्रीकृष्णके उपदेशानुसार अर्ज्जुनने एकाग्रचित्त होकर महादेवका स्मरण किया। उस समय उन्हें मालूम होने लगा, कि वे श्रीकृष्णके साथ हिमालय पहाड़की ओर उड़े जा रहे हैं। इस तरह कुछ देरतक उड़ते रहनेके बाद, इन लोगोंने हिमालयकी एक ऊँची चोटीपर पहुँचकर देखा, कि स्वयं महादेवजी वहां बैठे तपस्या कर रहे हैं। उन्हें देखकर कृष्ण और अर्ज्जुनने दण्डवत प्रणाम किया। महादेव भी इन्हें देखकर बड़े प्रसन्न हुए और आदरसे 'बैठाकर आनेका, कारण पूछने लगे। श्रीकृष्ण और अर्ज्जुनने महादेवकी स्तुतिकर अपना अभिप्राय कह सुनाया। महादेवजीने प्रसन्न होकर कहा—"यहाँसे निकट ही एक अमृत
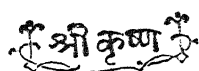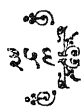
सरोवर है। वहां मैंने अपना धनुष और वाण रख दिया है। जाकर ले लो। उसीके द्वारा अर्ज्जुनकी प्रतिज्ञा पूरी होगी।"

इसके वाद श्रीकृष्ण और अर्ज्जुन वह दिव्य सराशन लेकर महादेवजीके पास गये और उनके चरणोंमें प्रणाम कर अपने स्थानपर लौट आये।

प्रात:काल नित्य क्रियाके पश्चात्, राजा युधिष्ठिरने अपने सामन्तों और सरदारोंको बुलाकर आजका कार्य्यक्रम निर्द्धारित कर लिया। इसी समय अर्ज्जुनने युधिष्ठिर आदिको रातका स्वप्न-वृत्तान्त सुनाया। अद्भुत स्वप्नकी बात सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य्य हुआ।

इसके उपरान्त दोनों सेना युद्धके लिये प्रस्तुत होकर मैदानमें आकर डट गई। कौरवोंने जयद्रथकी रक्षाका यथोचित प्रबन्ध कर लिया था। द्रोणने कतिपय महारथियोंकी संरक्षतामें उसे अपनी महती सेनाके पीछे—समरभूमिसे छ कोस दूर रखवा दिया। युद्ध आरम्भ हुआ। रोषाविष्ट अर्ज्जुन अपने सुतीक्ष्ण वाणोंसे शत्रुओंका संहार करने लगे। शत्रुपक्ष भी जयद्रथको वचानेके लिये बड़ी तत्परतासे अर्ज्जुनको निवारण करने लगा। इसी समय द्रोणने अपना रथ अर्ज्जुनके सामने लाकर हँसते हुए कहा,—"पार्थ, जबतक मुझे परास्त न कर लोगे, तबतक जयद्रथको नहीं पा सकोगे।" यह कहकर वे अर्ज्जुनपर वाणोंकी वर्षा करने लगे। अर्ज्जुन भी अपनी रक्षा करते हुए उन्हें यथोचित उत्तर प्रदान करने लगे।

गुरु शिष्यका यह भीषण युद्ध बड़ी देरतक जारी रहा। परन्तु कोई एक दूसरेको नीचा न दिखा सका। इधर ज्यों ज्यों समय बीता जाता था, त्यों त्यों श्रीकृष्णकी उत्सुकता बढ़ती जाती थी। उन्होंने अर्ज्जुनसे कहा,—"द्रोणको जीतकर जयद्रथपर आक्रमण करना सहज नहीं है। इन्हें यहीं छोड़कर कौरव-सेनाकी ओर बढ़ना चाहिये।" अर्ज्जुनने कहा,—"जैसी तुम्हारी इच्छा हो, करो।"

यह सुनकर श्रीकृष्णने रथ आगे बढ़ाया और बड़े बड़े वीरोंसे लोहा लेते हुए अग्रसर होने लगे। आज अर्ज्जुनके सामने कोई वीर ठहरनेका साहस नहीं कर सकता था। इधर दिन भी ढल चला; सन्ध्या समीप आ गई! रथके घोड़े क्लान्त हो गये थे। एकबार उन्हें जल पिलाना नितान्त आवश्यक हो पड़ा था। श्रीकृष्णने अर्ज्जुनकी सम्मतिसे घोड़ोंको खोल दिया। अर्ज्जुन पैदल युद्ध करने लगे। तबतक कृष्णने घोड़ोंको जल पिला लिया।

घोड़ोंके सुस्ता लेनेपर अर्ज्जुनने फिर रथारोहण किया और घोर संग्राम करते हुए, बड़ी कठिनतासे जयद्रथके सन्निकट जा पहुँचे। यह देखकर कौरवोंको बड़ी आशंका हुई। वे समझ गये, कि अब जयद्रथका निस्तार नहीं है। इधर अर्ज्जुन दूरसे जयद्रथके रथकी पताका देखकर अत्यन्त उत्साहित हो, शत्रु सेनाका ध्वंस करने लगे। कौरव भी प्राणपणसे जयद्रथकी रक्षा करने लगे। अब सूर्य्यास्त होनेमें बहुत थोड़ा समय बाकी

जयद्रथका सिर उसके धड़से अलग होकर सुदूर समन्त तीर्थमें सन्ध्या करते हुए उसके पिताकी गोदमें जा गिरा

(देखिये पृष्ठ संख्या ३६१)

था। यह देख अर्ज्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, अब बहुत थोड़ा समय रह गया है। मेरा रथ शीघ्र जयद्रथके समीप ले चलो और ऐसी तदबीर करो, जिसमें मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो। श्रीकृष्णने रथ आगे बढ़ाया। इधर सूर्य्य अस्ताचल शिखरपर जा पहुँचे। यह देखकर श्रीकृष्ण बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने अपने योगबलसे उस समय सूर्य्यको आच्छादित कर लिया।* शत्रुओंने समझा, कि सूर्य्यास्त हो गया। जयद्रथ भी निःशङ्क चित्तसे सूर्य्यास्त देखने लगा। उसे सिर निकालकर झांकता देख श्रीकृष्णने अर्ज्जुनसे कहा,--देखो, जयद्रथ झांक रहा है। यही उसे मारनेका उपयुक्त अवसर है। शीघ्र उसका मस्तक छेदकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। परन्तु सावधान, उसका सिर यदि भूमिपर गिरेगा तो उसी समय तुम्हारे सिरके सौ टुकड़े हो जायेंगे; क्योंकि उसके पिताको किसी देवताने ऐसा ही वर प्रदान किया है।"

यह सुनकर अर्ज्जुनने इस अन्दाजसे तीर मारा, कि जयद्रथका सिर उसकी धड़से अलग होकर, सुदूर समन्त पञ्चक तीर्थमें सन्ध्या करते हुए उसके पिताकी गोदमें जा गिरा। उसने घबराकर सिरको जमीनपर रख दिया। फलतः देवताके वरदानके कारण उसका मस्तक उसी समय शतधा विभक्त हो गया।

---

* इस बातपर बहुत लोग विश्वास नहीं करते।

इतनी चेष्टा करनेपर भी जयद्रथके प्राणकी रक्षा न कर सकनेके कारण कौरवोंको अत्यन्त दुःख हुआ और उन्होंने अर्ज्जुनसे इसका बदला लेनेके लिये रातको भी लड़ाई जारी रखी। इधर अर्ज्जुनकी कठिन प्रतिज्ञा पूरी हो जानेके कारण पाण्डव अत्यन्त उत्साहसे युद्धमें प्रवृत्त हुए। दोनों ओरसे घोर संग्राम होने लगा। अन्धकारमें लक्ष्य-भ्रष्ट न हों, इसलिये बहुतसी मशालें जला ली गईं।

लाक्षागृहसे निकल कर जिस समय पाण्डव अपनी माता सहित वनोंमें भटकते फिरते थे, उसी समय भीमसेनने हिड़िम्बा नाम्नी एक राक्षसीसे गन्धर्व्व विवाह कर लिया था। उससे घटोत्कच नामक बड़ा बलवान् लड़का पैदा हुआ। महाभारत आरम्भ होनेकी खबर पाकर अन्यान्य लोगोंकी तरह घटोत्कच भी अपनी राक्षसी सेना लेकर पाण्डवोंकी मददपर आया था। जयद्रथके मरनेपर, रातकी लड़ाईमें घटोत्कचने बड़ी वीरता दिखाई और अन्तमें कर्णके हाथोंसे मारा गया। उसकी मृत्युसे

पाण्डव तो बड़े दुःखी हुए, परन्तु श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए। उनकी यह असामयिक प्रसन्नता देखकर अर्ज्जुनको अत्यन्त आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने इसका कारण पूछा तो कृष्णने कहा, कि कर्णने वासवदत्ता नामक एक भीषण 'शक्ति' तुम्हें मारनेके लिये वहुत दिनोंसे रख छोड़ी थी और उसे तुम्हारे ऊपर निक्षेप करनेके लिये प्रतिदिन अवसर ढूँढ़ा करता था। परन्तु आज घटोत्कचकी मारसे घबराकर उसने वह भीषण अस्त्र उसके ऊपर निक्षेप कर दिया। इसलिये अब कर्णसे तुम्हें कोई भय नहीं रहा। यही मेरी प्रसन्नताका कारण है। वह अमोघ अस्त्र था। उसका वार कभी खाली नहीं जाता।

कौरवों और पाण्डवोंका भीषण नैश-संग्राम प्रायः आधी रात तक जारी रहा। सैनिकगण दिन भरके घोर परिश्रम और निद्रासे अत्यन्त कातर होने लगे। यह देखकर अर्ज्जुनने अपनी सेनाको कुछ देर तक विश्राम कर लेनेकी आज्ञा दी। उनकी देखा देखी कौरवोंने भी थोड़ी देरके लिये विश्राम किया। प्रायः सूर्य्योदय होनेपर फिर भीषण मारकाट आरम्भ हुई। महावीर द्रोणाचार्य्य अद्भुत पराक्रम प्रदर्शन पूर्व्वक शत्रु-सेनाका विनाश करने लगे। उनकी तेजःपुञ्ज क्रुद्ध मूर्त्ति देखकर पाण्डवोंकी सेना भयभीत होने लगी। इसलिये श्रीकृष्ण शीघ्र ही उन्हें मार डालनेकी तद्‌बीर सोचने लगे। उन्होंने अर्ज्जुनसे कहा—"हे अर्ज्जुन! महावीर द्रोणाचार्य्यके हाथोंमें जबतक धनुषवाण मौजूद रहेगा, तबतक मनुष्य तो क्या कोई

देवता भी उन्हें परास्त नहीं कर सकता। इसलिये किसी कौशलसे उन्हें मारनेकी चेष्टा करनी चाहिये ; अन्यथा वे समस्त पाण्डव-सेनाका ध्वंस कर डालेंगे। मुझे विश्वास है, कि यदि वे सुनें, कि उनका पुत्र अश्वत्थामा मर गया तो फिर वे युद्ध न करेंगे। अतएव कोई उनके निकट जाकर कहे, कि अश्वत्थामा मर गया।"

परन्तु अर्ज्जुनने आचार्य्यके साथ इस प्रकारका छल करना स्वीकार न किया। अन्तमें यह बात राजा युधिष्ठिरसे कही गई। बहुत कहने सुननेपर, बड़े कष्टसे उन्होंने इसे स्वीकार किया। इसके बाद भीमसेनने अश्वत्थामा नामक एक हाथीको मारकर द्रोणाचार्य्यसे जाकर कहा, कि अश्वत्थामा मर गया। हठात् यह अप्रिय वाक्य सुनकर द्रोण दुःखी तो अवश्य हुए परन्तु उन्होंने भीमसेनके कथनपर विश्वास न किया और पूर्व्ववत युद्ध करते रहे। तब श्रीकृष्णने राजा युधिष्ठिरके पास जाकर कहा, कि आप सत्यवादी हैं, आपकी बातपर आचार्य अवश्य विश्वास करेंगे। आप उनके निकट जाकर कहिये कि अश्वत्थामा मर गया। ऐसे अवसरोंपर झूठ बोलना सत्यसे भी बढ़कर है। अपने जीवनकी रक्षाके लिये, कामिनियोंके निकट, विवाहके सम्बन्धमें और गो-ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये झूठ बोलनेसे कोई पाप नहीं होता।"*

*श्रीकृष्णकी धार्म्मिकता और शान्ति-प्रियता आदि गुणोंका खयाल करनेसे यह विश्वास नहीं होता, कि उन्होंने द्रोणको मारनेके निमित्त

श्रीकृष्ण आदिके बहुत समझानेपर राजा युधिष्ठिरने आचार्य्यके निकट जाकर कहा, कि अश्वत्थामा 'हाथी' मारा गया। अपनेको मिथ्या बोलनेके पातकसे बचानेके लिये उन्होंने 'हाथी' शब्दका प्रयोग तो किया, परन्तु अत्यन्त धीमे स्वरसे! द्रोण उसे सुन न सके। वे राजा युधिष्ठिरको परम सत्यवादी समझते थे, इसलिये उनकी बातपर विश्वास कर लिया और पुत्रशोकसे अत्यन्त कातर हो, धनुष-वाण छोड़कर बैठ गये। इसी समय द्रौपदीका भाई धृष्टद्युम्न उन्हें मार डालनेकी इच्छासे उनके रथके समीप अपना रथ बढ़ा लाया। उसको समीप देखकर द्रोणने अनिच्छा पूर्व्वक धनुष उठा लिया और उससे युद्ध करने लगे।

द्रोणको पुनः युद्धमें प्रवृत देखकर भीमसेनने उनका तिरस्कार करते हुए कहा, कि जिस पुत्रके उपकारके लिये तुम ब्राह्मण होकर भी इस कर्म्ममें प्रवृत्त हुए हो, वह मर चुका है, अब किसके लिये युद्ध कर रहे हो। क्या राजा युधिष्ठिरकी बातपर भी तुम्हें विश्वास नहीं होता?

भीमका तिरस्कार वाक्य सुनकर द्रोणने शरासन परित्याग-

युधिष्ठिर जैसे परम सत्यवादोको भूठ बोलनेकी सलाह दी होगी! इस लिये महाभारतकी यह कथा प्रक्षिप्त मालूम होती है। क्योंकि जिस अध्यायमें उपर्युक्त विवरण दिया गया है, उसीमें यह भी लिखा है, कि द्रोण लड़ाईमें ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कर रहे थे, इसलिये सप्तर्षियोंने आकर उनसे कहा था, कि जो ब्रह्मास्त्रका प्रतिकार नहीं जानते, उनपर उसका प्रयोग नितान्त अनुचित है। तुम्हारे जैसे विद्वानको ऐसा अधर्म्मपूर्ण

कर दिया। इसी समय धृष्टद्युम्नने उनका मस्तक छेदन कर डाला।

दुर्योधनके मुँहसे द्रोणाचार्य्यकी मृत्युका संवाद सुनकर, उनका पुत्र अश्वत्थामा अत्यन्त कुपित हुआ। उसने पाण्डवों-के विनाशार्थ नारायणास्त्र नामक एक ऐसा अद्भुत अस्त्र चलाया जिससे पाण्डवोंकी सारी सेना घबरा उठी। उस अद्भुत अस्त्र-के प्रभावसे पाण्डव सेनापर भीषण आग बरसने लगी। चारों ओर हाहाकार मच गया। उस समय श्रीकृष्णने पाण्डव सेनाकी रक्षा की। असल बात यह थी, कि जो कोई हथियार छोड़कर रथसे उतर जाता था, उसपर उस अस्त्रका प्रभाव नहीं पड़ता था। कृष्णको यह बात मालूम थी। उन्होंने तुर-न्तही समस्त पाण्डव सेनाको, हथियार छोड़कर निवृत हो जानेकी अनुमति दी। उनके आदेशानुसार सारी सेना हथियार रखकर खड़ी हो गई। केवल भीमसेनने हथियार नहीं छोड़ा। अन्तमें श्रीकृष्णने स्वयं उनके निकट जाकर उनका हथियार छीनकर उन्हें रथसे नीचे उतार लिया।

कार्य्य नहीं करना चाहिये। अब तुम्हारे मरनेका समय आ गया है, इस लिये शरासन छोड़ दो। बस, द्रोणके हथियार रख देनेका यही कारण था।

४०
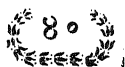
श्रीकृष्णका उपदेश.

महात्मा द्रोणाचार्य्यकी मृत्युके बाद दुर्योधनने अपने प्रधान सहकर्मी वीर कर्णको अपनी सेनाका अधिपति नियुक्त किया। कर्ण अर्ज्जुनके समान योद्धा था। सेनापति होनेपर उसने बड़ी मुस्तैदीसे युद्ध किया। उसकी भीषण मारसे घबराकर पाण्डव सेना मैदान छोड़कर भागने लगी। बड़े बड़े वीरोंके पैर उखड़ गये। यहाँ तक कि एक दिन राजा युधिष्ठिर भी कर्णकी मारसे घबराकर अपने शिविरमें भाग गये। उस समय अर्ज्जुन अन्यत्र युद्ध कर रहे थे। लड़ाईके मैदानमें राजा युधिष्ठिरको उपस्थित न देखकर उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, कि एक वार मेरा रथ शिविरकी ओर ले चलो। बड़े भाईको समर-भूमिमें न देखकर मेरा चित्त चिन्तित हो रहा है। मालूम नहीं, वे क्यों मैदान छोड़कर चले गये हैं। कहीं विशेष घायल तो नहीं हो गये। एकवार मैं उन्हें देखना चाहता हूँ।

श्रीकृष्णने 'तथास्तु' कहकर रथको शिविरकी ओर बढ़ाया।

राजा युधिष्ठिर उस समय विश्राम कर रहे थे और मनही मन कर्णको शीघ्र निपात करनेकी तदबीर सोच रहे थे। हठात् अर्ज्जुन और श्रीकृष्णको उपस्थित देखकर उन्होंने समझा कि शायद कर्णको मारकर ये लोग मुझे सुसम्वाद देने आये हैं। परन्तु जब उन्हें मालूम हुआ, कि कर्ण अभीतक जीवित हैं और ये लोग महज मुझे देखनेके लिये चले आये हैं, तो उनके मनमें सन्देह हुआ, कि शायद मेरी ही तरह अर्ज्जुन भी कर्णके भयसे मैदान छोड़कर भाग आया है। इसलिये वे अर्ज्जुनपर बड़े नाराज हुए और नाना प्रकारसे उनकी भर्त्सना करने लगे। अन्तमें उन्होंने यहांतक कह डाला, कि तुम कर्णसे डरकर भाग आये हो। अब तुम अपना गाण्डीव धनुष श्रीकृष्णको या किसी दूसरे वीरको दे दो। यदि तुम श्रीकृष्णके सारथी होते, तो न जाने कभी, वे समस्त शत्रुओंको मार भगाते। तुम्हारे जैसे कापुरुषको धिक्कार है।"

राजा युधिष्ठिरकी भर्त्सना वाणी सुनकर अर्ज्जुन क्रोधसे आगबबूला हो गये। उन्होंने झट तलवार खींच ली और राजा पर वार करनेके लिये झपटे। अर्ज्जुनकी आकस्मिक उत्तेजना देखकर श्रीकृष्णने अग्रसर होकर उनका हाथ पकड़ लिया और बोले—"इस समय यहां कौन शत्रु बैठा है, जिसे मारनेके लिये तुमने तलवार उठाई है! क्या तुम्हें चित्त-विभ्रम तो नहीं हो गया है।"

अर्ज्जुनने कहा,—"यह मेरा उपांशुव्रत है, कि यदि कोई मेरे
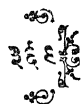
धनुषकी निन्दा करेगा, या यह कहेगा, कि तुम उसे किसी दूसरेको दे डालो तो मैं उसका सिर काट लूंगा। अभी तुम्हारे सामने ही महाराजने गाण्डीव दूसरेको दे डालनेकी बात कही है। इसलिये अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये मैं यह अप्रिय कार्य्य करनेके लिये वाध्य हूँ। हे कृष्ण! तुम संसारकी सब बातें जानते हो, धर्म्मनीतिके पूर्ण ज्ञाता हो, अब तुम्हीं विवेचना करके बताओ, कि मुझे क्या करना चाहिये।"

अर्ज्जुनका कथन सुनकर श्रीकृष्णने उन्हें धिक्कार देते हुए कहा,—"अर्ज्जुन, तुम्हें क्रुद्ध देखकर मालूम होता है, कि तुमने ज्ञानियोंका उपदेश नहीं सुना है। तुम धर्मभीरु हो, परन्तु धर्म्मका प्रकृत तत्व कुछ नहीं जानते। कोई धर्मज्ञ व्यक्ति तुम्हारी तरह उतावला होकर इस तरहके दुष्कर्म्ममें प्रवृत्त नहीं होता। तुम्हारी इस हरकतसे मालूम होता है, कि तुम बड़े मूर्ख हो! तुम्हें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका बिल्कुल ज्ञान नहीं है। धर्म्मरक्षाके लिये प्राणी-वध करनेपर उद्यत हो, इससे मालूम होता है, कि तुम्हें शास्त्र-ज्ञान भी नहीं है। मेरी समझमें तो अहिंसा ही परम धर्म्म है। समय पड़नेपर झूठ बोला जा सकता है, परन्तु प्राणी-हिंसा कदापि नहीं की जा सकती। तुम पिता तुल्य पूज्य, परम ज्ञानी, बड़े भाईकी जान लेनेपर उतारू हो! सज्जन लोग, युद्धमें अप्रवृत्त, शरणागत, विपद्-ग्रस्त और भागते हुए शत्रु पर भी आक्रमण करना पाप समझते हैं और तुम युद्धमें अप्रवृत्त परम पूजनीय बड़े भाईको मारनेके

लिये तैयार हो! तुमने लड़कपनमें अज्ञानतावश, बिना समझे-बूझे जो प्रतिज्ञा कर ली थी, उसकी रक्षाके लिये कितना बड़ा दुष्कर्म करने चले हो! मैंने कुरु पितामह भीष्म, धर्मराज युधिष्ठिर, महात्मा विदुर, यशस्विनी कुन्तीदेवी आदि गुरुजनोंसे जो धर्मोपदेश सुना है, वह तुम्हें सुनाता हूँ। जी लगाकर सुनो।

यह तो सभी जानते हैं, कि सत्य बोलना चाहिये, क्योंकि सत्यसे बढ़कर श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। परन्तु सत्यका तत्व अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। इसमें सन्देह नहीं, कि सदैव सत्यका ही प्रयोग करना चाहिये। परन्तु जहां मिथ्या सत्य स्वरूप और सत्य मिथ्या स्वरूप हो जाता है, वहां मिथ्या बोलना दोषावह नहीं समझा जाता। विवाहमें, रति क्रीड़ाके समय, अपनी जान बचानेके लिये, सर्वस्व हरणके समय और ब्राह्मणकी भलाईके लिये मिथ्या बोलनेमें पाप नहीं होता। जो व्यक्ति सत्यासत्यका मार्ग समझे बिना ही सत्यानुष्ठानके लिये समुद्यत हो जाता है, वह बालक तुल्य है। वास्तविक धर्मज्ञ वही है, जो सत्य और असत्यका यथार्थ निर्णय कर सकता है। इसका एक उदाहरण देता हूँ, सुनो। पूर्व कालमें बलाक नामक एक असूया-शून्य सत्यवादी व्याध था। वह केवल अपने बूढ़े पिता-माता और पुत्र-कलत्र आदि आश्रितोंकी जीविकाके लिये मृगोंका वध किया करता था। एक दिन उसे कोई शिकार न मिला। लाचार होकर लौटने लगा, तो एक नेत्रहीन श्वापद

दिखाई पड़ा। उसने उसी समय वाण चलाकर उसे मार गिराया। उसके मरते ही व्याधके ऊपर देवताओंने फूलोंकी वर्षा की, अप्सरायें नाचने लगीं और आकाशमें देवदुन्दुभी बजने लगी। इसके बाद देवदूत आये, और व्याधको सुन्दर विमान पर चढ़ाकर स्वर्ग ले गये। वात यह थी, कि वह जन्तु पूर्व जन्मके तपके प्रभावसे, अन्धा होनेपर भी अपनी विलक्षण घ्राण-शक्ति द्वारा, प्राणियोंकी आहट पाकर उन्हें मार डालता था। फलतः एक ऐसे अपकारी जीवकी हत्या करनेके कारण व्याध पापके बदले पुण्यका भागी हुआ! इसीसे कहता हूँ, कि वास्तवमें धर्म्मका मार्ग अत्यन्त दुर्ज्ञेय है।

और सुनो, कहीं कौशिक नामक एक तपस्वी ब्राह्मण रहता था। वह बड़ाही सत्यवादी था; सत्य बोलनाही उसका जीवन-व्रत था। एक वार कुछ मनुष्य डाकुओंके भयसे भागते हुए वनमें घुस पड़े। कुछ देरके बाद डाकू भी उनका पीछा करते हुए वहां आ पहुँचे और सत्यवादी ब्राह्मणके पास जाकर पूछने लगे, कि इधर कुछ मनुष्य भागते हुए आये हैं? आपने देखा हो तो कृपाकर सच सच बता दीजिये। ब्राह्मणने सत्यकी रक्षाके लिये भागनेवालोंका पता बतला दिया। डाकुओंने उनपर आक्रमण कर उन्हें मार डाला! अन्तमें इस सत्य कथनके लिये ब्राह्मणको नरकवासी होना पड़ा।

हे धनञ्जय! धर्माधर्मका तत्व निर्णय करनेके लिये कितने ही लक्षण निर्दिष्ट हैं, परन्तु कहीं कहीं अनुमान द्वारा भी

नितान्त दुर्बोध धर्म्मका निर्णय करना पड़ता है। बहुत लोग श्रुतियोंको ही धर्म्मका प्रमाण मानते हैं। मैं उसे दोषावह नहीं समझता। परन्तु श्रुतियोंमें धर्म्मके सम्पूर्ण तत्वोंका निर्णय नहीं है, इसलिये कहीं कहीं अनुमानका भी आश्रय लेना पड़ता है। प्राणियोंकी उत्पत्तिके लिये ही धर्म्मका निर्द्देश किया गया है। अहिंसायुक्त कार्य्य करना ही धर्म्मानुष्ठान करना हैं। हिंसकोंकी हिंसावृत्तिके निवारणके लिये धर्म्मकी सृष्टि हुई है। वह प्राणियोंको धारण करता है, अर्थात् उनकी रक्षा करता है। इसीलिये उसे (धर्म्म) कहते हैं। फलतः जिसके द्वारा प्राणियोंकी रक्षा हो, वही धर्म्म है। जो दूसरोंके सन्तोष उत्पादनको ही धर्म्म समझकर परदारापहण आदि पाप-कर्म्मोंमें लिप्त हो जाते हैं, उनसे बात करना भी उचित नहीं। यदि कोई किसीको मारडालनेके लिये हमसे उसका पता पूछे तो हमारे लिये मौनावलम्बन ही उचित है और यदि कुछ कहे बिना काम न चलता हो तो झूठ बोलना उचित है। क्योंकि ऐसे अवसरोंपर मिथ्या भी सत्यस्वरूप हो जाता है। धनवान होनेपर पापियोंको धन दान करना उचित नहीं। क्योंकि किसी अधर्मीको धन दान करनेवाले दाताको अधर्म्म करनेका फलभागी होना पड़ता है। हे अर्ज्जुन, अपनी बुद्धिके अनुसार मैंने तुम्हें धर्म्मका तत्व समझा दिया। अब तुम स्वयं विचार कर लो, कि धर्म्मराजको मारना उचित है, वा नहीं।"

महात्मा श्रीकृष्णका धर्म्मोपदेश सुनकर अर्ज्जुनका भ्रम दूर

हो गया और क्रोध भी शान्त हो गया। उन्होंने इसके लिये श्रीकृष्णके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हुए कहा,—"यह तो मैं समझ गया, कि धर्म्मराजको मारना पाप है, मनमें ऐसी इच्छा करनेके कारण भी मैं पापका भागी हूँ। परन्तु तुम जानते हो, कि मेरी यह प्रतिज्ञा बहुत दिनोंकी है। अब तुम कोई ऐसा उपाय बताओ, जिसमें मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा हो और महाराजका प्राण भी बच जाये।"

श्रीकृष्ण कहने लगे,—"कर्णकी मारसे राजा घबरा गये थे, इसलिये क्रोधमें आकर उन्होंने तुम्हें कुछ असंगत बातें कह दीं। उनका अभिप्राय यह था, कि इससे तुम कुपित होकर शीघ्र कर्णको मार डालोगे। वे यह नहीं जानते थे, कि इस बातसे तुम नाराज हो जाओगे। कर्ण पाण्डव-सेनाका विनाश कर रहा है, कौरवगण भी मानों उसे दाँवपर रखकर बाजी जीतनेके लिये अन्तिम प्रयत्न कर रहे हैं। इसलिये इस समय यदि कर्ण मारा जा सके तो सारी कौरव सेना आसानीसे पराजित की जा सकती है। केवल इसीलिये तुम्हें कटुवाक्य सुनाकर राजाने तुम्हें उत्तेजित करनेकी चेष्टा की है। बस, इतनीसी बातके लिये, तुम्हारा उन्हें मार डालनेके लिये तलवार खींच लेना बड़ा ही अनुचित हुआ है। अथच तुमने जो प्रतिज्ञा कर रखी है, उसका पालन होना भी परमावश्यक है, इसलिये अब तुम्हें ऐसी तदबीर बतलाता हूँ, जिससे जीवित रहते हुए भी राजा युधिष्ठिर मृतवत् समझे जा सकते हैं। माननीय पुरुष

इस संसारमें जबतक सम्मान लाभ करते रहते हैं, तभीतक जीवित समझे जाते हैं। अपमानित हो जानेपर वे जीवन-मृतवत् हो जाते। राजा युधिष्ठिरका छोटे बड़े सभी सम्मान करते हैं। इस समय तुम यदि थोड़ासा उन्हें अपमानित कर दो तो, वह उनके लिये मृत्यु तुल्य हो जायेगा। मेरी रायमें तुम उन्हें एक बार 'तुम' कह दो। इसीसे उनका अपमान होगा और अपमानित होकर जीना मर जानेके बराबर होगा। बस, इससे तुम्हारी प्रतिज्ञा भी पूरी हो जायेगी और राजाका प्राण भी बच जायेगा। इसके बाद तुम उनके चरणोंपर गिरकर माफी मांग लेना। मुझे विश्वास है, कि ऐसा करनेसे राजा तुमपर नाराज न होंगे।"

अर्ज्जुनने ऐसा ही किया। राजाके पास जाकर उन्हें खूब कोसना आरम्भ किया। कहा, तुम तो रणस्थलसे आकर यहां बैठे हो, तुम्हें मेरा तिरस्कार करनेका कोई अधिकार नहीं है। भीमसेन वीरता पूर्व्वक लड़ रहे हैं, वे चाहें तो मेरा तिरस्कार कर सकते हैं। तुमने क्षत्रिय होकर भी नितान्त निष्ठुरकी भांति मेरा तिरस्कार किया है। मैं तुम्हारे लिये इस घोर संग्राममें प्रवृत्त हुआ हूँ। मैं यदि सहायता न करता तो शिखण्डी कदापि पितामहको निहत नहीं कर सकता। मैंने तुम्हारे लिये कितने ही महारथियोंका वध किया है। वास्तवमें तुम बड़ेही निष्ठुर हो। तुम्हींने जुआ खेलकर सर्वस्वनाश किया था और अब हमलोगोंकी सहायतासे विजयी बनकर राज्य प्राप्त करना

चाहते हो। मैं तुम्हारे राज्यलाभसे तनिक भी सन्तुष्ट नहीं हूँ। तुम्हारे ही कारण हमलोगोंकी यह दशा हुई है। जुआ खेलनेके समय सहदेवने तुम्हें कितना समझाया था, परन्तु तुमने कुछ ध्यान नहीं दिया। तुम्हारे ही कारण आज कौरवोंका नाश हो रहा है और उनके साथ साथ समस्त आर्य्यावर्त्तके वीर अपना प्राण दे रहे हैं। बस, फिर कभी मुझे इस तरह तिरस्कृत न करना।"

यद्यपि श्रीकृष्णके कहनेसे अर्ज्जुनने राजा युधिष्ठिरका तिरस्कार तो कर दिया, परन्तु इसके लिये उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। पूज्य भाईको इस तरह कटुवाक्य सुनानेके कारण उनका हृदय विषम अनुतापानलसे दग्ध होने लगा। वे अपनेको महा पापी समझने लगे और कुछ देर चुपरहने बाद उन्होंने धीरे-से फिर म्यानसे तलवार निकाली। यह देखकर श्रीकृष्णने पूछा,—"अर्ज्जुन अब फिर तलवार क्यों निकाल रहे हो? अपना अभिप्राय मुझसे साफ साफ कहो। मैं उसके प्रति-कारकी कोई सहज तदबीर बता दूँगा।"

अर्ज्जुनने कहा,—"मैंने बड़े भाईका अपमानकर नितान्त गर्हित कार्य्य किया है। इसलिये आत्मघात द्वारा इस पाप-का प्रायश्चित करना चाहता हूँ।"

श्रीकृष्ण—आत्महत्या करना महा पाप है। साधु पुरुषोंने इस कार्य्यकी बड़ी निन्दा की है। उस समय यदि तलवारसे अपने बड़े भाईका गला काट लेते तो तुम्हारी यह धर्म्मभीरुता

कहां रह जाती? अर्ज्जुन! मैं कह चुका हूँ, कि धर्म्मका तत्व बड़ाही सूक्ष्म और अनवगाह है, सहसा समझमें नहीं आता। यदि तुम आत्महत्या करोगे, तो राजाको मारनेकी अपेक्षा घोर-तर पापके भागी बनोगे। इसलिये अब आत्मश्लाघा आरम्भ करो। क्योंकि आत्मश्लाघा और आत्महत्या, दोनों बराबर ही हैं।"

इसके बाद अर्ज्जुनने अपने मुँह अपनी खूब प्रशंसा की और अन्तमें राजा युधिष्ठिरके सामने प्रतिज्ञा की कि आज कर्ण-को मारे बिना कदापि कवच न उतारूँगा। इसके उपरान्त उनके चरणोंपर गिरकर क्षमा प्रार्थना करते हुए कहने लगे,—"आप कृपाकर मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैंने श्रीकृष्णके आदेशानुसार, पापसे वचनेके लिये आपको कटुवाक्य कहा है। इसलिये आप प्रसन्न होकर मुझे क्षमा करें। मैं अभी जाकर कर्णको मार डालता हूँ। यह कहकर उठकर खड़े हुए।"

इधर राजा युधिष्ठिर अर्ज्जुनके तिरस्कार वाक्योंसे अत्यन्त दुःखी हो रहे थे। उन्होंने कहा,—"हे अर्ज्जुन! वास्तवमें मैं बड़ाही अकर्मण्य, आलसी और भीरु हूँ। मेरे ही कारण यह कुल-क्षय उपस्थित हुआ है। इसलिये तुम फौरन मुझे मार डालो और भीमसेनको राजा बनाकर तुमलोग सुखसे रहो। मैं अभी जंगलका रास्ता लेता हूँ। मुझे राजकाजकी जरूरत नहीं। मैं अब तुम्हारे परुष वाक्य सुनना नहीं चाहता।" यह कहकर वे वनमें चले जानेके लिये उठकर खड़े हो गये।

श्रीकृष्णने किसी तरह समझा बुझाकर अर्ज्जुनको शान्त किया था, तब तक ये महाशय नाराज होकर चले जानेको तय्यार हो गये। यह देखकर उन्होंने राजा युधिष्ठिरसे कहा— "आप बुद्धिमान होकर इस तरह घबरायेंगे तो कैसे काम चलेगा। आप जानते हैं, कि अर्ज्जुनने यह प्रतिज्ञा कर ली है, कि यदि कोई उससे कहेगा, कि अपना गाण्डीव धनुष दूसरेको दे दो तो वह उसे मार डालेगा। इसलिये आपने जब उसे धनुष दूसरेको दे देनेकी बात कही तो वह आपको मारनेपर उतारू हो गया। इसपर मैंने उसे समझा-बुझाकर कहा, कि तुम राजाका तिरस्कार करो। क्योंकि तिरस्कार वधसे भी बढ़कर है। फलतः अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये तथा पाप-भागी होनेसे बचनेके लिये, मेरी सलाहसे उसने आपको कटुवाक्य कहे हैं। इसपर आपको नाराज न होना चाहिये। सच पूछिये तो अर्ज्जुनकी अपेक्षा मैं स्वयं इसके लिये अधिक दोषी हूँ। क्योंकि मैंने ही उसे ऐसा परामर्श दिया है। अतः आप कृपाकर अर्ज्जुनके साथ-साथ मुझे भी क्षमा कीजिये।"

श्रीकृष्णके बहुत समझानेपर राजा युधिष्ठिर शान्त हुए। परन्तु अर्ज्जुनके हृदयको शान्ति नहीं मिली। उन्होंने राजा युधिष्ठिरका जो अपमान किया था, उसके लिये मनही-मन अत्यन्त दुःखी हो रहे थे। इसलिये श्रीकृष्ण फिर उनको समझाने लगे। उन्होंने कहा,—"अर्ज्जुन! अब अनुताप छोड़ो। तुमने राजाको कुछ कटुवाक्य कहा है, उसके लिये इतने दुःखी हुए हो और यदि

कहीं क्रोधमें आकर उन्हें मार डालते तो न जाने तुम्हारी क्या दशा होती? इसीसे कहता हूँ, कि धर्म्मका मर्म समझनेमें कभी जल्दबाजी न करना। अब अनुताप छोड़कर उठो और राजाके चरणोंपर गिरकर क्षमा मांगो। अब यहां बैठकर समय खोना ठीक नहीं। शीघ्र लड़ाईमें चलकर कर्णका विनाश करो।"

इस तरह श्रीकृष्णने राजा युधिष्ठिर और अर्ज्जुनको समझाकर यह विवाद मिटा दिया। अर्ज्जुनने राजाके चरणोंपर गिरकर क्षमा प्रार्थना की। राजाने भी उन्हें क्षमाकर गलेसे लगाया।

४१

कर्ण-वध.

कर्ण सुप्रसिद्ध योद्धा था। महाभारतके वीरोंमें अर्ज्जुन के सिवा कोई उसकी समता करनेवाला न था। श्रीकृष्ण इस बातको अच्छी तरह समझते थे। इसीलिये उन्होंने कर्णको अपने दलमें मिलानेकी बड़ी चेष्टा की थी। परन्तु अटल प्रतिज्ञ कर्णने किसी तरह अपने परम हितैषी मित्र दुर्योधनका साथ छोड़ना स्वीकार न किया। श्रीकृष्ण यह भी जानते थे, कि कौरवोंकी ओर अब केवल कर्ण ही एक श्रेष्ठ योद्धा बच गया हैं। यदि वह शीघ्र मारा जा सके तो युद्ध भी शीघ्र ही समाप्त हो सकता है। इसीलिये कर्णको शीघ्र मारनेके लिये वे अर्ज्जुनको बार-बार उत्साहित करते रहे। जिस दिन उपर्युक्त घटना संघटित हुई, उस दिन कर्णने प्राणपणसे युद्ध कर समस्त पाण्डव सेनाको विचलित कर दिया था। उधर अर्ज्जुन संसप्तकोंसे युद्धकर क्लान्त हो गये थे। शायद इसीलिये श्रीकृष्णने कौशलसे अर्ज्जुनको समर-भूमिसे हटा लिया था, जिसमें कुछ देर सुस्ता लेनेसे उनके शरीरकी

क्लान्ति दूर हो जाये और उधर कर्ण अन्यान्य लोगोंसे लड़कर खूब थक जाये, तब अर्ज्जुन उसे आसानीसे मार सकेंगे।

राजा युधिष्ठिरसे आदेश लेकर श्रीकृष्ण और अर्ज्जुन पुनः संग्राम स्थलमें आकर उपस्थित हुए। अर्ज्जुनको विशेष उत्तेजित करनेके लिये कृष्णने उन्हें खूब बढ़ावा दिया, उनके भुजविक्रम-की खूब प्रशंसा की। उसके साथ ही कर्णकी कुटिलता, द्रौपदी-का अपमान, और अभिमन्युके वधकी याद दिलाना भी न भूले। साथ ही अर्ज्जुनको खूब सावधानीसे काम कर लेनेकी सलाह देकर यह भी कह दिया, कि कर्णको मामूली योद्धा न समझना। वह युद्ध विद्यामें निपुण, महाबलवान, देशकालका ज्ञाता और कार्य्य कुशल है। तुमसे किसी तरह कम नहीं है, इसलिये खूब सावधानीसे उसके साथ युद्ध करना। इस समय तुम्हारे सिवा कोई उसका मुकाबला नहीं कर सकता। इसलिये दृढ़ता पूर्वक उससे युद्धकर उसके विनाशकी चेष्टा करो। इस समय उसी-के मरने और जीनेपर इस युद्धका जय पराजय निर्भर है।

अर्ज्जुनने कहा,—"हे कृष्ण, जब तुम हमारे सहायक हो तो निश्चय ही हमारी विजय होगी। मेरा रथ कर्णके सम्मुख ले चलो। आज या तो मैं उसे मारूँगा या वही मुझे मारेगा। आज मेरा और कर्णका अद्वितीय संग्राम होगा और जबतक पृथिवी मौजूद रहेगी तबतक उसकी चर्चा होगी। शीघ्र रथ आगे बढ़ाओ।"

कर्ण और अर्ज्जुनका घोर संग्राम आरम्भ हुआ। वास्तवमें

M.L. Sharma
1982

ऐसा संग्राम महाभारतमें दूसरा नहीं हुआ था। दोनों वीर एक दूसरेको मारनेकी प्राणपणसे चेष्टा करने लगे। दोनों ओरसे सुतीक्ष्ण वाणोंकी वर्षा होने लगी। महारथीगण इन दोनों महावीरोंकी प्रशंसा करने लगे। कर्णने अर्ज्जुन और श्रीकृष्ण-को मारनेकी बार-बार प्रतिज्ञा की थी, वही प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये वह भगीरथ प्रयत्न करने लगा। इधर अर्ज्जुन भी उसे मार डालनेके लिये बार बार अति भीषण अस्त्रोंका प्रयोग करने लगे। यह देखकर कर्णने अर्ज्जुनका मस्तक लक्ष्य कर भीषण नागवाण निक्षेप किया। उस समय श्रीकृष्णने बल पूर्व्वक रथको नीचे दबा दिया। घोड़े घुटनोंके बल बैठ गये। कर्णका वाण अर्ज्जुनका किरीट स्पर्श करता हुआ निकल गया। निशाना खाली गया। इतनेमें कर्णके रथका पहिया पृथिवीमें धँस गया। वह रथसे उतरकर पहिया निका-लनेकी चेष्टा करने लगा और अर्ज्जुनसे कहने लगा, कि थोड़ी देर तक ठहर जाओ। मैं रथका पहिया निकाल लेता हूँ, तो फिर युद्ध करना। तुम रणपण्डित और साधुव्रतावलम्बी हो। मैं इस समय युद्ध-विमुख होकर रथका पहिया निकाल रहा हूँ। इस समय मुझपर वाण चलाना नितान्त अन्याय, कापुरु-षता और अधर्म्म है। जरासा ठहरो। मैं रथका उद्धार कर लूँ तो इच्छानुसार युद्ध कर सकते हो।"

यह सुनकर कृष्णने कहा,—"बड़े सौभाग्यकी बात है, कि इस समय तुम्हें धर्म्म याद आ रहा है। नीचाशय व्यक्तियोंको

संकट उपस्थित होनेपर ही धर्म्मकी सूझती है। जिस समय तुम्हारे मतानुसार दुःसाशन, दुर्योधन और शकुनी भरी सभामें द्रोपदीको घसीट लाये थे, उस समय तुम्हारा धर्म्म ज्ञान कहां चला गया था! जिस समय तुम्हारी सम्मतिसे शकुनी महाराज युधिष्ठिरके साथ जुएमें छलकर उन्हें हरा रहा था और तुम वहां बैठे हुए प्रसन्नता पूर्व्वक तमाशा देख रहे थे, उस समय यह धर्म्म बुद्धि कहाँ थी! जिस समय तुम्हारी सलाहसे दुर्योधनने भीमसेनको जहर दे दिया था, उस समय तुम्हें धर्म्मकी याद क्यों नहीं आई? कर्ण! तुमने कौरव-सभामें द्रौपदीका उपहास करते हुए कहा था, कि पाण्डव विनष्ट होकर साक्षात नरक भोग रहे हैं, अब तू कोई दूसरा पति कर ले। क्या यह धार्म्मिक व्यक्तिके मुँहसे निकली हुई बात थी? जिस समय तुमने सात महारथियोंके साथ बालक अभिमन्युपर आक्रमण किया था, क्या उस समय एक वार धर्म्मका ख़याल कर लेना उचित न था? कर्ण, तुम तो बार-बार अधर्म्मानुष्ठान करते आये हो, अब व्यर्थ धर्म्म धर्म्म चिल्लाकर गला क्यों फाड़ते हो? अब धर्म्मकी दुहाई देनेसे तुम्हारा प्राण नहीं बचेगा! अब पाण्डवोंकी बारी आई है; वे कौरवोंका नाश कर अपना राज्य प्राप्त करेंगे।"

श्रीकृष्णका कथन सुनकर कर्णने लज्जासे सिर नीचा कर लिया। उसके मुँहसे कोई बात न निकली। उसने पहिया छोड़कर धनुष उठा लिया और क्रुद्ध भुजङ्गकी भांति अर्ज्जुनपर

अनवरत वाण वृष्टि करने लगा। इधर श्रीकृष्णने अर्ज्जुनको ललकार कर कहा,—"अब विलम्ब न करो। कर्णके रथारोहण करनेसे पहले ही उसे यमालय भेजो।"

श्रीकृष्णके आदेशानुसार अर्ज्जुनने उसी क्षण वाण मारकर कर्णका काम तमाम कर डाला। यह देखकर समस्त कौरव दलमें हाहाकार मच गया। सेना तितर-बितर होकर भाग खड़ी हुई।

४२
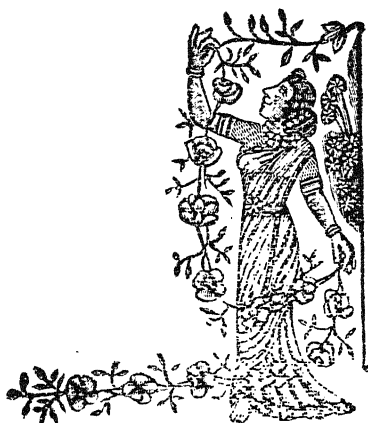
दुर्योधनको कर्णकी वीरतापर बड़ा विश्वास था। वह समझता था, कि भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य्यके न रहनेपर भी कर्ण अकेला ही पाण्डवोंको परास्त कर सकेगा। इसी लिये उसने मद्रराज शल्यको कर्णका सारथ्य स्वीकार करनेके लिये अनेक अनुरोध उपरोध किया था। उसे विश्वास था, कि जिस तरह श्रीकृष्ण अर्ज्जुनके सारथी हैं, उसी तरह यदि शल्य कर्णका सारथी होगा, तो पाण्डवोंको विशेषतः अर्ज्जुनको परास्त करनेमें बड़ी सुगमता होगी। परन्तु उसका मनोरथ सफल न हुआ। इसलिये कर्णकी मृत्युसे वह अत्यन्त हताश हो गया। अब उसे विजयकी कोई आशा न रही। परन्तु समर-विमुख होना, क्षत्रिय धर्म्म और अपनी शानके खिलाफ समझकर उसने शल्यको सेनापति बनाकर बची-खुची सेनाके साथ फिर संग्राम आरम्भ कर दिया। इधर विजयी पाण्डव नवीन उत्साहसे लड़ने लगे। कर्णके सामनेसे भागकर राजा युधिष्ठिरने जो कलंक अर्ज्जितकर लिया था, उसके मोचनार्थ श्रीकृष्णने उन्हींको लाकर शल्यसे भिड़ा

दिया। फिर भयङ्कर मारकाट आरम्भ हुई। परन्तु हतोत्साह और क्लान्त कौरव सेना अधिक देर तक मोरचेपर ठहर न सकी। राजा शल्य युधिष्ठिरके हाथों निहत हुआ। कौरवोंकी अवशिष्ट सेना भी खेत रही। केवल चार मनुष्य बच गये! महाभारतका प्रायः अन्त हो गया! दुर्योधन मैदान छोड़कर एक तालाबमें जा छिपा। वह जलस्थम्भन विद्या जानता था।

युद्ध समाप्त हुआ। रक्त-रञ्जित विजय लक्ष्मी पाण्डवोंके हाथ आई। परन्तु झगड़ेका मूल कारण दुर्योधन अभी जीवित था। राजा युधिष्ठिरने उसे ढूँढ़नेके लिये कितने ही जासूस छोड़े। इतनेमें भीमसेनके अनुचरोंने खबर दी, कि वह वैशम्पायन ह्रदमें छिपा है। यह सुनकर श्रीकृष्ण पाण्डवोंके साथ तुरन्त उस ह्रदके किनारे पहुँचे। राजा युधिष्ठिर बार बार दुर्योधन-को ललकारने लगे। दुर्योधनने कहा,—"मैं अकेला हूँ। मेरे पास रथ नहीं है। गदाके सिवा कोई हथियार भी नहीं है। ऐसी अवस्थामें मैं तुमलोगोंके साथ युद्ध कैसे कर सकता हूँ?"

वास्तवमें राजा युधिष्ठिर स्थूल बुद्धिके मनुष्य थे। कोई बात मुँहसे निकालनेके समय वे पूर्वापरका विचार नहीं कर सकते थे। उन्होंने दुर्योधनसे कहा, कि हम पाँच भाइयोंमेंसे जिसके साथ तुम्हारी इच्छा हो युद्ध कर सकते हो। दूसरा हथियार नहीं है, तो गदाही सही। हमारी ओरसे जो लड़ेगा, वह भी गदा ही लेकर लड़ेगा। इसके सिवा यदि हममेंसे किसी एकको तुम परास्त कर सकोगे तो मैं समस्त राज्य छोड़ दूँगा।

राजा युधिष्ठिरकी यह निर्बुद्धिता देखकर श्रीकृष्ण बड़े नाराज हुए। क्योंकि गदा-युद्धमें भीमसेनके सिवा दूसरा कोई ऐसा न था जो दुर्योधनके सामने ठहर सकता। यदि वह अपनी इच्छानुसार भीमको छोड़कर किसी दूसरेको लड़नेके लिये चुन लेता तो निश्चय ही इनलोगोंकी हार हो जाती और किया कराया सब मिट्टीमें मिल जाता। इसलिये श्रीकृष्णने राजा युधिष्ठिरको भर्त्सना करते हुए कहा—"महाराज, आप किस साहससे दुर्योधनको कह रहे हैं, कि जिससे चाहो लड़-कर राज्य प्राप्त कर लो। यदि वह आपको या अर्ज्जुनको युद्धके लिये चुन ले तो आपलोगोंकी क्या दशा होगी? भीम-सेनके सिवा और किसमें शक्ति है जो दुर्योधनके सामने गदायुद्धमें ठहर सके। भीमने बहुत दिनोंतक गदायुद्धका अभ्यास किया है, तथापि वे पूर्ण रूपसे दुर्योधनका मुकाबिला कर सकते हैं या नहीं, इसमें सन्देह है। मुझे तो मालूम होता है, कि शकुनीके साथ जुआ खेलनेको तैयार होकर जो दशा आपकी हुई थी, वही फिर होनेवाली है। उस समय भी आपने क्षमता न रहते हुए जुआ खेलना स्वीकार कर लिया था। मालूम होता है, कि राजा पाण्डुके लड़कोंके भाग्यमें राज्य-सुख नहीं बदा है। नहीं तो बार बार आप इस तरहकी भूलें न करते!"

श्रीकृष्णका कथन सुनकर भीमसेनने कहा,—"तुम कोई चिन्ता न करो। मैं ही दुर्योधनके साथ गदायुद्ध करूँगा और अवश्य ही उसे परास्त करूँगा। मेरे सामने वह कदापि नहीं

ठहर सकेगा। आज अपनी गदाके आघातोंसे उसे धराशायी कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा।"

यह कहकर भीमसेन बारंबार दुर्योधनको ललकारने लगे। दुर्योधनने तालाबसे बाहर निकलकर कहा,—"अधिक बातें बनानेकी जरूरत नहीं। जिसकी इच्छा हो आवे। आज जो सामने आयेगा उसीको शमन-सदनका रास्ता दिखा दूँगा।"

भीम और दुर्योधनका युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों वीर पैंतरे बदल बदलकर अपना अपना रण कौशल दिखाने लगे। श्रीकृष्ण सहित अन्यान्य लोग अन्यत्र बैठकर यह युद्ध देखने लगे।

जिस समय दुर्योधन और भीमसेन लड़ रहे थे, उसी समय बलराम भी आ पहुँचे। महाभारत आरम्भ होनेसे पहले ही वे तीर्थयात्रा करनेके लिये चले गये थे। दुर्योधन बलरामका शिष्य था। इसलिये वे युद्धमें उसीको सहायता देना चाहते थे। परन्तु जब उन्हें मालूम हो गया, कि श्रीकृष्ण पाण्डवोंके सहायक हैं, तो निरपेक्ष रहना ही उचित समझा और इसीलिये तीर्थ-भ्रमण करने भी चले गये थे।

अपने गुरु बलरामजीको उपस्थित देख दुर्योधन और भी उत्साहित होकर लड़ने लगा। भीम और दुर्योधनका युद्ध देखकर अर्ज्जुनने श्रीकृष्णसे पूछा, इन दोनोंमें कौन अधिक निपुण है? कृष्णने कहा,—"शारीरिक बलमें भीमसेन बढ़े चढ़े हैं, परन्तु रणकौशलमें दुर्योधनकी समता नहीं कर सकते। जो

एकवार लड़ाईके मैदानसे भागकर फिर युद्ध करता है, वह अधिक साहसी कहलाता है। दुर्योधन यदि जीवनकी आशा छोड़कर युद्ध करे तो भीमसेन उसे न्याय युद्धमें कभी पराजित न कर सकेंगे। मुझे तो मालूम होता है, कि दुर्योधन विजयी होकर राजा युधिष्ठिरके कथनानुसार फिर राज्यलाभ करेगा।"

श्रीकृष्णका कथन सुनकर अर्ज्जुनने अपनी बाँई जाँघपर आघातकर भीमसेनको इशारा किया, कि दुर्योधनकी जाँघमें आघात करो। यद्यपि कमरसे नीचे वार करना गदा युद्धके नियमोंके विरुद्ध था, परन्तु भीमने यह प्रतिज्ञा की थी, कि जिस जाँघको दिखाकर दुर्योधनने द्रौपदीका अपमान किया था, उसे अपनी गदासे अवश्य तोड़ूँगा। इसीलिये अर्ज्जुनका इशारा पाते ही, अपनी पूर्व्व प्रतिज्ञाका स्मरणकर, उन्होंने दुर्यो-धनकी जांघमें गदाका प्रहार किया, जिससे वह भूमिपर गिर गया।

भीमसेनका यह अन्यायाचरण देखकर बलरामजी बड़े क्रुद्ध हुए और अपना हल लेकर उन्हें मारनेके लिये दौड़ पड़े। परन्तु श्रीकृष्णने आगे बढ़कर उन्हें रोक लिया और बहुत अनुनय विनयकर किसी तरह शान्त किया। बलदेव उसी समय रथा-रोहणकर द्वारका चले गये।

उनके चले जानेपर पाण्डव तथा अन्यान्य लोग भीमसेनकी बहादुरीकी बड़ी प्रशंसा करने लगे और दुर्योधनको नाना प्रका-रके कटु-वाक्य सुनाने लगे। पाण्डवों और पाञ्चालोंके मुखसे

दुर्योधन वध ।

भीमने दुर्योधनको जाँघमें गदाका प्रहार किया, जिससे वह भूमिपर गिर गया ।

दुर्गा प्रेस, कलकत्ता] [देखिये—पृष्ठ संख्या ३८८

भीमसेनकी असंगत प्रशंसा और मृतप्रायः दुर्योधनकी निन्दा सुनकर श्रीकृष्णने कहा,—"दुर्योधनने जो कुछ दुराचार किया था, उसका प्रतिफल उसे मिल गया। इस समय वह मरता है। ऐसी अवस्थामें उसे कटुवाक्य सुनाकर घावपर नमक छिड़कना उचित नहीं।"

इधर दुर्योधनने सारे फसादका मूल कारण श्रीकृष्णको समझ लिया था, इसलिये उनका अयाचित दया-प्रदर्शन उसे अच्छा न लगा। उसने कृष्णको बहुत कुछ बुरा भला कहा और सारा दोष उन्हींके सिर मढ़ने लगा। उसने कहा,—"यदि पाण्डव न्याय युद्ध करते तो कदापि हमें पराजित न कर सकते। तुम बार बार उन्हें अन्याय करनेकी सलाह देते रहे। इसलिये यह भीषण जनक्षय तुम्हारे ही कारण हुआ है। तुम्हारे ही परामर्शसे पाण्डवोंने भीष्म, द्रोण और कर्ण आदिका, अन्याय पूर्व्वक वध किया है।"

कृष्णने कहा,—"मैंने या पाण्डवोंने तुम्हारे साथ कोई अन्याय नहीं किया है। पहले तुम्हींने उन्हें बारबार लाञ्छित और अपमानित किया है। आज उसीका प्रतिफल तुम्हें भोगना पड़ता है।"

दुर्योधनने कहा,—"मुझे उसकी कोई चिन्ता नहीं है। क्योंकि मैं जीवनका सब सुख अच्छी तरह भोग चुका हूँ और अब अपने बन्धु बान्धवोंके साथ स्वर्ग सुख भोगने जा रहा हूँ। युधिष्ठिर आदि मृतकल्प होकर, रक्त-रञ्जित राज्यसुख भोगें।"

इस तर्क वितर्कके बाद दुर्योधनको उसी अवस्थामें छोड़कर श्रीकृष्ण आदि अपने शिविरमें लौट आये।

४३

सान्त्वना.

शिविरमें लौटनेपर अर्ज्जुन और कृष्णके रथपरसे उतरते ही वह भस्मीभूत हो गया। यह अद्भुत व्यापार देखकर लोगोंको अतीव आश्चर्य्य हुआ। अर्ज्जुनके इस अलौकिक काण्डका कारण पूछनेपर श्रीकृष्णने कहा,—"यह रथ तो ब्रह्मास्त्रोंके लगनेके कारण पहले ही जल चुका था। परन्तु अबतक मैं उसपर था, इसी लिये बचा था।*

इसके बाद श्रीकृष्णने राजा युधिष्ठिरको बधाई दी। युधिष्ठिरने उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हुए कहा,—"यह सब तुम्हारी असीम कृपाका फल है। यदि तुम हमलोगोंके सहायक न होते, तो कदापि हमारी जीत न होती। मुझसे महर्षि

---

* इस अलौकिक व्यापारपर बहुत लोग विश्वास नहीं करते। शायद श्रीकृष्णकी ईश्वरता दिखानेके लिये ही कविने यह कल्पना की होगी। परन्तु इसके विपरीत कुछ लोगोंके विचारानुसार ब्रह्मास्त्र द्वारा रथका भस्म होना और योगिराज श्रीकृष्ण द्वारा उसका कुछ काल बचे रहना कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं।

कृष्ण द्वैपायनने पहले ही कहा था, कि जहाँ कृष्ण हैं, वहीं धर्म्म है और जहां धर्म्म है, वहीं विजय-लक्ष्मी भी है। मुझे उनके इस कथनपर अटल विश्वास है। इसलिये इस विजयका समस्त श्रेय तुम्हींको है। परन्तु हे जनार्द्दन! मुझे इस बात-की आशंका हो रही है, कि दुर्योधनकी माता गान्धारी देवी जब सुनेंगी, कि पाण्डवोंने अन्यायसे मेरे पुत्रों और पौत्रोंकी हत्या की है, तो वे अपने सतीत्वके प्रभावसे हमलोगोंको अवश्य ही भस्म कर डालेंगी। वे पतिव्रता और तपस्विनी हैं, सच्ची पति-व्रताओंके लिये संसारमें कुछ भी असम्भव नहीं है। इसलिये मेरी राय हैं, कि एकबार तुम हस्तिनापुर जाकर उन्हें समझा बुझाकर शान्त करो। यह काम तुम्हींसे हो सकता है। तुम्हीं उन्हें शान्त कर सकते हो। तुम हमारे परम हितैषी हो। इसी लिये मैं तुम्हें भेजना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है, कि तुम अपने युक्ति तर्कसे उन्हें शान्त कर सकोगे।"

श्रीकृष्णने उसी समय हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्र और गान्धारीको अभिवादन किया। महर्षि वेदव्यास कृष्णद्वैपायन भी उस समय वहाँ मौजूद थे। श्रीकृष्णने उन्हें भी प्रणाम किया। इसके बाद कौरवोंके विनाशकी बात छेड़कर अत्यन्त दुःख प्रकाश करने लगे। साथही पाण्डवोंकी न्यायनिष्ठाका उल्लेखकर कहने लगे,—झगड़ा रोकनेके लिये आपलोगोंने बहुत प्रयत्न किया। परन्तु होनहार बड़ी प्रवल होती है। राजा युधिष्ठिर उस समय केवल पांच गांव पाकर ही सन्तुष्ट हो जाते। परन्तु

दुर्योधन राजी न हुए। मैंने स्वयं यहाँ आकर कहा था, कि आपलोग पांच गांव पाण्डवोंको प्रदान कर यह झगड़ा मिटा लें, परन्तु कोई फल न हुआ। आप जानते ही हैं, कि पाण्डवोंको इसके लिये कितना कष्ट सहना पड़ा है! लाचार होकर उन्हें युद्धके लिये तय्यार होना पड़ा था। सच पूछिये तो आपही लोगोंके कारण यह कुलक्षय हुआ है। काल और अदृष्टके प्रभावसे उस समय आपलोगोंने मेरा प्रस्ताव स्वीकार न किया। इसलिये मैं आशा करता हूँ, कि परिस्थितिका विचार कर आप पाण्डवोंको क्षमा करेंगे। इस समय कुलकी रक्षा, पिण्डदान और पुत्र कर्त्तव्य आदि पाण्डवोंपर ही निर्भर है। अतएव आप और आर्य्या गान्धारी शोक छोड़कर बीती बातोंको दूर-गुजर करें। बेचारे युधिष्ठिर इसके लिये अत्यन्त दुःखी हैं। वे आपलोगोंकी बड़ी भक्ति करते हैं। लज्जावश आपके सामने नहीं आ सके। आपलोगोंसे क्षमा मांगनेके लिये ही उन्होंने मुझे भेजा है।"

इसके बाद उन्होंने गान्धारीको सम्बोधन कर कहा,—"देवी! आप परम पतिव्रता, साध्वी और आदर्श रमणी हैं। आपने भी तो दुर्योधनको कितना समझाया था, परन्तु भवितव्यताके वशीभूत होनेके कारण उसने एक न सुनी। अब आप धैर्य्य धारण करें। मै जानता हूँ, कि आप इच्छा करते ही चराचरको विदग्ध कर सकती हैं, इसी लिये प्रार्थना करता हूँ कि, पाण्डव निर्दोष और क्षमाके पात्र

हैं। उन्होंने विवश होकर युद्ध किया है। आप उन्हें क्षमा प्रदान करें।"

सौ पुत्रोंकी जननी होकर भी, अदृष्टदोषसे गान्धारी पुत्र-हीना हो गई थी। दारुण शोकानलसे उसका मातृहृदय विदग्ध हो रहा था। आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बह रही थी। श्रीकृष्णकी सान्त्वनावारिने उस प्रज्ज्वलित शोकानलको प्रशमित करनेके बदले और भी उद्दीप्त कर दिया। पुत्रहीना गान्धारी फूट फूटकर रोने लगी और अन्तमें बड़ी चेष्टासे अपने उद्विग्न चित्तको किञ्चित शान्तकर बोली,—"केशव, तुम जो कुछ कहते हो ठीक है। असहनीय शोकके कारण मेरा चित्त विचलित हो रहा था। सद्विचार विलुप्त हो रहे थे। तुम्हारी बातोंसे मुझे कुछ शान्ति प्राप्त हुई है। मैं पाण्डवोंका अनिष्ट चिन्तन नहीं करूँगी। किन्तु राजा, एक तो अन्धे हैं, दूसरे पुत्रहीन हो गये हैं। अब तुम और पाण्डव ही उनके आश्रय हो। इस वृद्धावस्थामें उनके हृदयको जो चोट लगी है, उसकी शान्ति तुम्हीं लोगोंके हाथ है।" यह कहते कहते शोककातरा गान्धारीका हृदय फिर उमड़ आया, गला रुँध गया और आँखोंसे अश्रु-प्रवाह जारी हो गया। श्रीकृष्ण नाना प्रकारकी बातें कहकर उसे समझाने लगे।

इतनेमें त्रिकालदर्शी श्रीकृष्णको खयाल आया, कि कहीं ऐसा न हो कि द्रोणाचार्य्यका पुत्र अश्वत्थामा सोये हुए पाण्डवोंकी हत्याकर डाले। क्योंकि प्रवल प्रतिहिंसाकी आग

उसके हृदयमें जल रही है। अपने पिताकी मृत्युका बदला लेनेके लिये वह अवश्य ही चेष्टा करेगा। यही सोचकर उन्होंने धृतराष्ट्रसे कहा,—"अब आप बीती बातोंको भूलकर शोक परित्याग करें और मुझे जानेकी आज्ञा दें क्योंकि अश्वत्थामा जीवित है और वह अवश्य ही पाण्डवोंको मार डालनेकी चेष्टामें होगा। यह कह वे धृतराष्ट्र और गान्धारीको प्रणामकर उठ खड़े हुए।

राजा धृतराष्ट्रने उन्हें प्रस्थानोद्यत जानकर कहा,—"अच्छा, जाओ। परन्तु शीघ्र ही मेरा संवाद लेना।"

"बहुत अच्छा" कहकर श्रीकृष्णने वहांसे झटपट प्रस्थान किया।

४४

अन्तिम प्रयत्न.

श्रीकृष्णका अनुमान निर्मूल न था। वास्तवमें द्रोणात्मज अश्वत्थामाके हृदयमें प्रतिहिंसाकी भीषण आग धधक रही थी। पाण्डवोंके चले आनेपर उसने दुर्योधनके पास जाकर, उसकी अवस्थापर अत्यन्त खेद प्रकट किया और कहा, कि पापी पाण्डवोंने अन्याय पूर्व्वक मेरे पूज्य पिताका वध किया है और भीमसेनने गदायुद्धके सनातन नियमोंका उल्लंघन कर नृशंसता पूर्व्वक आपका उरुभंग किया है। अतएव मैं शपथ पूर्व्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि आप आज्ञा दें तो आज ही रातमें जाकर पाण्डवोंका संहार कर डालूँ।

यह सुनकर दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसी समय पवित्र जल मंगाकर अश्वत्थामाको सेनापति पदपर अभिषिक्त किया। अश्वत्थामाने कृपाचार्य्य और कृतवर्म्माके साथ रातको पाण्डवोंकी शिविरमें प्रवेश कर बचे खुचे समस्त सैनिकों और महारथियोंको मार डाला। केवल पाँच पाण्डव, श्रीकृष्ण और सात्यकी बच गये। अश्वत्थामाकी दुरभिसंधिकी खबर पाकर श्रीकृष्णने पहले ही इन लोगोंको शिविरसे हटा लिया था।

दूसरे दिन एक पलातक सारथीके मुखसे अश्वत्थामाकी नृशंसताका हाल सुनकर युधिष्ठिर आदि अत्यन्त दुःखित हुए और भीमसेन क्रुद्ध होकर अश्वत्थामाको मारनेके लिये चल पड़े। इसलिये नकुल, सहदेव और अर्ज्जुनको साथ लेकर श्रीकृष्णने भी उनका अनुगमन किया। उनकी इच्छा न थी, कि अब पाण्डवों और अश्वत्थामासे मुठभेड़ हो, क्योंकि अश्वत्थामाके पास उसके पिता द्रोणाचार्य्यका दिया हुआ, एक भयङ्कर ब्रह्मास्त्र मौजूद था। उससे वह अनायास ही पाण्डव-वंशका समूल नाश कर सकता था। इसीलिये श्रीकृष्णने भीमसेनको बहुत समझाया, कि जो कुछ होना था, हो चुका, अब अश्वत्थामाके पीछे पड़नेमें कुछ लाभ नहीं। कहीं क्रोधमें आकर उसने अपना ब्रह्मास्त्र चला दिया तो जो लोग बच गये हैं, वे भी विनष्ट हो जायंगे। ऐसी अवस्थामें उससे रार न करना ही अच्छा है। परन्तु परम हठी भीमसेन यह सदुपदेश क्यों सुनने लगे। उन्हें तो किसी तरह अश्वत्थामाको उसके कर्म्मोंका प्रतिफल प्रदान करनेकी धुन लगी थी।

बड़ी तलाशके बाद भागीरथीके तटपर, व्यासजीके आश्रमके पास अश्वत्थामा मिला। महावीर भीमसेनने उसे देखते ही ललकारकर आक्रमण किया। शत्रुकी ललकार सुनकर अश्वत्थामा भी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और अपना वही भीषण ब्रह्मास्त्र लेकर उनकी ओर दौड़ पड़ा। यद्यपि द्रोणाचार्य्यने ब्रह्मास्त्र प्रदान करनेके समय यह कह दिया था, कि इसका

प्रयोग कभी मत करना। परन्तु उस समय अश्वत्थामाके पास दूसरा कोई हथियार मौजूद न था, इसलिये उसने भीम-सेनपर वही अस्त्र चला दिया। इधर श्रीकृष्णने पहलेसे ही उसके प्रतिकारका उपाय सोच लिया था। उन्होंने अर्ज्जुनसे कहा, कि महात्मा द्रोणाचार्य्यने तुम्हें जो दिव्यास्त्र प्रदान किया था, उसके प्रयोगका समय उपस्थित है। शीघ्रही उसके द्वारा अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रका प्रतिकार करो, नहीं तो वह तुम्हारे वंशका नाश कर डालेगा।

अर्ज्जुन भी तत्क्षणात् अपने दिव्यास्त्रका प्रयोग करनेके लिये तय्यार हुए। दोनों अस्त्रोंके तेजसे दिग्मण्डल उद्भासित हो गया, चारों ओर उल्का पात होने लगे, चराचर व्याकुल होने लगे, आकाश मण्डलमें बार बार भीषण शब्द होने लगे और पृथिवी काँपने लगी। यह अद्भुत व्यापार देखकर व्यासजी सामने आकर खड़े हो गये और कह सुनकर किसी तरह झगड़ेको शान्त किया। अन्तमें अश्वत्थामाने अपना दिव्य मणि पाण्डवोंको देकर उनसे सन्धि कर ली।

अश्वत्थामाको पराजितकर लौटनेपर पाण्डवोंने सुना, कि अन्धराज धृतराष्ट्र, अपने मन्त्री सञ्जय और पुर-महिलाओंके साथ रणक्षेत्रकी ओर जा रहे हैं। इसलिये वे भी उनसे मिलने गये। युधिष्ठिर आदिको पाकर धृतराष्ट्र और भी विलाप करने लगे। इसके बाद उन्होंने राजा युधिष्ठिरको अपने निकट बुलाकर आलिंगन किया और भीमसेनको खोजने लगे।

निन्दा की। इसपर भीमसेन भी आगे बढ़कर अत्यन्त विनीत भावसे गान्धारीके चरणोंपर गिरकर क्षमा प्रार्थना करने लगे।

इसके बाद ये लोग समर-क्षेत्रमें काम आये हुए वीरोंके शवों-को देखते हुए दुर्योधनकी लाशके पास पहुँचे। वहाँ जाकर धृतराष्ट्र और गान्धारीका धैर्य्य जाता रहा। श्रीकृष्णने सान्त्वना देनेकी बड़ी चेष्टा की, परन्तु सब विफल हुआ! उस प्रवल शोक प्रवाहको रोकनेकी शक्ति किसमें थी! उलटे, गान्धारीने श्रीकृष्णको सरोष नेत्रोंसे देखकर कहा,—"हे केशव, हमारे कुलका नाश कराकर अब हमें सान्त्वना क्या देते हो? तुमने जो कुछ किया है, उसका फल तुम्हें शीघ्रही भोगना पड़ेगा। जिस तरह कुरुवंशका ध्वंस हुआ है, उसी तरह एक दिन यदुवंश भी विनाश होगा और जिस तरह आज हमारी कुल-वधुएँ अपने पतियों और पुत्रोंके लिये रो रही हैं, उसी तरह यदुवंशियोंकी स्त्रियाँ भी रोयेंगी।"

श्रीकृष्णने हँसते हुए कहा,—"देवी, आपका कथन यथार्थ है। जिस तरह पारस्परिक कलहने इस वंशका नाश किया है, उसी तरह यदुवंशका भी ध्वंस होगा। आपके बचन मिथ्या न होंगे। अब शोक छोड़कर धीरज धरिये। यह शोकजनक व्यापार केवल मेरेही दोषसे नहीं हुआ है। इसमें आपलोगोंका भी अपराध है। परन्तु जो होना था, वह तो हो गया। अब धैर्य्य धारण कीजिये।"

४५
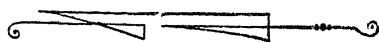
भीष्म और श्रीकृष्ण.

कुरुक्षेत्रका भीषण संग्राम समाप्त हो गया। कौरवों और पाण्डवोंकी अट्ठारह अक्षोहिणी सेनामेंसे केवल दस मनुष्य जीवित रह गये। अवशिष्ट सभी मारे गये। रक्तरंजित राज्य प्राप्तकर युधिष्ठिर संतुष्ट नहीं हुए। विषम ग्लानि, शोक, क्षोभ और पश्चात्तापसे उनका चित्त व्यथित होने लगा। उन्होंने अर्ज्जुन आदिको अपने निकट बुलाकर कहा,—"इतने जाति कुटुम्बियोंकी हत्या द्वारा प्राप्त राज-सुख भोगनेकी मेरी इच्छा नहीं होती। मैं बनमें जाकर अपना अवशिष्ट जीवन शान्तिसे बिताना चाहता हूँ। तुमलोग यहाँ रहकर राजकार्य्य संभालो।"

राजा युधिष्ठिरको विरक्त देखकर अर्ज्जुन बड़े असन्तुष्ट हुए। दोनों भाइयोंमें बड़ी देरतक वादाविवाद होता रहा। अर्ज्जुनके सिवा अन्यान्य गण्यमान्य पुरुषोंने भी युधिष्ठिरको समझाया। परन्तु उन्होंने किसी तरह राजा बनना स्वीकार न किया। अन्तमें श्रीकृष्णकी बारी आई। उन्होंने समझा

बुझाकर किसी तरह राजी किया और बड़ी धूम धामसे हस्तिनापुर जाकर विधि-पूर्व्वक राजा युधिष्ठिरका राज्याभिषेक कराया। राज्य प्राप्त कर युधिष्ठिरने कृष्णके प्रति अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट की और विविध प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे।

शर-शय्यापर पड़े हुए वीरवर भीष्म अभीतक जीवित थे। जिस समम शिखण्डीने उन्हें मार गिराया था, उस समय सूर्य्य दक्षिणायण थे। ऋषियोंने उन्हें परामर्श दिया था, कि सूर्य्यके उत्तरायण होनेपर प्राण विसर्ज्जन करना उचित होगा। इसीलिये वे वाण शय्यापर पड़े पड़े सूर्य्यके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। महात्मा भीष्म असाधारण वीर होनेके अतिरिक्त बड़े भारी विद्वान और देशकाल तथा पात्रके ज्ञाता भी थे। इस-लिये राजसिंहासनपर आरूढ़ होनेपर राजा युधिष्ठिरने, एकवार उनके निकट जाकर, राज्यशासन सम्बन्धीय उपदेश श्रवण करनेकी इच्छा प्रकट की। श्रीकृष्णने प्रसन्नता पूर्व्वक यह प्रस्ताव स्वीकार किया और सदल-बल भीष्मके दर्शनार्थ चले।

समरक्षेत्रमें वाणोंकी शय्यापर पड़े हुए भीष्म सन्ध्या-कालीन सूर्य्यकी भाँति दीख पड़ते थे। इन लोगोंने उनके निकट जाकर प्रणाम किया। इसके बाद श्रीकृष्णने अग्रसर होकर उनकी असीम वीरता और ज्ञानगरिमाकी प्रशंसा करते हुए कहा,—"यद्यपि आप वाणोंकी शय्यापर पड़े हैं, सारा शरीर छिद गया है तथापि अभीतक आप सज्ञान हैं, यह देखकर आश्चर्य्य हो

रहा है। हे पितामह! आपके सदृश धर्म्म, नीति और शास्त्रों-का ज्ञाता दूसरा नहीं है। इसलिये राजा युधिष्ठिर आपसे कुछ सदुपदेश लेना चाहते हैं। ज्ञाति-कुटुम्बियोंकी मृत्युसे उनका चित्त विचलित हो रहा है, राजशासन दुर्वह सा प्रतीत होता है और मन विरक्त हो रहा है। इसलिये आप उन्हें ऐसा उपदेश दीजिये, जिसमें इनके हृदयकी कमजोरी दूर हो और राज-कार्य्यमें मनोनिवेश कर सकें।"

पितामहने कहा,—"हे कृष्ण, तुम विद्वानों और बुद्धिमानोंमें अग्रगण्य हो। ऐसा कौनसा विषय है, जो तुम्हें ज्ञात नहीं? युधिष्ठिरको तुम्हीं सदुपदेश प्रदान कर सकते हो। मैं तो इस समय क्षतविक्षत कलेवर होकर पड़ा हूँ। मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है। वाक्शक्ति विलुप्त हो रही है। इसलिये तुम्हीं उन्हें उपदेश प्रदान करो।"

इसमें सन्देह नहीं, कि श्रीकृष्ण स्वयं राजनीति और धर्म्म-नीतिके पूर्ण ज्ञाता थे और राजा युधिष्ठिरको इन विषयोंका पूर्ण ज्ञान करा सकते थे। परन्तु उन्हें वयोवृद्ध पितामह द्वारा उपदेश दिलाना अभीष्ट था। इसीलिये वे बार बार उनसे आग्रह करने लगे और अपने अलौकिक योग-बलसे उनके शरीर-की समस्त पीड़ा दूर कर बोले,—"आप वयोवृद्ध, शुद्धाचार सम्पन्न और शास्त्रज्ञ हैं। अपरापर सभी धर्म्मोंके आप पूर्ण ज्ञाता हैं। जन्मसे लेकर आज पर्य्यन्त कोई दोष आपमें नहीं देखा गया। सभी राजे-महाराजे आपको सर्व धर्म्मवेत्ता

कहते हैं। राजा युधिष्ठिरके सिवा अन्यान्य नृपति भी आपसे सदुपदेश सुननेको उत्सुक हो रहे हैं। आप पिताकी भांति उपस्थित राजाओंको उपदेश देकर कृतार्थ करें। धर्म्मोपदेश करना विद्वानोंका ही काम है। अतः आप अवश्य ही इन्हें उपदेश प्रदान कीजिये। इससे इन राजाओंके अतिरिक्त समस्त संसारका कल्याण होगा। जबतक यह पृथिवी वर्त्तमान रहेगी, तबतक आपका सुयश भी वर्त्तमान रहेगा। आप राजा युधिष्ठिरको जो कुछ उपदेश करेंगे, वह वेद वाक्योंकी भाँति समादरित होता रहेगा और जो कोई आपके अमूल्य उपदेशोंके अनुसार आचरण करेगा, वह लोक और परलोकमें सुखी होगा।"

यद्यपि पितामह भीष्म मृत्यु-शय्यापर पड़े थे, तथापि श्रीकृष्णका अनुरोध टाल न सके। उन्होंने राजा युधिष्ठिरको अपने निकट बुलाकर शुभाशीष प्रदान किया और जीवनकी अन्तिम घड़ी तक राजनीति, धर्म्मनीति और समाज नीति आदि बहुतसे गहन विषयोंपर व्याख्यान देते रहे! अन्तमें सूर्य्यके उत्तरायण हो जानेपर उन्होंने कहा,—"हे धर्म्मराज युधिष्ठिर! अब मेरी मृत्युका समय सन्निकट है। इन्द्रियां अवश हो रही हैं, ज्ञान शक्ति विलुप्त हो रही है। अब अधिक बोला नहीं जाता। तुम्हें यदि और कुछ पूछना हो तो महात्मा श्रीकृष्णसे पूछो। ये तुम्हारे सभी शङ्काओंका समाधान करेंगे।"

इसके बाद उन्होंने श्रीकृष्णके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए कहा,—"तुम और अर्ज्जुन नरनारायणस्वरूप हो। देवर्षि नारद

और महामति वेद व्यास आदिने तुम्हारी बड़ी प्रशंसा की है। हे कृष्ण! अब मेरे देह त्याग करनेका समय उपस्थित है। अब मुझे स्वच्छन्दापूर्व्वक मरनेकी अनुमति दो।" यह कहकर महामति भीष्मने शरीर परित्याग किया!

महात्मा भीष्मके स्वर्गारोहण करनेपर राजा युधि-युधिष्ठिरको फिर आत्मग्लानि उत्पन्न हुई। कुल-क्षयका मूल कारण अपनेको समझकर वे बार बार पश्चात्ताप करने लगे। उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, कि मैं तो वनमें जाऊगा। राजपाट मुझसे नहीं संभलेगा। मेरे ही कारण यह घोर संग्राम हुआ है। राज्यके लोभमें पड़कर मैंने ही अपने कुलका नाश कराया है। इसलिये अब मैं किसी तरह इस पापका प्रायश्चित करना चाहता हूँ। मुझे अब वनमें चले जानेकी अनुमति दो।

श्रीकृष्णने देखा, कि राजा युधिष्ठिरके मनमें अहंकारने जड़-जमा ली है। इसीलिये ये इस युद्धका मूल कारण अपनेको समझ रहे हैं। अतएव यह अहंभाव इनके हृदयसे दूर कर देना चाहिये। इसी विचारसे वे उन्हें 'कामगीता' का उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा,—"राजन्! आपके मनमें अहंकार है। इसीलिये आप महाभारतका कर्त्ता अपनेको समझ रहे हैं और इसीसे आपका मन बार बार घबरा रहा है। इसलिये विवेक

रूप अस्त्रका प्रयोगकर इस अहंकारको दूर कीजिये। क्योंकि यह एक प्रकारकी मानसिक व्याधि है। जबतक आप तत्वज्ञान-की शरण न लेंगे, तबतक यह व्याधि दूर न होगी। बीती बातोंको याद कर मनको दुःखी करना उचित नहीं। अब पहले आप उन बातोंको भूलकर ईश्वरको याद कीजिये और सुख-दुःख शोक-हर्षको भूलकर अपना कर्त्तव्य पालन कीजिये।

सुनिये, व्याधियाँ दो प्रकारकी होती हैं। एक मानसिक और दूसरी शारीरिक। ये दोनों व्याधियाँ एक दूसरेकी सहा-यतासे उत्पन्न होती हैं। शरीरमें जो व्याधि उत्पन्न होती है, उसे शारीरिक और मनमें जो व्याधि होती है, उसे मानसिक कहते हैं। यह शरीर त्रिगुणात्मक है। वायु, पित्त और कफ, यही तीन इसके गुण हैं। जबतक ये शरीरमें समभावसे अवस्थान करते हैं, तबतक शरीर सुस्थ रहता है और इनमें वैषम्य उत्पन्न होते ही अस्वस्थ हो जाता है। पित्त बढ़ जाता है तो कफकी कमी हो जाती और कफकी वृद्धि होती है तो पित्तका ह्रास हो जाता है। शरीरकी ही तरह आत्मामें भी रज, तम और सत्व, तीन गुण होते हैं और एककी वृद्धि होतेही दूसरे-का ह्रास हो जाता है। हर्ष उपस्थित होता है, तो शोक तिरो-हित हो जाता है और शोक उपस्थित होता है, तो हर्ष विलुप्त हो जाता है। इस समय अहंकारके साथ आपको भीषण संग्राम करना पड़ेगा। योग तथा तदुपयोगी साधनोंका अव-लम्बन करनेसे ही आप इस संग्राममें विजय प्राप्त कर सकेंगे।

इस युद्धके लिये हथियार आदिकी आवश्यकता नहीं। केवल मनकी सहायतासे ही इस समरमें प्रवृत्त हुआ जा सकता है। यदि आप इस युद्धमें विजयी न होंगे तो दुःखोंका कहीं ठिकाना ही न रहेगा। इसलिये शीघ्र अहंकारको जीतनेकी चेष्टामें लग जाइये।

केवल राज्य परित्यागकर वनमें चले जानेसे सिद्धि नहीं मिल जायगी और न इन्द्रियोंको जीत लेनेसे ही कुछ होगा। जो संसारका त्याग कर देनेपर भी मनही मन विषय-चिन्ता किया करते हैं, उन्हें धर्म्म और सुख नहीं प्राप्त होता। ममता संसार-की प्राप्ति और निर्म्ममता ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन समझी जाती है। ये दोनों, विरुद्ध धर्म्मावलम्बी विषय अलक्षित रूपसे मनुष्यके मनमें अवस्थान करते हैं और एक दूसरेको जीतनेकी चेष्टा किया करते हैं। जो व्यक्ति ईश्वरकी अविनश्वरताके कारण जीवोंकी अविनश्वरतापर विश्वास करता है, उसे जीवहिंसाका पाप नहीं लगता। जो व्यक्ति समस्त विश्वका आधिपत्य प्राप्त करनेपर भी ममताहीन बना रहता है, वह फिर सांसारिक बन्ध-नोंमें आबद्ध नहीं हो सकता और इसके विपरीत जो वनमें जाकर फल-मूल द्वारा जीविका-निर्व्वाह करनेपर भी विषय-वासनाका त्याग नहीं कर सकता, वह कभी सांसारिक बन्धनों-से विमुक्त नहीं होता। सुतरां इन्द्रियों और विषयोंको ही मायाजाल समझना चाहिये। जो इनकी ममता त्याग सकता है, वह निश्चयही सांसारिक बन्धनोंसे विमुक्त हो

जाता है। काम परतन्त्र मूढ़ व्यक्ति कदापि प्रशंसाके पात्र नहीं होते। कामनाकी उत्पत्ति मनसे होती है, वही समुदय प्रवृत्तियोंका कारण है। जो महापुरुष बहुजन्मोंके अभ्यासके कारण कामनाको अधर्म्म समझते हैं और किसी प्रकारके फलकी आशा न कर दान, जप और तप आदि सदनुष्ठान करते हैं, वे ही कामनाको जीतनेमें कृतकार्य्य हो सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि काम-निग्रह ही यथार्थ धर्म्म और मोक्षका बीज स्वरूप है।

हे महाराज, निर्ममता और योगाभ्यासके विना ममताका त्याग नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति उसे जीतनेके लिये तप, यज्ञ, शास्त्रालोचना और धैर्य्यका आश्रय लेते हैं, उनका वह उपहास करती है। इसीलिये पण्डितोंने उसे अवध्य और सनातन माना है। कामनाको जीतना बड़ा ही कठिन कार्य्य है। इसलिये मेरी राय है, कि आप अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठानकर अपनी कामनाको धर्म्मभावापन्न करनेकी चेष्टा करें। जो लोग मर गये हैं, उनके लिये अनुताप करना वृथा है। आपके अनुतापसे वे जी नहीं उठेंगे। इसलिये यदि आप इस लोकमें सुयश और परलोकमें सुगति प्राप्त करना चाहते हैं तो यज्ञोंका अनुष्ठान कीजिये।"

श्रीकृष्णके इस ज्ञानगर्भित उपदेशका राजा युधिष्ठिरके मनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने समस्त शोक-संताप भूलकर उन्हींके आदेशानुसार राज्यशासन करनेकी प्रतिज्ञा की।

४७
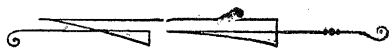
श्रीकृष्णका प्रत्यागमन

धर्म्मराज युधिष्ठिरका धर्म्मराज्य स्थापित हो गया। शान्तिकामी श्रीकृष्णकी, शान्तिमय साम्राज्य स्थापित करनेकी मनोकामना पूर्ण हो गई। आर्य्यावर्त्तकी प्रजा फिर सुख-शान्ति पूर्व्वक निवास करने लगी। वसुन्धरा धनधान्यसे परिपूर्ण हो गयी। अतः अब श्रीकृष्णने द्वारका लौटनेका विचार किया। उन्होंने अपने प्रिय सखा अर्ज्जुनसे कहा,—"मैं बहुत दिनोंसे यहाँ हूँ, अतएव एक-वार द्वारका जाकर बालबच्चोंको देखनेकी इच्छा हो रही है।"

अर्ज्जुनने बड़े कष्टसे यह प्रस्ताव स्वीकार कर कहा,—"हे माधव! द्वारका जानेसे पहले एकबार फिर मुझे कुछ सदुप-देश प्रदान करो। युद्धके समय तुमने जो अमूल्य उपदेश दिया था, उसे मैं बहुत कुछ भूल गया हूँ।"

अर्ज्जुनका यह अप्रत्याशित कथन सुनकर श्रीकृष्ण कुछ असन्तुष्ट हुए। उन्हें कदापि यह विश्वास न था, कि अर्ज्जुन उन अमूल्य उपदेशोंको इतना जल्द भूल जायंगे। उन्होंने अर्ज्जुनकी श्रद्धाहीनता और उनकी स्मृतिकी न्यूनताकी बड़ी

निन्दा की तथा भर्त्सना करते हुए कहने लगे—"युद्धके समय मैंने योगयुक्त होकर प्रसंगवशात् तुमसे जो कुछ कहा था, उसे भूलकर तुमने अच्छा नहीं किया। इस समय वे सब बातें मुझे स्मरण नहीं हैं। यह कहकर उन्होंने अर्ज्जुनको ब्रह्मज्ञान सम्बन्धीय अपूर्व्व इतिहास सुनाया।※ श्रीकृष्णके मुँहसे ब्रह्मज्ञान सम्बन्धीय विचित्र इतिहास सुनकर अर्ज्जुन अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इसके बाद महाराज युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर श्रीकृष्णने द्वारकापुरीकी यात्रा की। रास्तेमें उतङ्क नामक एक ऋषिसे भेंट हो गई। उन्हें देखकर श्रीकृष्ण रथसे उतर पड़े और बड़ी भक्तिसे उनके चरणोंमें प्रणाम किया। ऋषिको महाभारतका हाल मालूम न था, वे जानते थे, कि श्रीकृष्ण कौरवों और पाण्डवोंमें सन्धि स्थापित कराकर आ रहे हैं। इसलिये वे उनकी बड़ी प्रशंसा करने लगे। परन्तु जब श्रीकृष्णने युद्धका समाचार सुनाया तो असन्तुष्ट हुए और शाप देने लगे!

ऋषिराजको इस तरह क्रुद्ध होते देखकर श्रीकृष्णने कहा,—"भगवन, मैंने सन्धिके लिये बड़ी चेष्टा की थी। परन्तु दुर्भाग्यवश कौरवोंने स्वीकार न किया। अदृष्टको कोई टाल नहीं सकता। पाण्डव तो केवल पांच गांव पाकर ही सन्धि कर लेनेको तय्यार थे, परन्तु कौरव राजी न हुए। यह सब अदृष्टका दोष है। बुद्धि-

※ महाभारतमें इस प्रसंगका नाम 'अनुगीता' और 'ब्रह्मगीता' बताया गया है। परन्तु विद्वानोंके विचारमें यह प्रक्षिप्त है।

विद्या द्वारा अदृष्ट नहीं टाला जा सकता। अतः आप शान्त हों। मुझे शाप देकर अपना तप क्षय न करें।"

इस तरह बहुतसी बातें कहकर कृष्णने उन्हें समझानेकी चेष्टा की। परन्तु उतङ्कजी कब सुननेवाले थे। उनके क्रोधका पारा उत्तरोत्तर चढ़ता ही गया। इसलिये लाचार होकर श्रीकृष्णको उन्हें अपनी ईश्वरी शक्तिका दिग्दर्शन कराना पड़ा। अब मुनिराजकी समझमें आ गया, कि श्रीकृष्ण कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। इनमें दैवीशक्ति भी मौजूद है। इन्हें शाप देनेकी धमकी देकर मैंने नितान्त धृष्टता की है। इसलिये उन्होंने उनसे क्षमा प्रार्थना की। श्रीकृष्णने क्षमाके साथही उन्हें वर प्रदान कर आगेका रास्ता लिया।

यथा समय द्वारका पहुंचकर श्रीकृष्णने अपने पिता वसुदेव, राजा उग्रसेन तथा अन्यान्य गुरुजनोंके चरणोंमें प्रणाम किया और उन लोगोंके पूछनेपर युद्धका विस्तृत विवरण सुनाया। अपने नाती अभिमन्युकी मृत्युका समाचार सुनकर वसुदेवजी अत्यन्त शोकाकुल हुए। अन्तमें श्रीकृष्णने उन्हें समझा बुझाकर शान्त किया।

४८

परीक्षितका जन्म.

कुछ दिनोंके बाद राजा युधिष्ठिरने एक बृहत् अश्वमेध यज्ञ करनेकी तैयारी की। इस विषयमें श्रीकृष्णसे पहले ही परामर्श हो चुका था और उन्होंने राजाके अनुरोध करनेपर इस यज्ञोत्सवमें सम्मिलित होनेका बचन भी दिया था। इसलिये वे यथासमय अपने बन्धुबान्धवों और पुरपरिजनोंके साथ पुनः हस्तिनापुर आये। यज्ञकी तय्यारी बड़ी धूम-धामसे होने लगी।

प्राचीन कालमें आर्य्यावर्त्तके उत्तर प्रदेशमें मरुत नामका कोई राजा रहता था। मरनेके समय उसने अपना विपुल धन हिमालयके किसी निभृत स्थानमें छिपा दिया था। पाण्डवोंको यह बात मालूम थी। उन लोगोंने वही धन लाकर अश्वमेध यज्ञमें खर्च करनेका विचार किया और एक दिन श्रीकृष्ण आदिकी सम्मति लेकर धन लानेकी इच्छासे हिमालयकी ओर प्रस्थान किया। इसी समय मृत अभिमन्युकी विधवा उत्तराने एक मृत पुत्र प्रसव किया। इससे समस्त पाण्डव-परिवारमें

४८

परीक्षितका जन्म.

कुछ दिनोंके बाद राजा युधिष्ठिरने एक बृहत् अश्वमेध यज्ञ करनेकी तैयारी की। इस विषयमें श्रीकृष्णसे पहले ही परामर्श हो चुका था और उन्होंने राजाके अनुरोध करनेपर इस यज्ञोत्सवमें सम्मिलित होनेका बचन भी दिया था। इसलिये वे यथासमय अपने बन्धुबान्धवों और पुरपरिजनोंके साथ पुनः हस्तिनापुर आये। यज्ञकी तय्यारी बड़ी धूमधामसे होने लगी।

प्राचीन कालमें आर्य्यावर्त्तके उत्तर प्रदेशमें मरुत नामका कोई राजा रहता था। मरनेके समय उसने अपना विपुल धन हिमालयके किसी निभृत स्थानमें छिपा दिया था। पाण्डवोंको यह बात मालूम थी। उन लोगोंने वही धन लाकर अश्वमेध यज्ञमें खर्च करनेका विचार किया और एक दिन श्रीकृष्ण आदिकी सम्मति लेकर धन लानेकी इच्छासे हिमालयकी ओर प्रस्थान किया। इसी समय मृत अभिमन्युकी विधवा उत्तराने एक मृत पुत्र प्रसव किया। इससे समस्त पाण्डव-परिवारमें

कुहराम मच गया। यज्ञोत्सवका आनन्द फीका पड़ गया। स्त्री-पुरुष सभी इस दुर्घटनासे अत्यन्त दुखी हो गये। बात यह थी, कि इसी बालकपर पाण्डव वंशकी रक्षा निर्भर थी। यही एक क्षीण आशा थी, जिसने पाण्डवोंको आशान्वित कर रखा था। परन्तु आज अदृष्टने उसपर भी पानी फेर दिया! हाय! अब पितरोंको पिण्डदान देनेवाला भी कोई नहीं रह गया! राजा युधिष्ठिरकी वृद्धा जननी कुन्ती श्रीकृष्णके निकट आकर फूटफूटकर रोने लगी। अभागिनी उत्तरा भी व्याकुल होकर बिलखने लगी। इसी गर्भस्थ शिशुके कारण उसने पतिके साथ सहमरणकी इच्छा न की थी। आज उसका शोक ताजा हो गया। स्त्रियोंका कातर क्रन्दन सुनकर श्रीकृष्ण सान्त्वना देने लगे।

महर्षि वेदव्यास भी वहां मौजूद थे। उन्होंने सोच-विचार कर श्रीकृष्णसे कहा, कि शायद अश्वत्थामाके उस भीषण ब्रह्मास्त्रके प्रभावसे ही उत्तराने मृत शिशु प्रसव किया है। श्रीकृष्णको उनका अनुमान सत्य प्रतीत हुआ। उन्होंने उस सद्य-जात शिशुको देखनेकी इच्छा प्रकट की। कुन्तीदेवीने शिशुको श्रीकृष्णके हाथोंमें देकर कहा,—“वत्स, तुम्हें परमात्माने बड़ी विलक्षण शक्ति दी है। किसी तरह इस बालकको जीवन दान देकर डूबते हुए वंशकी रक्षा करो, नहीं तो संसारसे कुरुवंशका नाम विलुप्त हो जायगा।”

श्रीकृष्णने आचमन आदि कर शिशुको अपने हाथोंमें लेकर

कहा,—"यदि मैंने सच्चे दिलसे धर्म्म और सत्यका पालन किया होगा तो मेरे पुण्यबलसे यह शिशु अवश्य ही पुनर्ज्जीवन लाभ करेगा।" परम सत्यवादी और धर्म्मात्मा श्रीकृष्णका बचन खाली न गया। थोड़ी देरके बाद ही लोगोंने देखा, कि शिशुके हृदयमें इषत् स्पन्दन हो रहा है और उसका श्वास-प्रश्वास चल रहा है। सत्य और धर्म्मकी यह अद्भुत शक्ति देखकर सबको आश्चर्य्य हुआ। पाण्डय परिवारका शोक हर्षमें परिणत हो गया। चारों ओर आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा। इस बालकका नाम 'परीक्षित'* रखा गया।

इसी समय राजा युधिष्ठिर आदि भी मरुत राजाका धन लेकर लौट आये। यज्ञका कार्य्य आरम्भ हुआ। घोड़ा छोड़ा गया। उसकी रक्षाका भार अर्जुनको दिया गया। उसके लिये जहां तहां छोटी मोटी लड़ाइयां भी हुई। अन्तमें समस्त देशका दौरा लगाकर घोड़ा वापस आ गया। यज्ञकार्य्य निर्विघ्न समाप्त हुआ। श्रीकृष्ण द्वारका चले आये और फिर कभी हस्तिना-पुर न गये।

---

* कुछ लोगोंकी रायमें परीक्षितका जन्म-वृत्तान्त कविकी कपोल कल्पना है। परन्तु स्वर्गीय बंकिम बाबूके विचारमें यह कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं। आजकल भी ऐसे बहुतसे बच्चे पैदा होते हैं, जो मृतवत प्रतीत होते हैं और डाक्टर लोग किसी विशेष प्रक्रियासे उन्हें पुनर्ज्जीवित कर देते हैं। श्रीकृष्ण आदर्श पुरुष थे। उनके लिये किसी ऐसी प्रक्रियाका जानना कोई आश्चर्य्यकी बात न थी।

यदु-कुल ध्वंस.

महाभारत आदि ग्रन्थोंसे मालूम होता है, कि द्वारकाके यदुवंशी अत्यन्त उच्छृङ्खल हो गये थे। उनकी विलास-प्रियता सीमा अतिक्रम कर चुकी थी। पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष और कलहकी मात्रा भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। इसके अतिरिक्त शराब बनाने और पीनेमें भी यदुवंशियोंने पराकाष्ठा कर दी थी। श्रीकृष्णचन्द्रके बड़े भ्राता स्वयं श्रीमान् बल्देवजी बड़े भारी पियक्कड़ थे। ये महात्मा दिनरात शराबके नशेमें चूर रहते थे। इनकी देखा-देखी अन्यान्य यदुवंशियोंने भी खुले-खजाने सुरादेवीकी आराधना आरम्भ कर दीथी। वृद्ध राजा उग्रसेनने अपने राज्यमें मुनादी करा दी थी, कि कोई शराब न पिये। शराब बनानेवालोंके लिये भी दण्डाज्ञाका प्रचार करा दिया गया था। परन्तु ये सभी उपाय निष्फल हो गये थे। इतना उद्योग करनेपर भी सुरादेवीका प्रसार उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। यहांतक कि इसी दुर्व्यसनने एक दिन

समस्त यदुकुलका ध्वंस कर डाला! स्वयं श्रीकृष्ण भी इस अनिवार्य्य ध्वंसको निवारण न कर सके।

यदुवंशियोंकी विलास-प्रियता पराकाष्ठाको पहुंच गई! उनके विनाशका समय उपस्थित हो गया। एक दिन नारद, विश्वामित्र और कण्व आदि ऋषि श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये द्वारका आये। उन्हें देखकर, कुछ लोगोंको, शायद नशेके झोंकमें, एक दिल्लगी सूझी। उन्होंने श्रीकृष्णके पुत्र शाम्बको स्त्रियोंकी भांति वस्त्राभूषण पहनाया और ऋषियोंके निकट जाकर कहा, कि यह स्त्री गर्भवती है। आपलोग त्रिकालदर्शी हैं। कृपाकर बताइये, कि यह पुत्र प्रसव करेगी या पुत्री? इसपर ऋषियोंने क्रुद्ध होकर कहा,—"यह एक 'मूसल' प्रसव करेगा और उसीसे तुमलोगोंका सत्यानाश होगा।"

ऋषियोंका कथन भला अन्यथा क्यों होने लगा। शाम्बने दूसरे ही दिन एक बड़ासा लोहेका 'मूसल' प्रसव कर दिया! ❋ यह देखकर लोग बड़े घबराये और उस मूसलको चूर्ण कर समुद्रमें फेकवा दिया! परन्तु इससे क्या होता था। मूसलका चूर्ण जहाँ फेंका गया था वहां 'सरपत' जम गया और उसीमेंका एक टुकड़ा लेकर एक बहेलियेने अपने तीरका फला बना लिया।

❋ आजकल इस अलौकिक, उपन्यासपर कौन विश्वास करेगा। मालूम होता है, किसी रचना कण्डुपीड़ित कविने इसे महाभारतमें ठूंस दिया है।

इस घटनाके बाद बार बार अमङ्गल सूचक दृश्य दिखाई देने लगे। इससे विज्ञोंको बड़ी चिन्ता होने लगी। निश्चय हुआ, कि प्रभास क्षेत्रमें चलकर कुछ दिन धर्मानुष्ठान किया जाय। शायद शुभकर्मों के अनुष्ठानसे अमङ्गल सूचक उत्पातोंका ह्रास हो।

इस परामर्शके अनुसार प्रायः सभी यदुवंशी प्रभासतीर्थ आये। परन्तु यहां आकर भी अपनी विलास-वासना परित्याग न कर सके! द्वारकापुरीसे मद्य, मांस और स्त्री आदि विलास-सामग्रीके साथ प्रभास क्षेत्र आकर नाना प्रकारके आमोद-प्रमोदमें प्रवृत्त हुए।

याद्वोंकी यह दशा देखकर महात्मा उद्धवको बड़ा दुःख हुआ। इसलिये वे श्रीकृष्णकी अनुमति लेकर तपस्या करनेकी इच्छासे बदरिकाश्रम चले गये। इधर याद्वोंने दिल खोलकर आनन्द मनाना आरम्भ कर दिया। दिन रात नाच, तमाशोंमें व्यतीत होने लगे। 'आये थे हरिभजनको ओटन लगे कपास' की कहावत चरितार्थ होने लगी। बलदेव, सात्यकी और कृत-वर्म्मा आदि श्रीकृष्णके सामने ही शराब ढालने लगे। एक दिन सात्यकी उन्मत्त होकर कृतवर्म्माका उपहास करने लगा। धीरे धीरे उपहासने गालीगलौजका रूप धारण किया। यहाँतक, कि अन्तमें मारपीटकी नौबत आ गई। कुछ लोगोंने कृतवर्म्मा-का पक्ष लिया और कुछ लोगोंने सात्यकीका। मारपीट होने लगी। इतनेमें सात्यकीने तलवार लेकर कृतवर्म्माका सिर काट डाला। फिर क्या था, समस्त यदुवंशी दो दलोंमें विभक्त

होकर परस्पर युद्ध करने लगे। श्रीकृष्णने बड़ी चेष्टा की, कि युद्ध न हो, परन्तु शराबके नशेकी झोंकमें कौन किसकी सुनता था। कृतवर्म्माके तरफदारोंने सात्यकीको क्षतविक्षत कर दिया। यह देखकर श्रीकृष्णके पुत्रों और पौत्रोंने भी सात्यकीका पक्ष लिया। अन्धाधुन्ध तलवारें चलने लगीं। देखते देखते शत्रुओंने सात्यकी और श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नको मार डाला। पुत्रकी मृत्युने श्रीकृष्णको भी विचलित कर दिया। फलतः वे भी वही 'सरपत' लेकर मैदानमें उतर पड़े और बातकी बातमें उन्होंने बहुतसे यादवोंको मार डाला!

अन्तमें उनके सारथी दारुक और बभ्रु नामक यादवने उन्हें शान्त किया। इस युद्धका परिणाम यह हुआ, कि एक एक कर सभी यदुवंशी योद्धा मर मिटे! अन्तमें क्रोध शान्त होनेपर श्रीकृष्णने दारुकसे कहा, कि तुम हस्तिनापुर जाकर अर्ज्जुनको बुला लाओ, जिसमें वह आकर स्त्रियोंकी रक्षा करें और बभ्रुसे कहा, कि तुम द्वारका जाकर मेरे पिताजीसे सब हाल कह दो।

दारुकने तो किसी तरह हस्तिनापुरकी राह ली, परन्तु बभ्रुको बीचमें ही शत्रुओंने मार गिराया। इसलिये लाचार होकर श्रीकृष्णने स्वयं द्वारका जाकर अपने पितासे सब हाल कहा और उनको समझा बुझाकर फिर प्रभास लौट आये।

४९
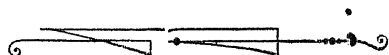
महा प्रस्थान.

यहां आकर श्रीकृष्णने देखा, कि बलदेवजी एक निर्ज्जन स्थानमें समाधि लगाये बैठे हैं और उनके मुखसे एक सहस्त्र फण वाला वृहदाकार नाग निकल कर समुद्र-की ओर आ रहा है। वासुकी, तक्षक और कर्कोटक आदि अन्यान्य बहुतसे नाग उसकी स्तुति और पूजा कर रहे हैं।* निकट आनेपर मालूम हुआ, कि बलदेवजीके शरीरसे जीवात्मा निकल गया है, केवल देह रह गई है!

भाईकी मृत्युसे श्रीकृष्ण अत्यन्त दुखी हुए और इस संसारसे प्रस्थान करनेकी इच्छासे एक निभृत स्थानमें महायोगका अव-

* कतिपय इतिहासकारोंका मत है, कि बलदेवजीके मुंहसे सर्पका निकलकर समुद्रकी ओर जाना एक रूपक है। वास्तवमें उन्होंने नागोंकी सेनाके साथ समुद्रकी यात्रा की थी। इसके प्रमाणमें कहा जाता है, कि ग्रीकोंके इतिहासमें लिखा है, कि जलमार्ग द्वारा, पूर्व्वकी ओरसे हेरेक्का-पडी और हरक्युलस ग्रीस देशमें आये। वह हरक्युलस (हरिकुलेश) बलरामही थे। क्योंकि कृष्णके वंशजोंका नाम हरिवंश और उनके कुलका नाम 'हरिकुल' विख्यात है।

तीर श्रीकृष्णके पैरमें लगा और उनकी महान् आत्मा नश्वर शरीरको
छोड़कर ईश्वरमें मिल गयी।

Durga Press, Calcutta.

(देखिये—पृष्ठ संख्या ४२१

लम्बनकर सो गये। इसी समय जरा नामक व्याध शिकारकी तलाशमें वहां आ पहुंचा और मृगके धोखेमें उसने श्रीकृष्ण पर एक तीर चला दिया। यह वही तीर था, जिसमें शाम्बके प्रसव किये हुए मूसलके टुकड़ेका फल लगा था। तीर श्रीकृष्णके पैरमें लगा और उनकी महान् आत्मा नश्वर शरीरको छोड़कर ईश्वरमें मिल गई !!!

* * * *

दारुकके मुंहसे यादवोंके ध्वंसका संवाद सुनकर राजा युधिष्ठिर आदि अत्यन्त शोकाकुल हुए। अर्ज्जुनने उसी समय रथारोहणकर द्वारकापुरीके लिये प्रस्थान किया। वहाँ पहुंचकर उन्होंने देखा, कि जो पुरी एक दिन देवेन्द्रकी अमरावतीसे भी अधिक शोभामयी थी, वह आज महा श्मशानकी भांति भयावनी प्रतीत होती है।

इसके बाद वसुदेवजीसे मिलकर अर्ज्जुनने सब हाल मालूम किया। पुत्र शोकसे कातर वसुदेव मानों अर्ज्जुनकी प्रतीक्षाके लिये ही जीवित थे। उन्होंने सब घरबार उन्हें सौंपकर शरीर परित्याग कर दिया। अर्ज्जुनने कुछ दिन द्वारकामें रहकर श्रीकृष्ण और बलराम आदिकी प्रेतक्रिया सम्पन्न की। इसके बाद स्त्रियों और बच्चोंको लेकर हस्तिनापुरके लिये रवाना हुए। अर्ज्जुनके चले आनेपर सारी द्वारका समुद्रमें डूब गई !

रास्तेमें पञ्चनद प्रदेशके निकट पहुंचनेपर दस्युओंके एक दलने अर्ज्जुनके दलपर आक्रमण किये और बहुतसा धनरत्न तथा

कतिपय अच्छी अच्छी स्त्रियोंको छीन लिया। अर्ज्जुनके किये कुछ न हुआ और न उनका गाण्डीव ही कुछ कर सका। लाचार होकर बचे खुचे लोगोंको लेकर इन्द्रप्रस्थ आये और श्रीकृष्णके पौत्र बज्रको वहांका राज्यभार सौंपकर हस्तिनापुर चले गये।

कृष्णकी कुछ स्त्रियां तप करनेके लिये वनमें चली गयीं और कुछ चितारोहणकर जलकर भस्म हो गईं। इसके बाद पाण्डव भी अभिमन्युके पुत्र परीक्षितको राजा बनाकर द्रौपदी सहित हिमालयके हिममें जाकर गल गये।

श्रीकृष्ण
[परिशिष्ट]

५०
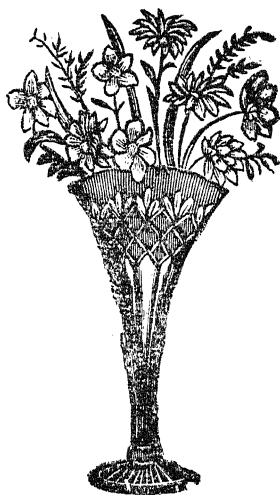
कृष्णावतार.

संसारमें आजतक जितने महापुरुषोंका आविर्भाव हुआ है; उनमें भगवान श्रीकृष्णचन्द्रका आसन सबसे ऊँचा है। श्रीकृष्णने मनुष्यों द्वारा जो सम्मान और श्रद्धा प्राप्त किया है, वह शायद ही किसी देशके किसी नेताने प्राप्त किया हो। इस विशाल भारतवर्षमें इस छोरसे लेकर उस छोरतकके प्रायः सभी हिन्दू श्रीकृष्णको ईश्वरका अवतार मानकर उनकी पूजा करते हैं। इस देशमें बहुत कम ऐसे ग्राम होंगे, जहां श्रीकृष्णका मन्दिर न हो। हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक—समस्त देश श्रीकृष्णके विमल यश-सौरभसे परिव्याप्त है। कितने ही सम्प्रदायवाले उन्हें अपना इष्ट देवता मानत हैं। इसका मुख्य कारण क्या है? क्या सचमुच श्रीकृष्ण ईश्वरके अवतार थे? क्या ईश्वरका मनुष्य रूपमें अवतीर्ण होकर मनुष्योचित कार्य्य करना सम्भव है?

स्वामी विवेकानन्दने अपने एक व्याख्यानमें कहा था, कि मुक्ति तथा परमपद प्राप्त करनेके लिये जिन साधनोंकी आवश्य-

कता होती है, वे सभी वेदोंमें मौजूद हैं। उससे अधिक और कुछ भी उद्भावन नहीं किया जा सकता। देश, काल और पात्र भेदके अनुसार उसी वैदिक लक्ष्यकी ओर मानव जातिको परिचालित करनेके लिये प्रत्येक युगमें महान् नेताओं और महापुरुषोंका आविर्भाव हुआ करता है। गीतामें भगवानने इसी सत्यको स्पष्ट भावसे प्रकट करनेके लिये कहा है:—

> यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
> परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृताम्।
> धर्म्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

यही अवतार वादका मूल तत्व है और यही भारतीयोंका अस्थिमज्जागत विश्वास है। और वस्तुतः जो लोग ईश्वरको इच्छामय और सर्व शक्तिमान स्वीकार करते हैं, उन्हें ईश्वरका मनुष्यरूपमें आविर्भूत होना स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

अनन्त शक्तिशाली जगदीश्वरने मनुष्यको सब प्राणियोंसे श्रेष्ट बनाया है और सदैव उसका मंगलसाधन ही किया करते हैं। जिस तरह पिता पुत्रकी भलाईके लिये सदैव तत्पर रहता है, उसी तरह जगदीश्वर भी मनुष्योंके उत्कर्षसाधनमें यत्नवान रहते हैं। इसीलिये उन्होंने मनुष्यको ज्ञान, बुद्धि, विवेक आदि सद्गुणोंसे विभूषित किया है। मनुष्यका उत्कर्ष साधनकर उसे अपने निकट आकर्षित कर लेना—अपनेमें मिला लेना सृष्टिकर्त्ताका

प्रधान लक्ष्य, सृष्टिका मूलतत्व अथवा क्रमविकाशकी चरम सीमा मालूम होती है। सुतरां भगवानका प्यारा प्राणी मानव जब उनके निर्दिष्ट सनातन वैदिक मार्गको भूलकर विपथगामी हो जाता है, ज्ञान, बुद्धि और विवेकके रहते हुए भी अपनी चित्तकी वृत्तियोंको संयत रखनेमें असमर्थ हो जाता है, तब भगवान स्वयं आदर्श बनकर आविर्भूत होते हैं और अपने महत् मानव चरित्र द्वारा, संसारकी मर्य्यादा और सृष्टिके नियमोंकी रक्षा करते हुए देशकालके अनुसार, दुष्कृतोंका दमन और साधुजनोंका उद्धारकर संसारमें पुनः सनातन धर्ममार्गकी संस्थापना कर जाते हैं। अति संक्षेपमें यही हिन्दुओंके अवतार-वादकी मूलभित्ति है।

ऊपर लिख आये हैं, कि सृष्टिकार्य्य द्वारा मनुष्यको योग्यता लाभ कराना ही सृष्टिकर्त्ताका परमलक्ष्य है। मनुष्य उस योग्यताका लाभ किस तरह कर सकता है, उसीको बताने या दिखानेके लिये भगवानने श्रीकृष्णावतार धारण किया था। योग्य बनो, योग्यता लाभ करो। योग्यता द्वारा ही अमरत्व और श्रेष्ठत्व प्राप्त कर सकोगे। स्वयं भगवान कहते हैं:—

मर्त्यो यथा त्यक्त समस्त कर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदाह मृतत्वं प्रतिमद्यमानो मयानुभूयायच कल्पतेवै॥

जब मनुष्य सब कर्मोंके परित्याग कर मुझमें आत्म समर्पण कर लेता है, मेरा कर्म करनेकी इच्छा करता है, तब वह निश्चय ही अमृत लाभकर मेरे साथ एक हो जानेके योग्य होजाता है। उस योग्यताको प्राप्त करनेका एकमात्र साधन श्रीकृष्णकी

शिक्षासे शिक्षित होना और उनके प्रेममें निमग्न हो जाना है। मनुष्य ही ईश्वरका सानिध्य प्राप्त कर सकता है, केवल नरदेहमें ही उस पद्को प्राप्त करने योग्य उपादान मौजूद हैं, इसीको दिखानेके लिये भगवानने श्रीकृष्णके रूपमें अवतार धारण किया था।

भगवान श्रीकृष्णके चरित्रकी आलोचना करनेवाले देख सकेंगे, कि पूर्ण मनुष्यत्वके विकाशके लिये जिन गुणोंकी आवश्यकता हो सकती है, वे सभी श्रीकृष्णमें मौजूद थे। उनका अनन्त ज्ञानैश्वर्य्या, अनन्त बलवीर्य्या, अनन्त कर्म्मशक्ति और अनन्त प्रेम आदिका मनन कर लेनेपर किसे यह सन्देह रह जायेगा, कि श्रीकृष्ण जीवोंके उद्धारकर्त्ता, मानव जातिको परम पद प्राप्तिका मार्ग बतानेवाले साक्षात ईश्वरके अवतार न थे!

इस पुस्तकके आरम्भमें लिख आये हैं, कि द्वापर युगके अन्तमें भारतवर्ष धार्म्मिक, सामाजिक तथा नैतिक विप्लवोंका केन्द्रस्थान बन गया था। आर्य्या जाति सनातन वैदिक मार्ग भूलकर विपथगामिनी हो रही थी। इसी विषम विप्लवके समय भगवानने श्रीकृष्ण रूपमें अवतीर्ण हो कर इस देशकी रक्षा की थी। बड़े ही प्रतिकूल समयमें समाज-तरणीका कर्णधार बनकर उन्होंने उसे विप्लवकी प्रबल धारामें बह जानेसे बचा लिया था।

संसारमें कितनी ही जातियां बनी और कुछ दिन अपनी चमक दमक दिखाकर कालके अनन्त स्रोतमें बहकर न जाने

किधर चली गईं। परन्तु भारत, उसका सनातन वैदिक धर्म और वैदिक धर्मकी अनुयायिनी हिन्दू जाति, उस अनन्त स्रोतकी उत्ताल तरंगोंके विषम थपेड़ोंसे अपनी रक्षा करती हुई, आज भी संसारके वक्षस्थलपर अचल अटल भावसे खड़ी है। इस अचिन्त्य पूर्व्व अघटन घटनाका कारण क्या है? श्रीकृष्ण और उनकी अमृतमयी शिक्षा! वास्तवमें बड़ी ही शुभ घड़ीमें भगवान श्रीकृष्णका आविर्भाव हुआ था। यदि उनका आविर्भाव न हुआ होता तो कौन कह सकता है, कि पृथिवीके मानचित्रपर 'भारतवर्ष' नामका कोई स्थान होता, या जिस तरह हिमालयका सर्वोच्च शिखर 'गौरीशङ्कर' आज 'मौण्ट एवरेस्ट'के नामसे पुकारा जाता है, उसी तरह इसका भी कोई दूसरा ही कर्णकटु नाम हो गया होता और हिन्दू जातिका उल्लेख भी शायद प्राचीन-ग्रीक, प्राचीन रोम और प्राचीन मिश्र निवासी मृत जातियोंकी सूचीमें ही पाया जा सकता।
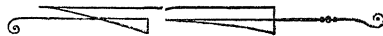
साम्राज्यकी स्थापना.

जिस समय भगवानका आविर्भाव हुआ था, उस समय भारतवर्षमें विप्लवोंका भयंकर तूफान जारी था। जो जाति 'पिता धर्मः पिता कर्मः पिताहि परमन्तपः' पुकारती आई थी, उसी जातिके एक नृपतिने अपने पिताको राज सिंहासनसे विच्युत कर उसे क़ैद कर रखा था। भ्रातृभाव जिस

जातिका मूल मन्त्र था, उसी जातिका एक राजा (दुर्योधन) तुच्छ राज्य-लालसाके लोभमें पड़कर, अपने चचेरे भाइयोंका सर्वस्व छीनकर, उन्हें इस संसारसे विदा कर देनेके लिये उतारू हो गया था! मगध देशका राजा जरासन्ध धर्मका मार्ग भूलकर, भगवान शंकरकी पूजाके बहाने नरबलि जैसे नृशंसता पूर्ण कार्य्योंमें प्रवृत्त हुआ था। समाजका अधःपतन इससे बढ़कर और क्या हो सकता है? अत्याचारकी पराकाष्ठा और किसे कहते हैं?

जरासन्धका दाहिना हाथ चेदी देशका राजा शिशुपाल घोर भगवद्विद्वेषी हो गया था। भेद-बुद्धिका विस्तार करना ही मानों उसका जीवन-व्रत था। भगवानकी भक्ति और धर्मके प्रचार-का मूलोच्छेद कर देना ही उसने अपना परम ध्येय समझ लिया था। पौण्ड्रराज ईश्वरकी दिल्लगी उड़ानेमें ही अपना बड़प्पन समझता था। इसी तरहके न जाने कितने ही अधर्म पूर्ण कार्य्य देशमें होते थे। परन्तु किसीमें इतनी शक्ति न थी, कि साहस-पूर्व्वक अग्रसर होकर इन अत्याचारोंको रोकनेकी चेष्टा करता। राजशक्ति छिन्न भिन्न हो गई थी। जो जितनाही अत्याचार कर सकता था, वह उतनाही प्रभावशाली और बलवान समझा जाता था। नरकने कितनी ही कुमारियोंको कैद कर रखा था। विला-सिताकी वृद्धि पराकाष्ठा तक पहुच गई थी। राजा युधिष्ठिर जैसे आदर्श पुरुष भी जुआ खेलनेके लिये तैयार हो गये और सारा राजपाट हार जानेपर अन्तमें स्त्रीको दाँवपर लगानेमें भी सङ्कुचित नहीं हुए। द्रोण और भीष्म जैसे विलक्षण

नीतिज्ञोंके सामने ही दुर्योधनने एकवस्त्रा रजस्वला द्रौपदीको सभामें लाकर अपमानित किया; परन्तु किसीमें इतनी हिम्मत न हुई, कि उसे इस कार्य्यसे विरत करनेकी चेष्टा करता! नैतिक अधःपतनकी हद हो गई थी। गान्धर्व विवाह और राक्षस विवाह आदि कुप्रथायें अवाध रूपसे प्रचलित हो रही थीं। बड़े घरोंकी कुमारियाँ तक व्यभिचार-परायणा हो गई थीं। ऐसे ही दुस्समयमें प्रकट होकर श्रीकृष्णने इस देशकी रक्षा की थी।

इन समस्त विप्लवोंका कारण राजशक्तिकी विभिन्नता थी। राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आये हुए राजाओंका परिचय पढ़नेसे ज्ञान होता है, कि इस देशमें छोटे छोटे बहुतसे राज्य स्थापित हो गये थे और इन राजाओंमें कितने ही घोर अत्याचारी, विलासी, धर्म्महीन और यथेच्छाचारी थे। श्रीकृष्णने इस बिखरी हुई राजशक्तिको केन्द्रीभूत किया था। राजा युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञका अनुष्ठान कराकर छोटे छोटे राजाओंको वशीभूतकर एक संयुक्त साम्राज्य (United state) स्थापित करना ही श्रीकृष्णका उद्देश्य था। राजसूय यज्ञ कर साम्राट्की पदवी प्राप्त करनेकी अभिलाषा मनमें रहनेपर भी युधिष्ठिरको विश्वास न था, कि उनकी यह इच्छा पूरी होगी। उनकी इस अभिलाषाकी पूर्त्तिके पथका प्रधान बाधक जरासन्ध था। उसका सैनिक बल अपार था। युद्धमें उसे विजय करना बड़ा ही कठिन काम था। इसके सिवा वह स्वयं भी सम्राट् बननेकी इच्छा रखता था। इसलिये उसने बहुतसे राजाओंको कैद कर रखा

था और शिवके सामने उनकी बलि देकर, इस भयंकर नर-मेध द्वारा ही अश्वमेघ और राजसूय यज्ञका काम निकालकर सम्राट् बनना चाहता था। फलतः जरासन्ध राजा युधिष्ठिरका प्रवल प्रतिद्वन्द्वी था और उसके जीते जी उनका सम्राट् बनना नितान्त कठिन था। श्रीकृष्णने कौशलसे जरासन्धका नाश कराकर राजा युधिष्ठिरके सम्राट् बननेका रास्ता साफ कर दिया और साथ ही एक घोर अत्याचारीका विध्वंस कराकर देशका भी प्रभूत उपकार किया। जरासन्धने जिन राजाओंको कैद कर लिया था, उन्होंने मुक्ति पाकर युधिष्ठिरका पक्ष लिया। इससे उन्हें और भी सुगमता प्राप्त हो गई। यज्ञ आरम्भ हुआ। शिशु-पाल वाधक बनकर खड़ा हो गया और उपस्थित राजाओंको भड़का कर यज्ञ विध्वंस करने की चेष्टा करने लगा। श्रीकृष्णने उसे मारकर यह कण्टक भी दूर कर दिया। कंस, पौण्ड्रक, काशीराम और सुदक्षिण आदि उद्दण्ड नृपतियोंको मारकर भी उन्होंने एकछत्र साम्राज्य स्थापितकर रास्ता सुगमकर दिया और साथ ही साथ विदेशियों द्वारा भारतपर आक्रमण करनेका पथ भी रोकनेमें समर्थ हुए थे। धर्मद्वेषी, देशद्रोही जरासन्धने विदेशी पहाड़ी जातियों और म्लेच्छोंकी सहायतासे अट्ठारह वार मथुरापर आक्रमण किया था। उस समय थोड़ी सी यादवों की सेना लेकर श्रीकृष्णने अपनी रणचतुरताका परि-चय देते हुए उसे वरावर पराजितकर उसका वल क्षय किया और युक्ति से कालयवन जैसे उद्धत बलवानका निधन कराया

था। यदि कालयवनका विध्वंस न होता तो निस्सन्देह राजा युधिष्ठरकी सम्राट-पदकी लालसा उनके मनमें ही विलीन हो जाती। मूरोंका राजा नरक भयानक धर्मविद्वेषी था। उसका संहार कर श्रीकृष्णने लुटेरोंसे भारतकी रक्षा की थी। जल-दस्युओंको मारकर अपने गुरु-पुत्रका उद्धार किया था।

उपर्युक्त घटनाओंकी आलोचना करनेसे साफ मालूम होता है, कि भगवान श्रीकृष्णने इस देशमें एकछत्र साम्राज्य स्थापित करनेके लिये घोर प्रयत्न किया था और सफल मनोरथ भी हुए थे।

शारीरिक बल और रणकौशल
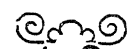
श्रीकृष्णके बाल्यजीवनकी घटनाओंपर विचार करनेसे मालूम होता है, कि शारीरिक बलमें भी वे आदर्श थे। गोकुल और वृन्दावनमें गोप बालकोंके साथ गोचारण करनेके समय उन्होंने कितने ही हिंसक जीवोंका बध किया था। इसके बाद मथुरामें जाकर कंसके मतवाले हाथीको मार डालना, चारूण और मुष्टिक जैसे भुवन विख्यात पहलवानोंको बातकी बातमें पछाड़ देना और कंसको पटककर उसकी छातीपर चढ़ बैठना इत्यादि घटनायें श्रीकृष्णकी असीम शारीरिक बलकी द्योतक हैं। तेज भागनेमें कालयवन भी उनकी समता

नहीं कर सका। यह उनकी शारीरिक स्फूर्त्तिका एक सुन्दर उदाहरण है।

शारीरिक बलके सिवा रणकौशलमें भी श्रीकृष्ण अद्वितीय थे। तत्कालीन क्षत्रियोंमें वे सर्व श्रेष्ठ रणपण्डित और विख्यात योद्धा गिने जाते थे। इसका प्रमाण महाभारत और श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें बहुत पाया जाता है। थोड़ीसी सेनाकी सहायतासे जरासन्ध जैसे बलवान और शक्ति सम्पन्न शत्रुको बार बार परास्त करना उनकी रणपटुताका ज्वलन्त प्रमाण है। इसके सिवा काशी, कलिंग, पौण्ड्रक और गान्धार प्रभृति देशोंके राजाओंको युद्धमें परास्त करना भी उनकी रण-निपुणताका परिचायक हैं। अपने जीवन कालमें कभी किसीसे श्रीकृष्ण पराजित नहीं हुए थे। महाभारत आरम्भ होनेके समय दुर्योधनने भीष्म पितामहसे पूछा था, कि क्या कौरवों और पाण्डवोंके दलमें कोई ऐसा शक्तिशाली, रणविद्या विशारद वीर है, जो अकेला ही हमारी और पाण्डवोंकी इन महती सेनाओंको मार सके? इसके उत्तरमें भीष्मने जिन योद्धाओंका नाम लिया था, उनमें श्रीकृष्ण अन्यतम थे। महाभारतके विख्यात वीर अभिमन्यु और सात्यकीको श्रीकृष्णनेही युद्ध-विद्याकी शिक्षा दी थी। इस तरहकी और भी बहुतसी बातें पाई जाती हैं, जिनसे श्रीकृष्णका रणपाण्डित्य प्रकट होता है।

नीतिज्ञता.

नीतिज्ञता श्रीकृष्ण जीवनके प्रधान लक्ष्योंमें था और उनके सुदीर्घ जीवनका अधिकांश नीति चर्चामें ही व्यतीत हुआ। उनका नीतिज्ञान सर्वतोमुखी था। धर्मनीति, राजनीति, समाज नीति, अर्थनीति, राष्ट्रनीति और रणनीतिके वे महान पण्डित थे। संसारके इतिहासकी आलोचना करनेवाले बड़े बड़े विद्वानोंका कथन है, कि श्रीकृष्णकी समता करनेवाला कोई भी नीतिवित् आजतक पृथिवीपर पैदा न हुआ। शुक्राचार्य्य, वृहस्पति, चार्वाक, विदुर और चाणक्य आदि प्राचीन नीतिज्ञ तथा विस्मार्क, ग्लाडस्टोन, ऐडमस्मिथ, जान स्टुअर्ट मिल आदि आधुनिक नीतिविशारद केवल एक एक प्रकारकी नीतिके ज्ञाता थे। कोई राजनीतिका पण्डित था तो कोई केवल अर्थनीति जानता था ; किसीने समाज नीतिमें पारदर्शिता प्राप्त की थी तो किसीने धर्मनीतिका ज्ञान अर्जित किया था। श्रीकृष्णकी भाँति एक साथ ही सब प्रकारकी नीतियोंका जाननेवाला इनमें कोई न था।

श्रीकृष्णकी नैतिक अभिज्ञता अनन्त थी। केवल वाक्य द्वाराही नहीं, कर्म द्वारा भी उन्होंने अपनेको सर्वनीतिज्ञ सिद्ध कर दिया है। राजनीति, धर्मनीति और समाजनीतिके सम्बन्धमें श्रीकृष्णकी जो उक्तियाँ पाई जाती हैं, वे अत्यन्त शिक्षाप्रद और विशेष जनहितकर है। संसारकी शृंङ्खला

और शान्तिकी रक्षाके लिये वे जो अमूल्य उपदेश प्रदान कर गये हैं, वह यदि मनुष्यके हृदयमें जागरूक रहें, मनुष्य यदि उन उपदेशोंको भूल न जाये तो वह इस शोक सन्ताप पूर्ण नश्वर जगतमें स्वर्गीय सुखका अनुभव कर सकता है।

समाजकी शृंङ्खला और रक्षाके लिये भगवानने कहा है,—"अपना धर्म, अपना समाज, अपना पैतृक कर्म यदि दोषयुक्त हो तो भी उसे परित्यागकर दूसरे धर्मका अवलम्बन करना उचित नहीं। शान्तिके लिये इससे बढ़कर उपदेश और क्या हो सकता है? स्वधर्ममें मरना भी कल्याण कारक है, परन्तु परधर्म भयंकर होता है। समाजकी शृंङ्खला और रक्षा जिस नीतिका उद्देश्य है, वही सर्वश्रेष्ठ नीति है। माता, पिता तथा अन्यान्य गुरुजनोंकी उक्ति उस नीतिका प्रधान अङ्ग है। इसीसे भगवानने कहा है,—"मनुष्यको धर्म, अर्थ काम और मोक्षकी प्राप्ति उसके शरीर द्वारा ही होती है, अतः जिनके द्वारा उस शरीरकी उत्पति और परिपुष्टि हुई है, उन माता पिताके ऋणसे सौ वर्षोंमें भी मुक्ति नहीं होती। जो पुत्र तन, मन और धनसे अपने माता पिताकी सेवा नहीं करता, उसे परलोकमें यमदूतों द्वारा बड़ी लाञ्छना भोगनी पड़ती है। जिन्होंने असहाय अवस्थामें प्रतिपालन किया है, वे भी माता पिताकी भाँति पूज्य हैं। कुटुम्बोंकी समष्टिको ही समाज कहते हैं। सुतराँ समाजकी उन्नति और रक्षाके लिये कुटुम्बियोंकी रक्षाके सम्बन्धमें भगवानने कहा है,—"यह मनुष्य-का प्रधान कर्तव्य है, कि माता, पिता, स्त्री और पुत्रोंका प्रति-

पालन करें। सामर्थ रहते हुए भी जो अपने आश्रितोंका भरण-पोषण नहीं कर सकते, वे जीते हुए भी मुर्देके समान हैं।" वृक्षों-की उपकारिताका उदाहरण देते हुए श्रीकृष्णने एक स्थानपर कहा है,—"इन महाभाग वृक्षोंको देखो। परायेकी भलाईके लिये, निर्ज्जलमें खड़े हैं। स्वयं धूप, हवा और वर्षाका कष्ट सहकर हमें उनसे बचाते हैं। वास्तवमें इनका जन्म अत्युत्तम है। जिस तरह दयालु व्यक्तिके यहाँसे कोई याचक विमुख नहीं जाता, उसी तरह ये भी किसीको विमुख नहीं लौटाते। फल, फूल, पत्र, छाया, छाल, गन्ध और डालियों द्वारा ये हमारा कितना उपकार करते हैं। इन जड़ वृक्षोंकी भाँति मनुष्योंको भी अपने शरीर, सम्पत्ति और वाक्य द्वारा परोपकार करना चाहिये। तभी जीवन और जन्म सफल हो सकता है।" कैसी विश्वप्रेम विधायनी नीति है।

श्रीकृष्णकी राजनीतिज्ञताका परिचय उनके जीवन-चरितमें बहुत पाया जाता है। कुरुक्षेत्रकी लड़ाईमें, कौरवों और पाण्ड-वोंकी सन्धिकी चेष्टाके समय और जरासन्ध, शिशुपाल तथा कालयवनका वध करनेमें उनकी राजनीतिज्ञताके बहुतसे प्रमाण मौजूद हैं। जरासन्धके बन्दी राजाओंको मुक्तकर श्रीकृष्णने उनसे कहा था,—"मेरी समझमें सौभाग्य मद्की उन्नति ही मनुष्योंकी उन्मत्तताका कारण होता है। कार्त्यवीज, नहुष, वेण, रावण और त्रिशंकु आदि अपने ऐश्वर्य्यके मदमें अन्धे हो जानेके कारण ही पतित हुए थे। इसलिये राजाको चाहिये, कि

ईश्वरमें मन लगाकर धर्मपूर्व्वक अत्यन्त सावधानीसे प्रजाका पालन करे।" इस तरहका बहुतसा उपदेश प्रदानकर तथा उनके प्रति अत्यन्त सुहृद् व्यवहारकर श्रीकृष्णने उन्हें वशीभूत कर लिया। उसीका फल था, कि वे राजे, राजा युधिष्ठिरके पक्ष-पाती बन गये और युधिष्ठिरके साम्राज्य-प्रतिष्ठामें उनसे बहुत सहायता मिली थी। शरणागतकी रक्षाके साथ ही राजाओंसे साम्राज्य प्रतिष्ठामें सहायता लेना, मानो एक ही ढेलेमें दो शिकार था। यह उनकी राजनीतिज्ञताका उत्कृष्ट उदाहरण हैं। कुरु-पाण्डवोंके युद्धमें पाण्डवोंका पक्ष ग्रहण करना और अपनी नारायण सेना देकर दुर्योधनको सन्तुष्ट कर लेना कितनी ऊंचे दर्जेकी नीतिज्ञता है? इस युद्धमें आत्मिक स्वजनका जो कर्त्तव्य था, उसका कृष्णने खूब पालन किया। युद्धके पहले सन्धिके लिये उन्होंने यथोचित चेष्टा की थी। सन्धिकी चेष्टाके समय उनसे और महात्मा विदुरसे जो वार्तालाप हुआ था, उसमें भी उनकी राजनीतिज्ञताका पूर्ण परिचय मिलता है। इधर तो वे मनही मन अधर्मके उच्छेदकी चेष्टामें थे और उधर सन्धिके लिये भी प्रयत्न कर रहे थे। मित्र और आत्मीयका जो कर्त्तव्य होता है, उसका भी पालन कर रहे थे, अथच दुष्टोंका दमन, जो उनका जीवन-कर्त्तव्य था, उधर भी लक्ष्य था। मित्रता भी दिखाई जाती थी और भय प्रदर्शनसे भी काम लिया जाता था। कौरव-सभामें दुर्योधनके दोषोंको निर्भीकता पूर्व्वक दिखाते हुए श्रीकृष्णने उसे जो आदेश प्रदान किया था, उसके दो

प्रकारके अर्थ हो सकते हैं। उन बातोंपर ध्यान पूर्वक विचार करनेसे मालूम होता है, कि एक ओर तो वे उसकी भलाईकी चेष्टा कर रहे हैं और दूसरी ओर उसे लड़ाईके लिये उत्तेजना दे रहे हैं। इस तरहकी दोमानी बातें करना ही तो आज कलके पोलिशियनोंकी विशिष्टता है। इन दोमानी बातोंके लिये ही कुछ लोग उन्हें कूटनीतिज्ञ कहते हैं। हो सकता है, कि वे कूटनीतिज्ञ भी हों। द्रोणाचार्य्यकी मृत्युके समय राजा युधिष्ठिरको मिथ्या बोलनेके लिये प्रेरित करना, कुछ लोगोंकी दृष्टिमें कृष्णजीवनका कलङ्क हो सकता है, परन्तु उसमें भी तो उनकी राजनीतिज्ञताही प्रकट होती है। जिस तरहसे हो, शत्रुका संहार करना ही कूटनीतिका मूलोद्देश्य है। साम, दाम, दण्ड और भेद राजनीतिके प्रधान अंग हैं। ऐसी दशामें, राजासे झूठ कहवाकर द्रोणका संहार कराना, कम-से-कम राजनैतिकदृष्टिसे अनुचित नहीं होना चाहिये। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण तो निष्काम कर्मी थे। उन्होंने गीतामें स्पष्ट कह दिया है, कि निष्काम कर्म करनेवालोंको पाप नहीं लगता।

श्रीकृष्णकी सभी नीतियोंमें ओतप्रोत भावसे धर्मनीतिका संमिश्रण देखा जाता है। उन्होंने जो कुछ कहा है, जो कुछ किया है, उन सबका मूल लक्ष्य एक धर्म ही है। उनकी प्रवर्तित राजनीति और समाज नीति धर्मशिक्षा-मूलकही देखी जाती है। श्रीमद्भगवद्गीता सर्वत्र ही धर्मनीतिसे परिपूर्ण है। ब्रह्मवैवर्त्त और हरिवंश आदि पुराणोंमें जहां कहीं

श्रीकृष्णकी उक्तियां पाई जाती हैं, उनमें कोई भी धर्मनीतिसे खाली नहीं हैं।

संसार तथा जन साधारणका हितसाधन श्रीकृष्णकी नीतिकी भित्ति है। धर्म्म-साम्राज्यकी स्थापनाका मूल हेतु जनहितके सिवा और क्या हो सकता है। दुष्कर्मियोंका नाश और साधुओंका पालन उनके जीवनका प्रधान लक्ष्य था। जनहित साधन-नीतिकी रक्षाके लियेही उन्हें कतिपय युद्धोंमें भी प्रवृत्त होना पड़ा था। अकारण लोकक्षयकी इच्छा उनकी कभी नहीं थी। जरासन्ध, शिशुपाल और नरक आदिका बध इस कथनको अच्छी तरह पुष्ट करता है। यदि जरासन्धपर चढ़ाईकर सन्मुख समरमें उसे जीतनेकी चेष्टा की जाती तो निश्चय ही लोकक्षय होता। इसीसे उन्होंने उसका कौशलसे नाश कराया। कालयवनको सेनासे अलगकर निर्ज्जन स्थानमें ले.जाकर उसका वध करना भी यही प्रमाणित करता है, कि श्रीकृष्ण वृथा लोकक्षयके पक्षपाती न थे। मथुरा छोड़कर द्वारकामें जाकर बसना भी श्रीकृष्णकी नीतिज्ञताका परिचय देता है। कुरु पाण्डवोंकी लड़ाईके समय भी जनक्षय रोकनेकी उन्होंने बड़ी चेष्टा की थी। सुतरां श्रीकृष्णकी जीवन-नीतिका मूलाधार जन-हित, समाज-रक्षा और धर्मरक्षा था, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। 'अर्ध तजहिं बुध सरबस जाता' के अनुसार यदुकुलके ध्वंस और महाभारतके युद्धका उद्देश्य भी जनहित ही था। थोड़ासा अनिष्ट होनेपर भी यदि इष्टकी सिद्धि हो तो नीतिज्ञ उसे श्रेय ही

समझते हैं। आनाजकी रक्षाके लिये घास आदि खोदकर बहा देना अत्यावश्यक होता है।

सच्चरित्रता

पूर्ण मनुष्यत्व प्राप्त करनेके लिये जिन गुणोंकी आवश्यकता होती है, उनमें सच्चरित्रता या चरित्रकी निर्मलता प्रधान है। निर्मल चरित्रके प्रभावसे ही मनुष्य जन-समाजमें पूजित होता है। चरित्र-की निर्मलता और पवित्रता ही उसे अद्वितीय बलवीर्य्य प्रदान करती है। सर्वज्ञता प्राप्त करनेके लिये भी सच्चरित्रताकी अत्यन्त आवश्यकता होती है। भगवान श्रीकृष्ण चन्द्रका चरित्र अतीव निर्मल और पवित्र था, इसीसे वे तत्कालीन महापुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। महाभारत तथा अन्यान्य पुराणोंमें उनकी सच्च-रित्रताके अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। उनकी सच्चरित्रताका ही कारण था, कि महाराज युधिष्ठिरके यज्ञमें भीष्मने सबसे पहले उन्हींको सम्मान प्रदान करनेकी अनुमति दी। भीष्मको उस समय श्रीकृष्णसे बढ़कर चरित्रवान व्यक्ति दूसरा नहीं दीख पड़ा था। चेदीराज शिशुपालके प्रतिवाद करनेपर उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था, कि श्रीकृष्ण ही सर्वगुण सम्पन्न और सर्वश्रेष्ट हैं, उनके रहते दूसरेको यह सम्मान प्राप्त नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण परम जितेन्द्रिय थे। जितेन्द्रियताके प्रभावसे ही उन्होंने असीम

ज्ञान, अतुल बल-विक्रम, शौर्य्य वीर्य्य, और बहुदर्शिता आदि सद्गुण प्राप्त किया था। संयम और सच्चरित्रता द्वारा ही मनुष्य-शरीरमें असामान्य शक्तियोंका सञ्चार होता है। श्रीकृष्णने बार बार कहा है, कि जो अजितेन्द्रिय हैं, वे ही मायारूपी रमणीको देखकर मुग्ध हो जाते हैं और जिस तरह मोहान्ध होकर पतंग अग्निमें कूद पड़ता है, उसी तरह वे भी नरकमें निपतित होते हैं। संयम-जनित एकाग्रताके प्रभावसे ही श्रीकृष्णने अत्यल्प समयमें बहुतसी विद्यायें सीख ली थीं। वास्तवमें जितेन्द्रियके लिये संसारमें कुछ भी असम्भव नहीं है। चरित्रकी विशुद्धता द्वारा मनुष्य सर्वज्ञता और दक्षता प्राप्त कर सकता हैं! श्रीकृष्णने अपने चरित्र-वल द्वारा ही सामाजिक शृङ्खला स्थापित की थी। समाजाको विशृङ्खल करना उनके जीवनका उद्देश्य न था। उन्होंने पतिव्रता स्त्रियोंको सम्बोधन कर कहा था,—"शरीरका मिलन मिलन नहीं हैं, मनका मिलन ही वास्तविक मिलन है। पति, पिता, भ्राता और पुत्रादि उसके लिये दोष नहीं दे सकते, अथच वह मिलन ही प्रकृष्ट मिलन है।" श्रवण, कीर्त्तन और मनन द्वाराही श्रीकृष्णका सानिध्य प्राप्त हो सकता है। एक जगह उन्होंने उद्धवसे कहा था—"इन्द्रियोंका दमन करना ही मोक्ष है। इसीसे ऋषि लोग सबसे पहले इन्द्रियोंको दमन करनेकी चेष्टा करते हैं। स्त्रियोंके संगसे इन्द्रियाँ वासना युक्त होती हैं। इसलिये स्त्री संग परित्याग करना ही जितेन्द्रियता लाभ करनेका प्रधान उपाय है।

फलतः श्रीकृष्णपर जो लम्पटताका दोष लगाया जाता है, वह सर्वथा निर्मूल, मिथ्या और अनुचित है। सम्भवतः किसी उद्देश्य विशेष की, सिद्धिके लिये किसीने इस तरहकी बातें पुराणोंमें लिख दी होंगी।
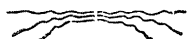
त्याग.

श्रीकृष्ण परम त्यागी पुरुष थे! त्याग ही उनके चरित्रकी महत्ताका प्रधान हेतु है। उनके जीवनमें आदि से अन्त तक सर्वत्र ही त्यागका महत्व परिलक्षित होता है। जन्मके साथ ही उन्हें अपने माता-पिताका त्याग करनेके लिये वाध्य होना पड़ा। किशोरावस्थामें कर्त्तव्यके अनुरोधसे नन्द-यशोदा तथा परमप्रिय ग्वालवालों और गोपियोंका त्याग करना पड़ा। यौवनकालमें उन्होंने राज-स्पृहाका त्याग किया। कंसके मरनेपर उग्रसेन प्रसन्नतापूर्वक उन्हें मथुराका राज्यसिंहासन प्रदान करने लगे। परन्तु परम त्यागी श्रीकृष्णने उसे स्वीकार न किया। संसारके हितके लिये अन्तमें उन्होंने सर्व कामनाओंका त्याग किया। उन्होंने अपने जीवनमें अपनी सुखसमृद्धिकी कभी चेष्टा न की। वह चाहते तो अनायास ही ससागरा वसुन्धराका आधिपत्य प्राप्त कर सकते थे। परन्तु वे निष्काम कर्मी थे। कामनाको उन्होंने विजयकर लिया था। इसीसे उनके प्रत्येक कार्य्य और प्रत्येक विषयमें उनकी त्यागकी

महिमा दिखाई देती है। रासलीलाके समय हठात् अन्तर्द्धान होनेके पश्चात जब वे पुनः प्रकट हुए तो सखियोंको त्यागका ही उपदेश दिया था। गीतामें उन्होंने अर्जुनको त्यागकाही उपदेश दिया है। गीतामें जिस त्यागका कीर्त्तन किया गया है, वही सर्वोच्च त्याग हैं! वास्तविक त्यागी वही है, जो अपने कृत् कर्मोंके फलाफलकी आशाका त्याग करता है। यज्ञ, तप, व्रत और पूजा आदि सभी शुभ कर्म करते रहो, परन्तु फलकी कल्पना न करो? श्रीकृष्णने अपने जीवनमें जो कुछ किया है, इसी सिद्धान्तके अनुसार किया है। उन्होंने स्पष्ट कह दिया है, कि त्यागही मुक्तिका मार्ग है। सत्य, सरलता और अहिंसा आदिका आश्रय लेकर कर्म करते रहो। परन्तु फलकी कामना न करो। यही भगवानके त्याग सम्बन्धी उपदेशोंका सार है, महाभारत समाप्त होजानेपर आत्मीय स्वजनोंकी मृत्युसे शोकाकुल होकर राजा युधिष्ठिरके राज्य त्यागकर बनमें चले जानेकी इच्छा करने पर भगवानने उन्हें जो उपदेश दिया था, उसमें भी त्यागकी ही प्रधानता हैं। कामगीता और अनुगीताका सार-मर्म भी त्याग ही है। कर्म-फलका त्याग और कामनाका त्याग एकही बात है। त्यागही श्रीकृष्णकी शिक्षाका प्राणभूत हैं।

योग

पूर्ण मनुष्यत्वके विकाशके लिये योगही एकपथ है। योगका आश्रय लेकर मनुष्य जितनी उन्नति कर सकता है, उतनी और किसी प्रकार नहीं कर सकता। योगही मुक्तिका प्रशस्त मार्ग है। अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावसायित्व, यही आठ सिद्धियाँ हैं। इन्हींको प्राप्त करना योग साधन करनेका उद्देश्य है। इन सिद्धियोंको प्राप्त कर लेनेपर योगी अलौकिक शक्तिका अधिकारी हो जाता है। अणिमा द्वारा वह अपनेको अत्यन्त सूक्ष्म बना सकता है। लघिमा द्वारा वह अत्यन्त क्षिप्रता प्राप्त कर सकता है। महिमा उसे सर्व पूज्य बनाती है। प्राप्ति से अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति होती है। ईशित्व सिद्धि द्वारा वह सबका आधिपत्य प्राप्त कर और वशीत्व द्वारा चराचरको मोहित कर सकता है। भगवान श्रीकृष्ण परम योगी थे। उन्हें सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त थीं। योगबलही उनका प्रधानबल था। उनके चरित्रकी आलोचना करनेसे उनके इस अलौकिक योगबलका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। योगबल द्वारा वे त्रिकाल-दर्शी थे। योगबल द्वारा उनमें असीम श्रवण शक्ति थी, उसीसे उन्होंने द्रौपदीकी पुकार सुन ली थी। योगबल द्वाराही उन्होंने बाण-शय्यापर पड़े हुए भीष्मके शरीरमें प्रवेश किया था! योग-बल द्वारा ही परीक्षितको जीवन-दान दिया था। योगबल

द्वाराही उन्होंने इच्छामृत्यु प्राप्त की थी। योगीके लिये ये कोई बड़े आश्चर्यकी बातें नहीं हैं।

श्रीकृष्ण योगतत्वके पूर्ण ज्ञाता थे। इसका पता गीतासे अच्छी तरह चलता है। अर्ज्जुनको कर्मयोगका उपदेश देते हुए उन्होंने सूक्ष्मरूपसे योग-शास्त्रके सभी अङ्गोंपर विचार किया है। गीताके अट्ठारह अध्यायोंमें योगशास्त्रको अट्ठारह भागोंमें विभक्तकर उसका चरम तत्व प्रकाशित कर दिया है और अन्तमें उन्हें अपने विराट रूपका दर्शन कराकर योगकी महिमाकी भी अच्छी तरह उपलब्धि करा दी है।
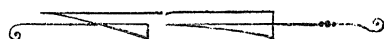
दर्शन.

योगके साथ-साथ भगवान श्रीकृष्ण दर्शनशास्त्रके भी विद्वान थे। गीताका मनन करनेवाले विद्वानोंकी राय है, कि उन्होंने गीतामें सांख्य, पातञ्जलादि सब दर्शनोंका सार संकलन कर दिया है। दुर्ब्बोध्य दर्शन तत्वको बड़े सरल भावसे समझाया है। मानों दर्शन-समुद्रको मथकर, उसका सार तत्व संसारके सामने रख दिया है। दार्शनिकोंमें किसीने कर्मकी उपेक्षा की है, किसीने ज्ञानका उपहास किया है और किसीने भक्तिको उड़ा दिया है। परन्तु भगवानने स्पष्ट कह दिया है, कि चाहे गृही हो या संन्यासी, ज्ञानी हो या भक्त, कर्मी हो या निष्कर्मी, जहाँ जिस अवस्थामें हो, वहीं

उसी अवस्थामें रहकर अविचलित भावसे चेष्टा करो, उद्धार पावोगे। यही उनके दार्शनिक मतका सार मर्म है।

प्रेम.

परम योगी, त्यागी और कर्मी होनेपर भी भगवान श्रीकृष्ण परम प्रेमी थे—प्रेमकी मूर्त्ति थे। प्रेमका महात्म्य उन्होंने जितना समझा था, उतना और किसीने नहीं समझा था। उनकी प्रेममूर्त्ति देख मनुष्य तो क्या पशु भी विमुग्ध हो जाते थे। नन्द-यशोदा, गोप-गोपी, पशु-पक्षी सभी कृष्णके प्रेमी थे। उन्होंने विश्वप्रेमका प्रचार किया था। उनकी बंशी प्रेमपीयूष-धारा बरसाती थी। बंशीकी ध्वनि सुनकर ही गोपियाँ उस रातको दौड़ी हुई यमुना किनारे आई थीं और रासलीलाके समय कृष्ण-प्रेममें मतवाली हो कर अपने को ही कृष्ण समझने लग गई थीं। गोपियोंके उस अनिर्वचनीय प्रेमका तत्व श्रीकृष्ण-प्रेमीही समझ सकते हैं। श्रीकृष्णने अपने वाक्यों और कार्य्यों द्वारा परम प्रेम की ही शिक्षा प्रदान की है। यदि भक्त होना चाहते हो, भक्तिका महात्म्य समझते हो तो आत्मोत्सर्ग करो। यही उनकी प्रेम-शिक्षा है। ईश्वरका सानिध्य प्राप्त करनेका यही एक सुगम मार्ग है।

अलौकिकता

महाभारतके सिवा अन्यान्य पुराणोंमें भगवान श्रीकृष्णके बहुतसे अलौकिक कार्य्यों का वर्णन पाया जाता है। सम्भव है, कि अपनी अल्पज्ञताके कारण हम उन अलौकिक लीलाओंके गूढ़ रहस्योंके समझनेमें असमर्थ हों; परन्तु उनके जीवनकी अन्यान्य साधारण घटनाओं, उनके कार्य्यों और विचारोंपर ध्यान देनेसे यह स्पष्ट विदित हो जाता है, कि किसी प्रकार की अलौकिक दैवी शक्ति दिखाकर मानव समाजको चकित और स्तम्भित करनेके लिये उनका आविर्भाव नहीं हुआ था। वरं संसारके सामने एक आदर्श मानव-चरित्र रखना, स्वयं आदर्श बनकर, उसी पथपर मानव जातिको चलाना ही उनके आविर्भावका हेतु था। यदि वे सृष्टिके चिर निर्दिष्ट नियमोंके विपरीत अपनी दैवी शक्तिसे काम लेते, तो उसका अनुकरण मनुष्यके लिये असम्भव होता और श्रीकृष्णावतारका उद्देश्यही व्यर्थ हो जाता है।

उपसंहार

उपसंहारमें यह निवेदन है, कि संसारका कोई विषय मत-भेदसे खाली नहीं। कोई कितना-ही श्रेष्ठ और महान् क्यों न हो, संसार एकमत होकर कभी उसकी महानता स्वीकार नहीं करता। जो सत्यालोक अपनी विमल-ज्योतिसे संसारको उद्भासित कर देता है, उसके सम्बन्धमें भी कितना मतभेद देखा जाता है। यहां तक कि मतभेदोंके कारण कभी-कभी सत्य मिथ्याके आवरणसे ढक जाता है, और मिथ्याही सत्यका जामा पहन कर सत्यस्वरूप बन जाता है। भूल चूक मनुष्योंका स्वाभाविक धर्म्म है। इसीसे वह कभी-कभी सत्यको मिथ्या और मिथ्याको सत्य समझने लगता है। इसी तरहका मतभेद भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके सम्बन्धमें भी देखा जाता है। कोई उन्हें ईश्वरका अवतार समझता है, कोई आदर्श महापुरुष मानता है, कोई कूटनीतिज्ञ कहता है, कोई उन्हें लम्पट, चोर और दुष्कर्मी कहकर सन्तुष्ट होता है। कितनेही पाश्चात्य विद्वान तो उनका अस्तित्व ही अस्वीकार करते हैं और कुछ लोगोंकी दिव्य दृष्टिमें उनके चरित्रमें ईसामसीहके चरित्रकी झलक दिखलाई देती है। फलतः श्रीकृष्णके सम्बन्धमें अबतक जितने ग्रन्थोंको देखनेका अवसर प्राप्त हुआ है, उनमें 'मुण्डे मुण्डे

मतिर्भिन्नः' की कहावत खूब ही चरितार्थ होती है। परन्तु जो हिन्दू शास्त्रोंके ज्ञाता हैं, जिन्हें शास्त्रके बचनों पर विश्वास है और जो महाभारतको ऐतिहासिक ग्रन्थ स्वीकार करते हैं, वे श्रीकृष्णकी महानताको अच्छी तरह समझते हैं। वे जानते हैं, कि आजसे नहीं, बहुत दिनोंसे—ईसामसीहके जन्मके बहुत पहलेसे—भारत उन्हें ईश्वरका अवतार मानता है और बहुत दिनोंसे इस देशमें घर-घर उनकी पूजा होती आ रही है। अतः श्रीकृष्णके सम्बन्धमें अपने.अपने इच्छानुरूप मत प्रकाशित करने वालोंके सन्बन्धमें अधिक कुछ न कहकर केवल यही कह देना पर्याप्त होगा, कि—

"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।"

भगवान श्रीकृष्ण ईश्वरके अवतार हों या साधारण मनुष्य हों, इसमें कोई सन्देह नहीं, कि उन्होंने अपने आदर्श कर्मों द्वारा तथा अमूल्य उपदेशों द्वारा जो शिक्षा प्रदानकी है, उसीकी सहायतासे यह मुमूर्षुप्रायः भारतवर्ष आज तक जीवित है और जीवित रहेगा। भगवान श्रीकृष्णके आविर्भावको आज पांच हजार वर्षसे अधिक हो चुके हैं तथापि उनकी गीताका चिर मधुर गान हिन्दू जातिके कर्णकुहरोंमें गूंज रहा है। सहस्र-सहस्र वर्ष बीत चुके हैं और भी कितनेही युग-युगान्तर बीत जायेंगे, परन्तु भगवानने जो शिक्षा प्रदानकी है उसका प्रभाव कभी विलुप्त न होगा। भगवानका धर्मतत्व सदैव मनुष्योंको दिव्य तत्त्वज्ञान प्रदान करता रहेगा। उनकी प्रेम-पीयूष-धारा चिर काल तक कितनेही पापी-

तापियोंके मरुमय-विशुष्क हृदयोंको शीतलता प्रदान करती रहेगी और उनकी विमल ज्ञान-ज्योतिसे संसारका अज्ञानान्धकार बहुत दिनों तक दूर होता रहेगा। एवमस्तु॥

हरिः ओ३म् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

❀ महिला-मणिमालाका ३ रा मणि ❀

सीपमें छिपे हुए मोतीके समान ही, हिन्दी-प्रेमियोंसे छिपी और अप्रसिद्ध यह सती-विपुला, यदि सती-कुल-शिरोमणि सावित्रीसे बढ़कर नहीं तो किसी दर्जे घटकर भी नहीं है। यदि सावित्री अपने पातिव्रत–बलसे अपने मृत पतिको यम-द्वारसे लौटा लायी थी, तो सती विपुला अपने सर्प-दंशन द्वारा मृत पतिके साथ ही उनके छः भ्राताओंको भी। और सबसे बढ़ी-चढ़ी विशेषता तो इस कथा-भागकी रहस्य-भरी, गुण भरी, भक्ति-भरी और आदर्श भरी ललित घटनावली है। इसमें देवी पद्मा तथा पार्वतीकी चालोंका विशद वर्णन है, वणिक् राज चन्द्रधरका असीम साहस और अनन्य शिव भक्ति है, तथा सती मूर्द्धन्या विपुलाकी अलौकिक लीला और आदर्श पति-पराणयताने पुस्तककी छटा खूब बढ़ा दी है। इसमें राजा चन्द्रधरका देवी पद्माकी ईर्षाके कारण नाना प्रकारके कष्ट भोगना, मैनाकी ईर्षा, पार्वतीकी भक्त–वत्सलता तथा सदा शिवकी उदारता प्रभृति अनेकानेक अवश्य पढ़ने योग्य घटनायें भरी हैं। हम जोर देकर कहते हैं, कि जिस स्त्री पुरुषको अपनी गृहस्थी सुधारनेका कुछ भी ख़याल हो, वह इसे अवश्य पढ़ें। १४ रंग बिरंगे चित्रोंसे पुस्तक और भी सजा दी गई है। मूल्य २।) रेशमी जिल्द २॥।)